ISSN NUMBER : 2455-9717

RNI NUMBER :- MPHIN/2016/67929

शिवना प्रकाशन

वर्ष : 5, अंक : 20
जनवरी-मार्च 2021
मूल्य 50 रुपये

शिवना साहित्यिकी

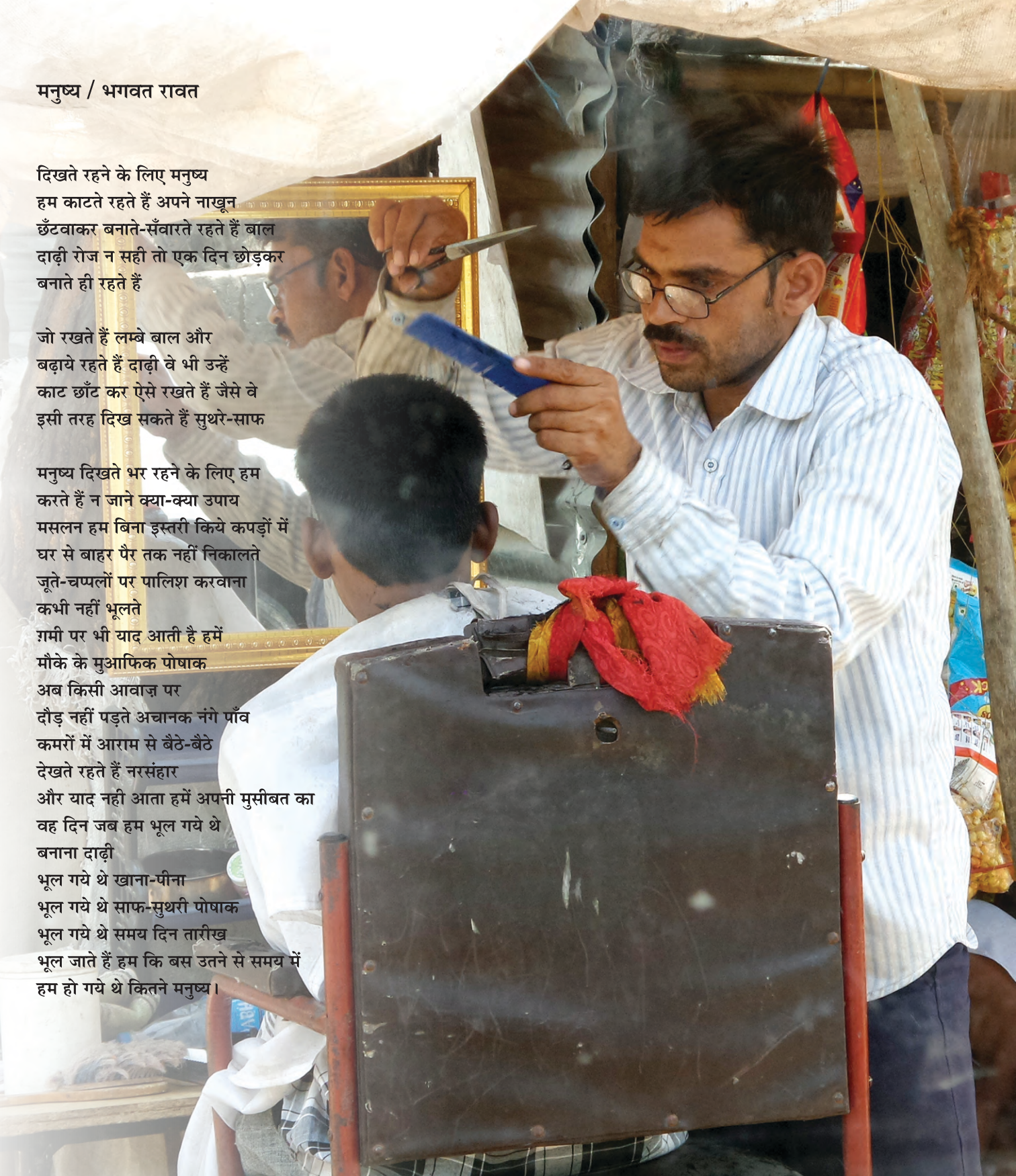

मनुष्य / भगवत रावत

दिखते रहने के लिए मनुष्य
हम काटते रहते हैं अपने नाखून
छँटवाकर बनाते-सँवारते रहते हैं बाल
दाढ़ी रोज न सही तो एक दिन छोड़कर
बनाते ही रहते हैं

जो रखते हैं लम्बे बाल और
बढ़ाये रहते हैं दाढ़ी वे भी उन्हें
काट छाँट कर ऐसे रखते हैं जैसे वे
इसी तरह दिख सकते हैं सुथरे-साफ

मनुष्य दिखते भर रहने के लिए हम
करते हैं न जाने क्या-क्या उपाय
मसलन हम बिना इस्तरी किये कपड़ों में
घर से बाहर पैर तक नहीं निकालते
जूते-चप्पलों पर पालिश करवाना
कभी नहीं भूलते
ग़मी पर भी याद आती है हमें
मौके के मुआफिक पोषाक
अब किसी आवाज़ पर
दौड़ नहीं पड़ते अचानक नंगे पाँव
कमरों में आराम से बैठे-बैठे
देखते रहते हैं नरसंहार
और याद नही आता हमें अपनी मुसीबत का
वह दिन जब हम भूल गये थे
बनाना दाढ़ी
भूल गये थे खाना-पीना
भूल गये थे साफ-सुथरी पोषाक
भूल गये थे समय दिन तारीख
भूल जाते हैं हम कि बस उतने से समय में
हम हो गये थे कितने मनुष्य।

शिवना प्रकाशन द्वारा प्रकाशित नई पुस्तकें

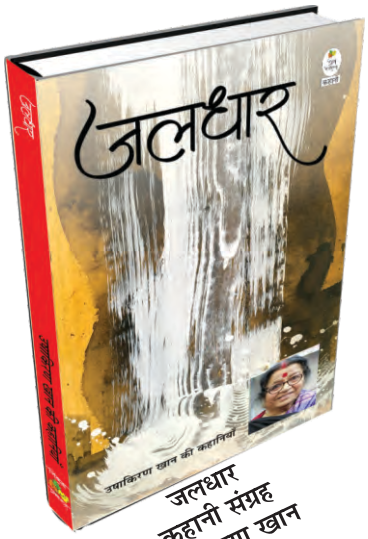

जलधार
कहानी संग्रह
उषाकिरण खान

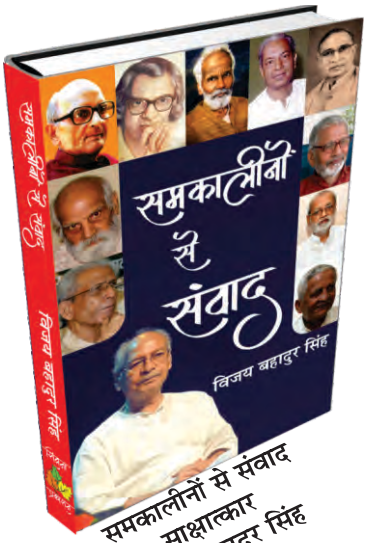

समकालीनों से संवाद
साक्षात्कार
विजय बहादुर सिंह

विमर्श दृष्टि - पंकज सुबीर की
कहानियाँ (आलोचना)
डॉ. राकेश कुमार

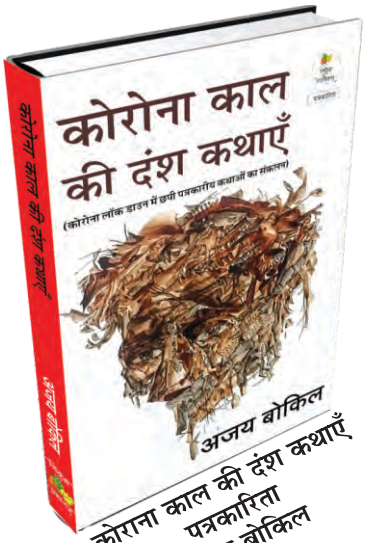

कोरोना काल की दंश कथाएँ
पत्रकारिता
अजय बोकिल

भूरी आँखें घुँघराले बाल
कहानी संग्रह
अनुपमा तिवाड़ी

काग भुसण्ड
उपन्यास
राजीव तनेजा

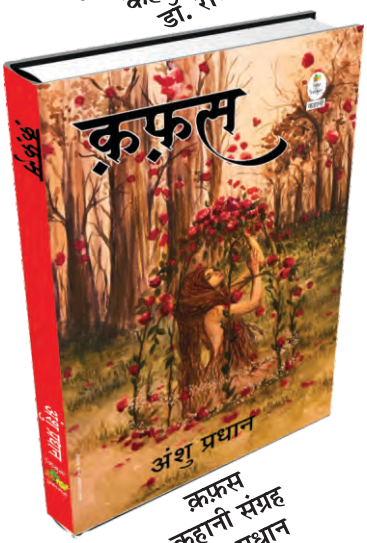

क़फ़स
कहानी संग्रह
अंशु प्रधान

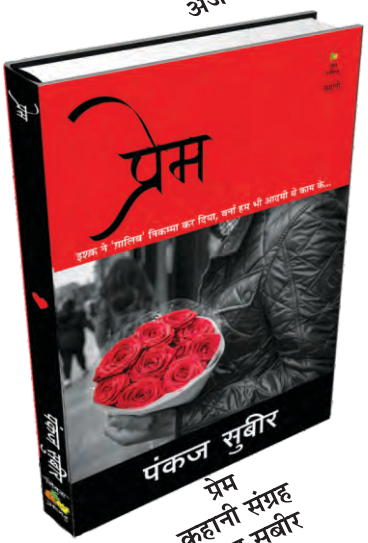

प्रेम
कहानी संग्रह
पंकज सुबीर

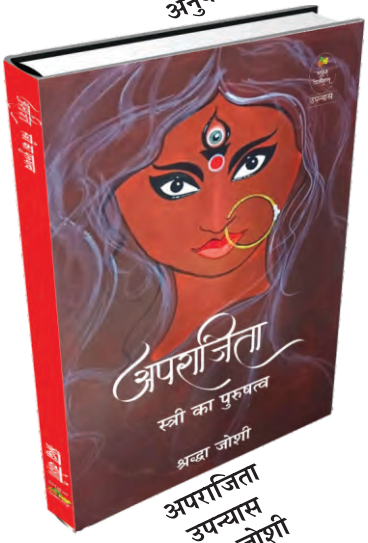

अपराजिता
उपन्यास
श्रद्धा जोशी

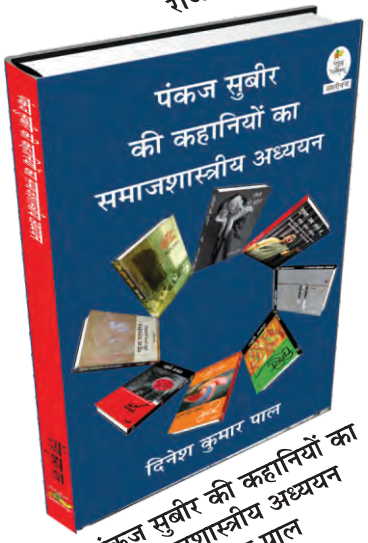

पंकज सुबीर की कहानियों का
समाजशास्त्रीय अध्ययन
दिनेश पाल

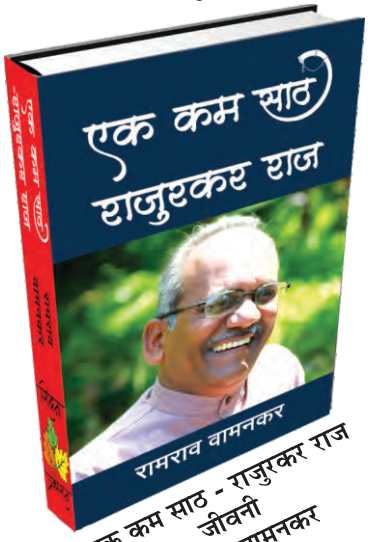

एक कम साठ - राजुरकर राज
जीवनी
रामराव वामनकर

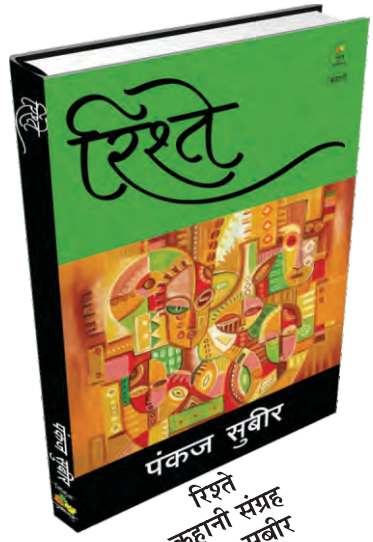

रिश्ते
कहानी संग्रह
पंकज सुबीर

शिवना प्रकाशन, शॉप नं. 3-4-5-6, सम्राट
कॉम्प्लैक्स बेसमेंट, बस स्टैंड के सामने
सीहोर, मध्य प्रदेश 466001
फोन : 07562-405545, 07562-695918
मोबाइल : +91-9806162184 (शहरयार)
ईमेल : shivna.prakashan@gmail.com
http://shivnaprakashan.blogspot.in
https://www.facebook.com/shivna.prakashan

शिवना प्रकाशन की पुस्तकें सभी प्रमुख ऑनलाइन शॉपिंग स्टोर्स पर

amazon http://www.amazon.in
flipkart http://www.flipkart.com
Paytm https://www.paytm.com
ebay http://www.ebay.in

दिल्ली में पुस्तकें प्राप्त करें : हिन्दी बुक सेंटर, 4/5 आसफ अली रोड
फोन : 011-23286757 http://www.hindibook.com

संरक्षक एवं
सलाहकार संपादक
सुधा ओम ढींगरा
प्रबंध संपादक
नीरज गोस्वामी
संपादक
पंकज सुबीर
कार्यकारी संपादक
शहरयार
सह संपादक
शैलेन्द्र शरण
पारुल सिंह
डिज़ायनिंग
सनी गोस्वामी, सुनील पेरवाल, शिवम गोस्वामी

संपादकीय एवं व्यवस्थापकीय कार्यालय
पी. सी. लैब, शॉप नं. 3-4-5-6
सम्राट कॉम्प्लैक्स बेसमेंट
बस स्टैंड के सामने, सीहोर, म.प्र. 466001
दूरभाष : 07562405545
मोबाइल : 09806162184 (शहरयार)
ईमेल- shivnasahityiki@gmail.com

ऑनलाइन 'शिवना प्रकाशन'
http://shivnaprakashan.blogspot.in
फेसबुक पर 'शिवना प्रकाशन'
https://facebook.com/shivna prakashan

एक प्रति : 50 रुपये, (विदेशों हेतु 5 डॉलर $5)
सदस्यता शुल्क
1500 रुपये (पाँच वर्ष), 3000 रुपये (आजीवन)

बैंक खाते का विवरण-
Name: Shivna Sahityiki
Bank Name: Bank Of Baroda,
Branch: Sehore (M.P.)
Account Number: 30010200000313
IFSC Code: BARB0SEHORE

संपादन, प्रकाशन एवं संचालन पूर्णत: अवैतनिक, अव्यवसायिक। पत्रिका में प्रकाशित सामग्री लेखकों के निजी विचार हैं। संपादक तथा प्रकाशक का उनसे सहमत होना आवश्यक नहीं है। पत्रिका में प्रकाशित रचनाओं में व्यक्त विचारों का पूर्ण उत्तरदायित्व लेखक पर होगा। पत्रिका जनवरी, अप्रैल, जुलाई तथा अक्टूबर माह में प्रकाशित होगी। समस्त विवादों का न्याय क्षेत्र सीहोर (मध्यप्रदेश) रहेगा।

शिवना प्रकाशन

शिवना साहित्यिकी

वर्ष : 5, अंक : 20, त्रैमासिक : जनवरी-मार्च 2021
RNI NUMBER :- MPHIN/2016/67929
ISSN : 2455-9717

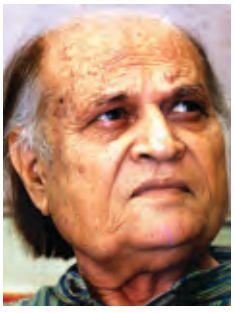

आवरण कविता
भगवत रावत

आवरण चित्र
पंकज सुबीर

इस अंक में

आवरण कविता / भगवत रावत

आवरण चित्र / पंकज सुबीर

संपादकीय / शहरयार / 3

व्यंग्य चित्र / काजल कुमार / 4

पुस्तक समीक्षा

निमुँहा गाँव (कहानी संग्रह)

डॉ. नीलोत्पल रमेश / जयनंदन 5

डांग (उपन्यास)

नंद भारद्वाज / हरिराम मीणा 9

वैश्विक प्रेम कहानियाँ (कहानी संकलन)

दीपक गिरकर / सुधा ओम ढींगरा 11

भूरी आँखें घुँघराले बाल (कहानी संग्रह)

रमेश शर्मा / अनुपमा तिवाड़ी 17

स्ट्राइक 2.0 (व्यंग्य संग्रह)

कैलाश मण्डलेकर / राजशेखर चौबे 19

कोरोना काल की दंश कथाएँ (निबंध संग्रह)

दीपक गिरकर / अजय बोकिल 21

साक्षात्कारों के आईने में (साक्षात्कार संग्रह)

दीपक गिरकर / डॉ. रेनू यादव 23

हिन्दी साहित्य और सिनेमा : रूपांतरण के आयाम (आलोचना)

अनिल गोयल / डॉ. विजय कुमार मिश्र 25

खिड़कियों से झाँकती आँखें (कहानी संग्रह)

भारती पाठक / सुधा ओम ढींगरा 28

मेरे गाँव का पोखरा (कविता संग्रह)

नीरज नीर / डॉ. नीलोत्पल रमेश 31

माँ के लिये (कविता संग्रह)

पूनम मनु / हेमधर शर्मा 33

सच कुछ और था (कहानी संग्रह)

मधूलिका श्रीवास्तव / सुधा ओम ढींगरा 35

समस्या का पंजीकरण व अन्य व्यंग्य (व्यंग्य संग्रह)

कैलाश मंडलेकर / विवेक रंजन श्रीवास्तव 37

प्रेम में पड़े रहना (कविता संग्रह)

डॉ. नीलोत्पल रमेश / रंजीता सिंह फलक 39

कविता का जनपक्ष (आलोचना)

रमेश खत्री / शैलेंद्र चौहान 41

सिर्फ़ स्थगित होते हैं युद्ध (कविता संग्रह)

डॉ. शशिप्रभा / प्रभा मुजुमदार 43

केन्द्र में पुस्तक

अटकन-चटकन (उपन्यास)

डॉ. ज्योतिष जोशी, राजीव तनेजा

सलिल वर्मा, डॉ. अभिलाषा द्विवेदी / वंदना अवस्थी दुबे 46

प्रेम (कहानी संग्रह)

दीपक गिरकर, डॉ. सीमा शर्मा, मीरा गोयल / पंकज सुबीर 51

पुस्तक चर्चा

वो 17 दिन (पत्रकारिता)

राजेश बादल / ब्रजेश राजपूत 56

शब्द गूँज (कविता संग्रह)

रमाकांत नीलकंठ / अरुण सातले 57

मैं किन सपनों की बात करूँ (नवगीत संग्रह)

श्रीराम परिहार / श्याम सुन्दर तिवारी 58

काग भुसण्ड (व्यंग्य उपन्यास)

अंजू शर्मा / राजीव तनेजा 59

नज़रबट्टू (कहानी संग्रह)

निधि प्रीतेश जैन / ज्योति जैन 60

कासे कहूँ (कविता संग्रह)

पंकज त्रिवेदी / विश्व मोहन 61

पंचामृत (संस्मरण)

अमिताभ मिश्र / अश्विनी कुमार दुबे 62

नक्कारख़ाने की उम्मीदें (कविता संग्रह)

पुरुषोत्तम दुबे / संतोष सुपेकर 63

जाएँ तो जाएँ कहाँ (कहानी संग्रह)

डॉ. श्रद्धा श्रीवास्तव / सागर सियालकोटी 64

नई पुस्तक

पंकज सुबीर की कहानियों का समाजशास्त्रीय अध्ययन (शोध)

दिनेश कुमार पाल 24

अपराजिता (उपन्यास)

श्रद्धा जोशी 38

समकालीनों से संवाद (साक्षात्कार, संस्मरण)

विजय बहादुर सिंह 30

एक कम साठ राजुरकर राज (जीवनी)

रामराव वामनकर 50

मीडिया का मायाजाल (पत्रकारिता)

लेखक : डॉ. मुकेश कुमार 69

रिश्ते (कहानी संग्रह)

पंकज सुबीर 72

शोध- सारांश

स्त्री पाठ :

दुनिया की सबसे पुरानी सभ्यता

(पंकज सुबीर की कहानी 'दो एकांत')

दिनेश कुमार पाल 65

एकाग्र

नैसर्गिक करुणा, आक्रोश, इंकार और मनुष्यतापूर्ण ज़िद की कलम: राकेश कबीर

भरत प्रसाद 70

संपादकीय

शिवना साहित्यिकी और विभोम-स्वर के ये पाँच साल

शहरयार
शिवना प्रकाशन, पी. सी. लैब,
सम्राट कॉम्प्लैक्स बेसमेंट
बस स्टैंड के सामने, सीहोर, म.प्र.
466001,
मोबाइल- 9806162184
ईमेल- shaharyarcj@gmail.com

देखते ही देखते 'शिवना साहित्यिकी' के पाँच साल पूरे हो गए। यह बीसवाँ अंक आपके हाथों में है। बीसवाँ अंक मतलब पाँच साल इस अंक के साथ ही पूरे हो रहे हैं। जब पत्रिका शुरू की थी तब एक कुहासा था सामने कि किस प्रकार की होगी यह पत्रिका। क्योंकि इसके साथ ही प्रारंभ होने जा रही सहयोगी पत्रिका 'विभोम-स्वर' का प्रारूप तो पहले से तय था कि वह विधाओं की पत्रिका होगी। 'शिवना साहित्यिकी' चूँकि एक प्रकाशन संस्थान की पत्रिका के रूप में प्रारंभ होने जा रही थी, इसलिए आलोचना तथा समीक्षा पर केंद्रित पत्रिका के रूप में इसको विकसित करने का मन संपादक मंडल ने बनाया हुआ था। मगर बात वही थी कि आलोचनाएँ तथा समीक्षाएँ आएँगी कहाँ से ? वह भी इतनी संख्या में कि एक पत्रिका निकल सके। पहले कुछ अंकों तक तो पत्रिका इसी कुहासे में निकलती रही। प्रारंभ में पृष्ठ संख्या भी काफी कम रखी गई थी। पहले कुछ अंकों में कुछ अलग तरह की सामग्री देने का प्रयास किया गया। कथेतर गद्य की उन विधाओं को स्थान दिया गया, जो 'विभोम-स्वर' से इतर विधाएँ थीं। डायरी, संस्मरण, जैसी विधाओं को स्थान दिया गया। मगर बात वही थी कि अंततः तो पत्रिका को समीक्षा तथा आलोचना की पत्रिका बनाना था। धीरे-धीरे इस दिशा में प्रयास करना प्रारंभ किया गया। पहले तो स्तरीय समीक्षाओं की ही कमी से ही जूझना पड़ा। फिर अच्छी समीक्षाएँ आना भी प्रारंभ हो गईं। और अच्छी संख्या में समीक्षाएँ आना प्रारंभ हो गईं। जब ऐसा लगा कि अब पत्रिका को पूरी तरह से समीक्षाओं पर केंद्रित किया जा सकता है, तब निर्णय लिया गया कि हाँ अब यही किया जाए। और उसके बाद से यह पत्रिका पूरी तरह से समीक्षा, आलोचना, शोध पर केंद्रित पत्रिका हो गई। चूँकि इस प्रकार की पत्रिका की हिन्दी में कमी है, इसलिए इस नए प्रारूप का स्वागत किया गया। कई समीक्षकों ने पत्रिका को ध्यान में रखकर ही समीक्षाएँ लिखनी प्रारंभ कीं। पत्रिका ने भी ऐसे लेखकों का स्वागत किया और एक अंक में एक समीक्षक की एक ही समीक्षा लगना या एक अंक में एक किताब की एक ही समीक्षा लगने जैसी बातों को एक तरफ़ रखते हुए एक ही अंक में एक ही समीक्षक की एक से अधिक समीक्षाएँ तथा एक ही किताब की एक से अधिक समीक्षाएँ भी प्रकाशित करना प्रारंभ कीं। शुरूआत में तो लोगों को लगा कि चूँकि यह प्रकाशन संस्थान की पत्रिका है, इसलिए इसमें केवल प्रकाशन से प्रकाशित पुस्तकों की ही समीक्षा प्रकाशित होगी। फिर धीरे-धीरे तस्वीर स्पष्ट होती गई कि पत्रिका में सभी पुस्तकों की समीक्षाएँ प्रकाशित होंगी। प्रकाशन की अपनी पुस्तकों की समीक्षा के साथ दूसरे प्रकाशनों की पुस्तकों की भी समीक्षाएँ। और अब यह स्थिति है कि एक अंक के लिए कम से तीन अंकों की सामग्री समीक्षाओं के रूप में आती है। उस सामग्री में से स्तरीय समीक्षाओं का चयन करना तथा प्रकाशन के लिए लेना, यह काम संपादक मंडल के लिए अब ज़्यादा बड़ा काम होता जा रहा है। इसी क्रम में पत्रिका की पृष्ठ संख्या में भी बढ़ोतरी होती गई। जो पत्रिका पहले अंक के समय केवल चौबीस पृष्ठ की पतली सी पत्रिका के रूप में निकली थी, वह अब लगभग चार गुना हो गई है। अभी भी बहुत सी समीक्षाएँ छोड़नी पड़ती हैं, या अगले अंक के लिए सुरक्षित करनी पड़ती हैं। इस पूरे प्रयास का एक अच्छा परिणाम यह भी निकला कि कई अच्छे समीक्षक पत्रिका को मिले जिन्होंने पत्रिका के लिए नियमित रूप से लिखना प्रारंभ किया। सच कहा जाए तो यह पत्रिका आज जिस मुकाम पर पहुँची है, उसमें सबसे बड़ा योगदान इन्हीं समीक्षकों का है। पत्रिका की आत्मा होती है उसकी सामग्री। यह स्तरीय सामग्री नहीं मिलती तो यह सफ़र यहाँ तक तय करना हमारे लिए बहुत मुश्किल था। इस अंक के साथ दोनों पत्रिकाएँ 'विभोम-स्वर' तथा 'शिवना साहित्यिकी' अपने पाँच वर्ष पूरे करने जा रही हैं। आप सभी का सहयोग यूँ ही आगे भी मिलता रहेगा, ऐसी पूरी उम्मीद संपादक मंडल को है। **आपका ही**

शहरयार

व्यंग्य चित्र- काजल कुमार

kajalkumar@comic.com

पुस्तक समीक्षा

निमुँहा गाँव

(कहानी संग्रह)

समीक्षक : डॉ. नीलोत्पल रमेश

लेखक : जयनंदन

प्रकाशक : साहित्य संसद, नई दिल्ली

डॉ. नीलोत्पल रमेश
पुराना शिव मंदिर, बुध बाज़ार, गिद्दी
जिला–हज़ारीबाग (झारखण्ड) 829108
मोबाइल- 9931117537, 8709791120
ईमेल- neelotpalramesh@gmail.com

हिन्दी कहानी साहित्य में जयनंदन एक जाना-पहचाना नाम है। इनके अब तक तेरह कहानी-संग्रह प्रकाशित हो चुके हैं, जिनमें १७५ के आसपास कहानियाँ संकलित हैं। ये कहानियाँ कहीं न कहीं देश की प्रतिष्ठित पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित होकर प्रशंसित हो चुकी हैं। इनके कहानी-संग्रह हैं 'सन्नाटा भंग', 'विश्व बाज़ार का ऊँट', 'एक अकेले गान्ही जी', 'कस्तूरी पहचानो वत्स', 'दाल नहीं गलेगी अब', 'घर फूँक तमाशा', 'सूखते स्रोत', 'गुहार', 'गाँव की सिसकियाँ', 'भितरघात', 'सेराज बैंड बाजा', 'मायावी क्षितिज' तथा 'गोड़पोछना'। इसके साथ ही इनमें से चुनी हुई कहानियों के प्रतिनिधि संकलन - 'मेरी प्रिय कथाएँ', 'मेरी प्रिय कहानियाँ', 'संकलित कहानियाँ', चुनी हुई कहानियाँ', 'चुनिंदा कहानियाँ' भी प्रकाशित हो चुके हैं। इनकी कहानियाँ भोगे हुए यथार्थ का बोध कराती हुईं सामाजिक सरोकार के गंभीर पहलुओं को रेखांकित करती हैं। इन्हें पढ़ते हुए लगता है कि ये कहानियाँ लेखक के आसपास ही घटित हुई हैं, जिन्हें इन्होंने एक सर्जक कमेंटेटर की तरह पुनर्सृजन करके आँखों देखा हाल प्रस्तुत कर दिया है। इनकी कहानियों का विषय गाँव है, जहाँ से लेखक की स्मृतियाँ जुड़ी हैं, फिर कार्य-स्थल हैं, जहाँ लेखक वर्षों एक कामगार के तौर पर सेवारत रहे। जहाँ-जहाँ विसंगतियों और अन्तर्विरोधों पर उनकी पैनी नज़र गई है, वहाँ की समस्याएँ और त्रासदियाँ जीवंतता से चित्रण के कैनवास पर उतर आई हैं। जिस औद्योगिक शहर से लेखक का वास्ता रहा है, वहाँ के मज़दूरों के दुख-दर्द और सिसकियों के करुण स्वर कराह की तरह इनकी कहानियों में समाहित होते दिखाई पड़ते हैं। इसके अलावा भी लेखक की सचेत नज़रें घर-परिवार, पास-पड़ोस, ऑफ़िस-शहर की विडम्बनाओं को कैमरे की तरह अपनी गिरफ्त में ले लेती हैं।

'निमुँहा गाँव' जयनंदन का हाल में प्रकाशित होकर आया कहानी-संग्रह है, जिनमें इनकी सोलह कहानियाँ संकलित हैं। ये कहानियाँ देश की प्रतिष्ठित पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित होकर चर्चित हो चुकी हैं। निमुँहा गाँव के माध्यम से जयनंदन ने एक ऐसे गाँव के यथार्थ को पुनर्सृजित किया है जो निमुँहा हो चुका है। निमुँहा शब्द का अर्थ है बिना मुँह का। अर्थात् वह गाँव जिसका मुँह बंद हो या जिसे मुँह ही न हो।

शीर्षक कहानी 'निमुँहा' में अपने समय का पहलवान रह चुका बटेशर भगत के निमुँहा हो जाने की त्रासदी अभिव्यक्त हुई है। उसका बड़ा बेटा केशर पढ़-लिखकर एक ऊँचे पद पर नियोजित हो जाता है और सवर्ण कही जाने वाली उस जाति की लड़की से प्रेम-विवाह कर लेता है, जिस जाति से चोट खाये बटेशर की घृणा के स्तर तक दूरी बनी रहती है। उनकी इच्छा थी कि उनका बेटा अपनी ही जाति की किसी सुघड़ लड़की से ब्याह करे। लेकिन केशर अपने मन की कर लेता है, जिसके चलते पिता से मनमुटाव सा हो जाता है। इस मनमुटाव को केशर की पत्नी बनी लड़की मिटाने का संकल्प लेकर उन्हें चिट्ठी लिखने का सिलसिला शुरू कर देती है। बटेशर को बाउजी का संबोधन देकर आपकी अपनी बड़की बहू से अंत करती है। बटेशर पर चिट्ठियाँ असर करती जाती हैं, हालाँकि वे अपनी ओर से कोई जवाब नहीं भिजवाते। खुद से लिखना जानते तो शायद कभी लिख देते जवाब। उसकी निहोरा और मिन्नत करती हुई अनवरत आती चिट्ठियाँ अंतत: उन्हें पिघला देती हैं। वे पढ़ रहे अपने छोटे बेटे से जवाब लिखवाना चाहते हैं। उनके इस बदले तेवर पर पूरा घर यानी उनके अन्य बेटे और बहुएँ नाराज़ और असहमत हो जाते हैं।

मंझला लड़का धनेशर उन्हें बरजते हुए कहता है,-

"बुढ़ापे में अब आपका दिमाग़ थिर नहीं रहता। आपको पोटने के लिए चिट्ठी में दो चिकनी-चुपड़ी बात क्या लिख दीं कि बस आप पर जादू हो गया। आन और गुमान सब भूल गए। ई सब तो आपको फुसलाने का तरीका है ताकि खेत-घर में उसको हिस्सा मिल सके। ठीक है, अगर आप यही चाहते हैं तो वह तीन हज़ार का महीना कमाता ही है, अब पूरा खेत-घर भी उसी को दे दीजिए। हम लोग भीख माँगेंगे घर-घर जाकर।"

बटेशर भगत की बुद्धि रसरी की तरह ओझरा जाती है। भाई के प्रति भाई की ईर्ष्या को वे खूब बूझते हैं और अपना ध्यान उस तरफ से मोड़ लेते हैं। इसी बीच एक दिन केशर के एक दोस्त से उन्हें सूचना मिलती है कि केशर चिट्ठी में चाशनी घोलने वाली बहू को छोड़कर दूसरी शादी करने जा रहा है। उनका माथा बुरी तरह चकरा जाता है कि इतनी अच्छी लड़की से आख़िर वह तलाक क्यों ले रहा है। अब वे खुद को रोक नहीं पाते और बेटे के पास पटना जाने की तैयारी कर लेते हैं। वहाँ पहुँचते हैं तो समझाने की उनकी मंशा को भाँप कर बेटा बुरी तरह उन्हें दुत्कार देता है। वे बहू और अपने समधी के सामने अपमानित होकर अपनी थरथराती देह लेकर लौट जाने के लिए उठ जाते हैं। उनके समधी मिसिर जी उनकी थकी-टूटी और भूखी-प्यासी हालत देखकर रोकना चाहते हैं। बटेशर भगत उनकी और बहू की भलमनसाहत देखकर कलप उठते हैं और कहने लगते हैं,-

"किस मुँह से खाना खाएँ मिसिर जी? अब हमरे पास मुँह नहीं रहा....अब हम निमुँहा हो गए मिसिर जी..... निमुँहा हो गए।"

इस कहानी में एक ऐसे परिवार का चित्रण किया है कथाकार ने जो बदलते समाज की बिखरती परंपराओं के विकृत खोखलेपन में जीने लगा है। बुज़ुर्ग पीढ़ी के गले आधुनिकता के ऐसे चोंचले उतर नहीं पाते।

'इंसाफ़ की भैंस' कहानी गाँव में चलने वाली घृणास्पद जातीय राजनीति के दुष्परिणामों को सामने लाती है। छुटभैया नेता अपनी नेतागिरी चमकाने के लिए गाँववालों को आपस में लड़ा-भिड़ा देने के कुचक्र रचते रहते हैं। भैंस पालने वाले अपनी भैंस पर मोहित एक आदमी का मानना है कि नौकरी-चाकरी के फेर में पड़ने से ज़्यादा अच्छा है नेता बन जाना। इसमें न कोई योग्यता चाहिए, न कोई डिग्री। वह इंसाफ़ को उस भैंस की तरह समझता है जो जुगाली करती हुई दुनिया से बेपरवाह अपनी धुन में मगन रहती है और किसी के हाँकने-बरजने का उस पर कोई असर नहीं होता। गाँव में एक दलित का सुसंपन्न हो जाना बड़ी जातिवाले को तो छोड़िए, मध्यम जातिवाले को भी सहन नहीं होता। वे उसे षड्यंत्र करके यातनाओं की बलिबेदी पर चढ़ा देते हैं। इस कहानी में गाँव में होने वाली आपसी रंजिश खुलकर सामने आती है।

बदरी मैया कहानी धर्मयुग जैसी पत्रिका में धर्मवीर भारती के संपादन में छपी थी। इस कहानी में एक विधवा वृद्ध औरत के साथ उसके कलयुगी बेटों के निर्मम सलूक का बेधड़क बयान दर्ज है। बदरी मैया अपने पति की मृत्यु के बाद अपनी इकलौती बेटी बबनी के साथ अपने दो बेटों का भी पालन-पोषण करती हुई उन्हें किसी चीज़ की कमी होने नहीं देती। ये बेटे बड़े होकर अपनी बहन की शादी जैसे-तैसे एक ग़रीब घर में निपटा देते हैं। तमाम सुखों और नाज़ों में पली बबनी को कष्टकारक अभावों और मुश्किलों में रहने के लिए मजबूर हो जाना पड़ता है। मैया अपनी लाड़ली को कुछ मदद पहुँचाना चाहती है, तो ऐसा करना बेटों और बहुओं पर नागवार गुज़र जाता है। ऐसे में वह कुछ लुका-छिपाकर देकर मदद करना चाहती है, तो उसका इस तरह पर्दाफाश करके बेटे सरेआम अपमानित कर देते हैं, जैसे बहुत बड़ी चोरी पकड़ ली हो। बदरी मैया को लगता है कि इस घर में अपने बेटों-बहुओं के साथ अब आगे गुज़ारा करना मुश्किल है। वह अपने भाई के साथ नैहर में जाकर रहने का फ़ैसला कर लेती है। जाते-जाते वह अपना अंचरा फैलाकर बेटों से कहती है कि लो मेरी तलाशी ले लो। इस घर में हम भैया का दिया कपड़ा पहनकर आए थे और आज उन्हीं का दिया कपड़ा पहनकर वापस जा रहे हैं। बेटों को अशीषते हुए कहती है कि भगवान तुम लोगन को सुखी रखे। बदरी मैया के बूढ़े भाई अपनी बहन की हालत पर फफक पड़ते हैं। उन्हें ध्यान आता है कि बहनोई मरे थे, तब भी इतनी तकलीफ नहीं हुई

थी उन्हें। यह कहानी बदले हुए समाज की निष्ठुरता पर नब्ज़ रखकर पाठकों को भावुक बनाकर बेचैन कर देती है।

"बेलाग ठूँठ" कहानी दलितों के नृशंस शोषण और उत्पीड़न का मन को झकझोर देने वाला इज़हार है। गाँव में दलितों की हालत अपनी ज़मीन से बेलाग और ठूँठ पेड़ की तरह शुष्क और बेजान जैसी बनी रहती है। बड़े लोग उनसे चाकरी कराना अपना अधिकार समझ लेते हैं। एक मरणासन्न मुंशी को शहर पहुँचाने के लिए ज़बर्दस्ती चार दलित बूढ़ों को पालकी में जोत दिया जाता है, जो बेचारे भरपेट खाना के बिना और बढ़ती उम्र के कारण खुद भी चलने-फिरने से लाचार हैं। उस वक्त गाँव के सारे दलित युवा बगल के गाँव चले गए थे नाच देखने। मजबूरी में पालकी ढोने वाले बूढ़े कुछ ही दूर चलने के बाद गिर-पड़ जाते हैं। मुंशी का पालकी में ही इंतकाल हो जाता है। बूढ़ों को इनका अपराधी करार दे दिया जाता है और उनकी हाथ-पैर बाँधकर पिटाई की जाने लगती है। ऊपर से पुलिस को बुला लिया जाता है। पुलिस भी इन्हें कसूरवार समझकर इन पर कहर ढाने लगती है। शहर से वह गाँव घोड़े पर चढ़कर आता है। चूँकि सड़क का यहाँ कोई साधन नहीं है। बरसाती समय होने के कारण रास्ते में पानी-कीचड़ में दौड़ता हुआ घोड़ा पस्त सा हो जाता है। दारोगा को उस पर दया आ जाती है। अब वह घोड़े की जगह पालकी पर सवार होकर शहर लौटना चाहता है। इन्हीं मार खाये बूढ़ों के चार जवान बेटों को पालकी ढोने के लिए बुलाया जाता है। वे युवा सहन नहीं कर पाते और बीड़ी पीते हुए पालकी में माचिस लगा देते हैं।

'भोमहा' कहानी में कथाकार ने गाँव के एक भोले-भाले और निहायत शरीफ आदमी भोमहा की पत्नी पुनिया देवी की राजनीतिक महत्त्वाकांक्षा के कुत्सित कारनामे की पोल-पट्टी उधेड़ी है। नेता बनने की चाह में वह पथभ्रष्ट और कुलच्छिनी बनती हुई एक कूड़ेदान में तब्दील हो जाती है। एक कठपुतले की तरह के पति पर अपनी दबंगई थोपते हुए उसे अपना ग़ुलाम सा बना लेती है। बहुचर्चित हो गई पत्नी से जुड़े रहने की जब भोमहा की सारी कोशिशें क्रूरता की भेंट चढ़ जाती है तो बग़ावत स्वरूप उसके अंदर का स्त्री-प्रेम घर की नौकरानी चंपिया के साथ शेष जीवन जीने के लिए बाध्य कर देता है। इस कहानी के जरिये कथाकार जयनंदन ने स्त्री देह को कई कोणों से देखने की कोशिश की है। पुनिया के रूप में एक नए स्त्री-चरित्र का उदय दिखाकर समाज के एक अँधेरे और अछूते क्षेत्र पर रोशनी डाली गई है।

'अल्लाह नदारद' कहानी के माध्यम से कथाकार ने एक ऐसे चरित्र का सृजन किया है जो अपनी अपाहिजी के कारण रात-दिन अल्लाह को गालियाँ दिया करता है। उस चरित्र का नाम है हनीफ मियाँ उर्फ घसीटन मियाँ। वह अल्लाह को संबोधित करते हुए कहा करता है, "तुम्हरा कोई वजूद नंय हय। अगर हय तो तुम बहुत बड़का बेइंसाफ़ हो। हम सराप देते हंय कि दुनिया से तुम्हरा इकबाल ख़तम हो जाय और कोई नामलेवा नंय रह जाय।"

'उस्मानी इस्टेट' के रहमोकरम से सवाब और इमदाद की ख़ातिर रमज़ान में हर साल आयोजित होनेवाले ख़ैरात और सामूहिक इफ्तार पार्टी में शामिल होने के लिए बड़ी संख्या में जुटे फ़कीरों, अपाहिजों और मोहताजों की भीड़ में घसीटन भी आ जाया करता था। वह इस्टेट के मालिक अब्दुल ज़िक्र उस्मानी को भी खरा-खोटा सुनाने में ज़रा भी हिचक महसूस नहीं करता था। ज़िक्र साहब को जब इसकी जानकारी हुई तो उन्होंने घसीटन को तलब कर लिया और उससे पूछ दिया कि सुना है कि तुम अल्लाहताला के वजूद को नामंज़ूर करते हो? उसने जवाब में कहा-

"आपने ठीके सुना है हुजूर। अल्लाहताला आपके लिए होता होगा। हम ग़रीब अपाहिज के लिए कोई अल्लाह-वल्लाह नहीं है। अगरचे होता तो हम आँख से आन्हर और जिसम से लुंज-पुंज नंय होते।"

इसके बाद ज़िक्र साहब ने पूछा कि सुना है तुम मुझे भी खूब कोसते और गरियाते हो। हमने क्या बिगाड़ा है तुम्हारा?

उसने तपाक से जवाब दे दिया,-

"गरीबन का बिना बिगाड़े कोई अमीर नंय बन सकता। हज़ारों गरीबन के हाय लेके आपके पुरखे अमीर बने हैं। हम आपको बेशक गरियाते हैं और गरियाते रहेंगे।"

इतना सुनना था कि उसके बराहिल उसकी हड्डी-पसली तोड़ने पर उतारू हो जाते हैं पर ज़िक्र साहब ने उन्हें रोक देते हैं और अपने मुंशी को बुलाकर उसके बेटे को बराहिल के तौर पर बहाल करने का हुक्म दे देते है। बाप-बेटे आपस में बातें करते हुए एक-दूसरे को शक की निगाह से देखते हुए लौट जाते हैं। बेटे को इस करिश्मे पर अल्लाह के वजूद पर यकीन हो जाता है लेकिन घसीटन पर ज़रा भी इसका असर नहीं होता।

'कवच' कहानी के माध्यम से कथाकार ने ग्रामीण परिवेश में चल रहे छल-छद्म का पर्दाफाश किया है। गोतिया-दियाद के लोग हमेशा एक-दूसरे को नीचा दिखाने की फिराक में लगे रहते हैं और अपने ही पटिदार की ज़मीन हड़पने के चक्कर में रात-दिन भिड़े रहते हैं। इस कहानी की नायिका हनकी बूढ़ी के साथ भी ऐसा ही हो रहा है। उसके अपने जेठ के लड़के दीनदयाल ने अपनी पहुँच और पैरवी के बल पर उसकी सारी ज़मीन-जायदाद अपने नाम कर लिया है। हनकी को टांड़-टिकुल की ऊसर-बंजर ज़मीन और रहने के लिए चार कोठरी वाला गोहाल दे दिया। असहाय और निर्बल हनकी बूढ़ी उसके कारनामे पर उसके घर की तरफ मुँह करके गंदी-गंदी गालियाँ उछालने का एक क्रम बना लेती है। दबंगई और बरियारी से पेश आने वाले उस शोहदे से पार पाने का उसके पास दूसरा कोई अस्त्र नहीं रहता, अत: गालियों को उसने अपना कवच बना लिया।

बहुत सुबह ब्रह्म मुहूर्त में जागकर वह शुरू हो जाती है। उसकी गाली एक साथ लोरी भी बन गई थी और परतकाली भी। उसकी गाली सुनकर ही पूरा गाँव जाग जाता था। देखने में लगता था कि एक नंबर की गरिहन (गाली देने में माहिर) हनकी बूढ़ी बहुत बुरी और घटिया औरत है। गाँव में कम ही लोग थे जो उसे एक अच्छी औरत मानते थे। लेकिन

सच्चाई यह थी कि यह उसका अस्त्र था लड़ने का, प्रतिरोध का। वह हार कर भी हार मानने से इंकार करती थी। गाली देकर अपना भड़ास निकाल लेना उसकी जिजीविषा का एक पहलू था, खुद को बचाए रखने का एक कवच था। उसका असली नाम हनुमंती देवी था। लेकिन उसके हिनहिनाकर गरियाने की वजह से लोग उसे हनकी बूढ़ी कहने लगे थे। उसके दो बेटे थे जिन्हें उसने ऐसी परवरिश दी कि वे पहलवान के तौर पर ढलते चले गए ताकि दीनदयाल और उसकी फौज से वे टक्कर ले सकें। बूढ़ी इनके लिए जब बहुओं की तलाश करने लगी तो शर्त रख दिया कि गाली देने में वे खूब माहिर और मुँहज़ोर हों। ऐसी ही बहुएँ जब चुनकर आ गईं तो गालियाँ उछालने में उसका साथ देने लगीं।

जायदाद बँटवारे में की गई बेईमानी के सवाल पर इस्टेट के मालिक इंसाफ़ पसंद कादिर साहब का भी उसे सपोर्ट मिलने लगा। उन्होंने अपनी हवेली के कोठे पर चढ़कर गाली देने की इजाज़त दे दी और एक लाउडस्पीकर भी उपलब्ध करवा दिया ताकि आवाज़ दूर तक बुलंद होकर जा सके। दीनदयाल कादिर साहब की इस दयानतदारी पर उनसे भी बदला लेने की फिराक में लग गया, पर यह मुमकिन न हो सका। पुश्तैनी मंदिर में दीनदयाल जहाँ पूजा करता था, वहाँ हनकी की न सुने जाने पर उसने सारी मूर्तियों को तोड़कर ज़मींदोज कर दिया। दीनदयाल को एक हथियार मिल गया उसे सबक सिखाने का। हिन्दू-आस्था पर चोट पहुँचाने की शिकायत लेकर उसने थाने में जाकर प्राथमिकी दर्ज करा दी। पुलिस ने आकर हनकी को गिरफ्तार कर लिया। कादिर साहब ने अपने रुतबे का इस्तेमाल करते हुए तुरंत उसकी ज़मानत करवा दी और सारी मूर्तियों को फिर से बनवा देने का एलान कर दिया। दीनदयाल हैरान रह गया। लाउडस्पीकर पर सास-बहुओं द्वारा गालियों का सिलसिला फिर शुरू हो गया। यह कहानी गाँव में व्याप्त कटुता, फिरकापरस्ती और रंजिश को उजागर करने में पूरी तरह सफल हुई है।

'रस-बेरस' कहानी के माध्यम से कथाकार ने एक ऐसे दलित परिवार की व्यथा-कथा कही है जो ताड़ी बेचकर अपना भरण-पोषण करता है। उसका नाम फलतू माहथा है। उसके यहाँ आसपास के गाँवों के युवक ताड़ी पीने के लिए मधुमक्खी की तरह अड्डा जमा लिया करते हैं। आकर्षण का विशेष कारण है फलतू की एक जवान बहन जालो का अपूर्व सुंदर होना। गाँव के सामंत प्रवृति का एक किसान रेहन सिंह का बेटा चंपक सिंह जालो पर फिदा हो जाता है। उसके जाल में फँस कर जालो गर्भवती हो जाती है। चंपक उससे शादी करके बाप की घोर आपत्ति के बावजूद अपनी बहू के रूप में अपने घर में ले आता है। महल में आकर वह जालो से जलवंती बनती है तो उसके सोच-विचार में भी अमीरी का एक दर्प समा जाता है। वह अपने समाज के लोगों को भी हेय की दृष्टि से देखने लगती है। फलतू माहथा उसके मकान में जाकर अपनी बहन से मिलना चाहता है, लेकिन उसे कभी मिलने नहीं दिया जाता। रेहन सिंह उसे दुत्कारते हुए औक़ात बता देता है,-

"तुम्हारी बहन थी वह कभी.....अब ऊ हमरी पतोहू है और हमरी पतोहू किसी अदना-फदना आसी-पासी से नहीं मिल सकती।"

एक तरफ चंपक सिंह ताड़ी पीने की लत में सराबोर रहता है। बाप के दुर्व्यवहार और जालो के बदले तेवर से उसे बहुत पीड़ा पहुँचती है और उसके जीवन का रस बेरस सा हो जाता है। वह नशे में ज़्यादा से ज़्यादा धुत रहने लगता है। ताड़ में तो रस अगले सीजन में फिर आ जाता है पर चंपक और फलतू के जीवन का रस हमेशा-हमेशा के लिए मानों सूख जाता है। यह कहानी बदलते परिवेश में मानवीय चरित्र के रुपांतरण की मार्मिक कथा कहने में सफल हुई है।

कुल मिलाकर "निमुँहा गाँव" की सोलह कहानियों के माध्यम से कथाकार जयनंदन ने एक ऐसे गाँव का चित्र खींचा है जो निमुँहा और बेबस हो चुका है। वह गाँव अपनी हर मुसीबत के समाधान में निरीह और लाचार हो गया है।

000

फार्म IV

समाचार पत्रों के अधिनियम 1956 की धारा 19-डी के अंतर्गत स्वामित्व व अन्य विवरण (देखें नियम 8)।

पत्रिका का नाम : शिवना साहित्यिकी

1. प्रकाशन का स्थान : पी. सी. लैब, शॉप नं. 3-4-5-6, सम्राट कॉम्प्लैक्स बेसमेंट, बस स्टैंड के सामने, सीहोर, मप्र, 466001

2. प्रकाशन की अवधि : त्रैमासिक

3. मुद्रक का नाम : ज़ुबैर शेख़।
पता : शाइन प्रिंटर्स, प्लॉट नं. 7, बी-2, क्वालिटी परिक्रमा, इंदिरा प्रेस कॉम्प्लैक्स, ज़ोन 1, एमपी नगर, भोपाल, मप्र 462011
क्या भारत के नागरिक हैं : हाँ।
(यदि विदेशी नागरिक हैं तो अपने देश का नाम लिखें) : लागू नहीं।

4. प्रकाशक का नाम : पंकज कुमार पुरोहित।
पता : पी. सी. लैब, शॉप नं. 3-4-5-6, सम्राट कॉम्प्लैक्स बेसमेंट, बस स्टैंड के सामने, सीहोर, मप्र, 466001
क्या भारत के नागरिक हैं : हाँ।
(यदि विदेशी नागरिक हैं तो अपने देश का नाम लिखें) : लागू नहीं।

5. संपादक का नाम : पंकज सुबीर।
पता : रघुवर विला, सेंट एन्स स्कूल के सामने, चाणक्यपुरी, सीहोर, मप्र 466001
क्या भारत के नागरिक हैं : हाँ।
(यदि विदेशी नागरिक हैं तो अपने देश का नाम लिखें) : लागू नहीं।

4. उन व्यक्तियों के नाम / पते जो समाचार पत्र / पत्रिका के स्वामित्व में हैं। स्वामी का नाम : पंकज कुमार पुरोहित। पता : रघुवर विला, सेंट एन्स स्कूल के सामने, चाणक्यपुरी, सीहोर, मप्र 466001
क्या भारत के नागरिक हैं : हाँ।
(यदि विदेशी नागरिक हैं तो अपने देश का नाम लिखें) : लागू नहीं।

मैं, पंकज कुमार पुरोहित, घोषणा करता हूँ कि यहाँ दिए गए तथ्य मेरी संपूर्ण जानकारी और विश्वास के मुताबिक सत्य हैं।

दिनांक 20 मार्च 2020
हस्ताक्षर पंकज कुमार पुरोहित
(प्रकाशक के हस्ताक्षर)

पुस्तक समीक्षा

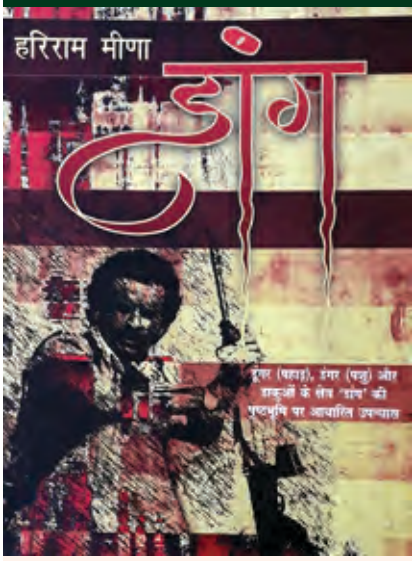

डांग

(उपन्यास)

समीक्षक : नंद भारद्वाज

लेखक : हरिराम मीणा

प्रकाशक : राजपाल एंड संस, नई दिल्ली

नंद भारद्वाज
71 247, मध्यम मार्ग,
मानसरोवर, जयपुर- 302020, राजस्थान
मोबाइल- 9829103455
ईमेल- nandbhardwaj@gmail.com

स्वाधीनता आन्दोलन के दौरान दक्षिणी राजस्थान के आदिवासी अंचल की संघर्ष गाथा 'धूणी तपे तीर' के चर्चित कृतिकार हरिराम मीणा का नया उपन्यास 'डांग' पूर्वी राजस्थान के डांग अंचल की प्राकृतिक, सामाजिक, राजनैतिक और सांस्कृतिक पृष्ठभूमि पर लिखा गया ऐसा दस्तावेज़ है, जो आज़ादी के बाद विगत कई दशकों से दस्यु समस्या से जूझ रहे इस दुर्गम अंचल के लोकजीवन की जीवारी, जिजीविषा और संघर्ष को गहराई से समझने का अवसर देता है। जिस अंचल का यही जीवन सूत्र रहा हो कि "जाको बैरी सुख से सोवै, बा कू जीबै को धिक्कार" वहाँ का जनमानस सुख चैन से कैसे जी पाता होगा भला। विदेशी हुकूमत और सामंती दौर में ऐसे बीहड़ हलके में रहने जीने वाले लोगों का जीवन न पहले कभी आसान था और न आज। कुछ तो क़ुदरती हालात ही ऐसे रहे और कुछ वहाँ के मानव-निर्मित जंगलराज ने लोगों का जीना हमेशा दूभर किए रखा।

अंग्रेज़ी हुकूमत के दौरान जो हलके आम सुविधाओं से वंचित और उपेक्षित रहे, आज़ादी के बाद देश में लोकतांत्रिक व्यवस्था कायम हो जाने के बाद भी बरसों तक वहाँ के जीवन में कोई बड़ा गुणात्मक परिवर्तन नहीं आया। अलबत्ता लोकराज की नई व्यावस्था से यह उम्मीद ज़रूर थी कि प्राथमिकता के तौर पर उन इलाकों की सुध ली जाती, लेकिन वैसा नहीं हुआ। विडंबना यह है कि जब देश की आम ग्रामीण जनता को (चाहे वह पहाड़ी क्षेत्र की हो, मैदानी हो या मरूस्थलीय) लोकतांत्रिक प्रक्रिया में शामिल करने की इच्छा शक्ति ही देश के व्यावसायिक राजनैतिक दलों में विकसित नहीं हो पाई, तो प्राकृतिक रूप से अलग थलग पड़े इस बीहड़ डांग क्षेत्र की सामाजिक और आर्थिक रूप से पिछड़ी जनता की भला कौन चिन्ता करे। जो प्रभावशाली दबंग लोग अपने सत्ता बल, धन बल और बाहु बल के जरिये इस ग़रीब जनता पर ज़ुल्म ढाते रहे, उनका दबाव और दबदबा आज़ादी के बाद भी वैसा ही बना रहा, बल्कि कई इलाकों में तो और बढ़ गया। चंबल जैसी बारहमासी गहरी नदी के बावजूद न खेती की दशा सुधरी, न दूर दराज के गाँवों में बिजली पानी की पहुँच बनी, न आवागमन और संचार-संवाद का आधारभूत ढाँचा विकसित हुआ और न शिक्षा स्वास्थ्य की दशा में ही कोई सुधार संभव हुआ। जो ग़रीब और अभावग्रस्त थे, उनकी दशा और बदतर होती गई, उन्हीं बाहुबलियों के हाथों आम लोगों की ज़मीन जायदाद छिनती गई, बहन बेटियाँ सुरक्षित नहीं रहीं और जो भी इसका विरोध करता, उसे बेरहमी से दर बदर कर दिया जाता। ऐसे में अन्याय और अत्याचार से सताए लोग

बागी न होते तो क्या होते? परिणामस्वरूप चंबल के बीहड़ प्रतिशोध की आग में सुलग उठते और उन्हीं हालात में ठाकुर मानसिंह, माधोसिंह, मोहरसिंह, लोकमन, सुल्तानसिंह, पुतली बाई, सरनामसिंह, मलखानसिंह, सुल्ताना कुरैशी, महेन्द्र फौजी, फूलनदेवी, जगन गूजर, जसवंत, उमराव गूजर जैसे कितने ही आम युवक युवतियाँ बागी बनकर चंबल के बीहड़ों में उतर गए। उनके बागी बनने का कारण बेशक खुद उनके या अपनों के साथ हुए अन्याय का प्रतिकार रहा हो, लेकिन आगे चलकर वे खुद भी उसी तरह की लूट, हिंसा, अपहरण, फिरौती और बर्बरता का पर्याय बनते गए। इन बागियों में देर सबेर ज़्यादातर तो आपसी रंजिश या पुलिस मुठभेड़ में मारे गए, कुछ थक हार कर शान्त हो गए और बचे खुचे कुछ जयप्रकाश नारायण और सुब्बा राव जैसे गांधीवादी नेताओं की समझाइश पर आत्म समर्पण कर सामान्य जीवन में लौट आए। बेशक इस अराजकता और आपाधापी में बहुत से निर्दोष लोग मारे गए, स्त्रियों और बच्चों को जुल्म का शिकार होना पड़ा, घर गृहस्थियाँ बर्बाद हो गईं, मुठभेड़ों में सरकारी मुलाजिम और पुलिस के सिपाही भी मारे गए, बहुत से पुलिसकर्मियों ने अपनी जान पर खेल कर लोगों को बचाया भी, उनकी बहादुरी के लिए उन्हें मान सम्मान भी मिला, लेकिन इस समूची ऊहापोह में डांग अंचल जिस तरह उजाड़ और उपेक्षित बना रहा, हिंसा से लहुलुहान होता रहा, लोग रोज़ी रोटी के लिए तरसते रहे, इन सारे हालात को वही ठीक से जान समझकर बयान कर सकता है, जो इसका सजीव साक्षी रहा हो, जो इस पूरे लोकेल की प्रकृति, पृष्ठभूमि, यहाँ के लोकजीवन और समस्या के मानवीय पहलू की न केवल गहरी समझ रखता हो, बल्कि उतना ही संवेदनशील और वस्तुपरक दृष्टिकोण भी रखता हो। यही बात कथाकार हरिराम मीणा को इस अर्थ में विशिष्ट बनाती है कि वे एक सजग और संवेदनशील लेखक होने के साथ साथ भारतीय पुलिस सेवा में ज़िम्मेदार अधिकारी के बतौर न केवल उस वास्तविकता के करीब रहे हैं, बल्कि उस समस्या से सीधे तौर पर रूबरू रहे हैं। उनका ताजा उपन्यास 'डांग' इसी जीवन अनुभव, समझ और सोच को सामने लाता है।

डांग की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि, उसकी मौजूदा हक़ीक़त और इस पूरे दौर में आए बदलाव को हरिराम मीणा इसी वृहत्तहर मानवीय दृष्टिकोण के साथ जान और बयान कर सके हैं। डांग की इस वास्तविकता को उजागर करते हुए वे कहते हैं, "इस धरा के वायुमंडल, क्षितिज, दिशाओं, आकाश व अंतरिक्ष के अनंत विस्तातर में भी आदिकाल से अद्यकाल तक की गत्यात्मकता के स्पंकदनक्रम को अनुभूत किया जा सकता है और यहाँ की भोर, दोपहर और संध्याओं की ऋतु आधारित भाव भंगिमाओं के नैपथ्य में प्रदर्शित परिवर्तन के नृत्य नैरन्तर्य का एन्द्रिक अनुमान लगाया जा सकता है। असल में देखा जाए तो डांग की धरती और आसमान को समेटते हुए सृष्टि के प्रत्येक तत्व एवं उसकी नैसर्गिकता में पल पल परिवर्तन का क्रम निरंतर चल रहा है। यह परिवर्तन प्रत्येक दृष्टि से यथास्थिति का प्रतिरोध किये जा रहा है, किन्तु जो यहाँ का जन साधारण है, चाहे वह कृषक है, श्रमिक है, शिल्पी है, सेवक है, पशुपालक है, वनोपजीवी है, डेराबंद घूमंतू जनसमूह है अथवा हरजीनाथ जैसे यायावर हैं, उन सब के इर्द–गिर्द कालचक्र क्यों नहीं घूमता, परिवर्तन की आहट क्यों नहीं सुनाई देती, लोकतांत्रिक सहभागिता और विकास में साझेदारी क्यों नहीं दिखाई देती?" और इन सवालों और इस विडंबना की असली वजह की ओर इशारा करते हुए वे कहते हैं, "ऐसा नहीं है कि डांग की इस भूमि ने बदलाव नहीं देखे हैं, लेकिन वे सारे बदलाव मनुष्यों के एक विशिष्ट वर्ग के खातों में जमा हुए हैं। यहाँ राजनेताओं के कद ऊँचे उठे हैं, सेठों की तौंद फैली है, सरकारी अफसर कर्मचारियों के घरों में समृद्धि बढ़ी है, ठेकेदारों, दलालों, वकीलों व ऐसे ही अन्य लोगों के यहाँ बदलाव (खुशहाली) आया है। खास आदमी की खुशहाली और आम आदमी की बदहाली का एक मात्र कारण, जो आसानी से समझ में आता है, वह है खास आदमी की बदमाशी और आम आदमी का भोलापन।" (पृष्ठ ७४)

डांग की इस वास्तविकता को उपन्यास के ताने बाने में संयोजित करने की दृष्टि से कथाकार ने जहाँ हरजीनाथ जैसे एक स्थानीय दिलचस्प घुमक्कड़ आल्हा गायक के जीवन-संघर्ष, उसके लोक अनुभव, अन्वीक्षण और बयानगी को कथानक का आधार बनाया है, वहीं भौगोलिक परिवेश के रूप में भरतपुर, धौलपुर और करौली ज़िलों के विभिन्न क़स्बों विशेषकर सरमथुरा, राजाखेड़ा, बयाना, बाड़ी, बसेड़ी, तिमनगढ़, शिकारगाह, गढ़ी बाजना, कोड्यापुर, मासलपुर और चंबल के तटवर्ती बीहड़ों में बसने वाले लोगों और उस हलके के सरकारी महकमों, पुलिस विभाग में काम करने वाले चरित्रों की गतिविधियों और वहाँ के घटनाक्रम को कथासूत्र के रूप में प्रस्तुत किया है, लेकिन यहाँ मूल उद्देश्य किन्हीं खास चरित्रों की कथा कहना न होकर समूचे डांग अंचल की पृष्ठ भूमि, उसके परिवेश और दस्यु समस्या से जूझते इस अंचल की वास्तविक दशा और उससे उबरने की जद्दोजहद को सामने लाना रहा है। इस प्रक्रिया में जो चरित्र अपनी अलग पहचान बना पाते हैं, उनमें हरजीनाथ के अलावा कोड्यापुर गाँव के श्रीफल गूजर, धौलपुर के सेठ प्रहलाद राय, नेता कप्तान सिंह, पंडित हरचरण लाल बोहरा, पुलिस अधिकारी पी जगन्नाथन, हरनाम सिंह भाटी, उम्मेद सिंह, मुरलीधर, सुरेन्द्र सिंह, शिव सिंह, पत्रकार प्रेमराज, पहलवान चुन्नीर सिंह आदि प्रमुख हैं, जो अपनी छोटी छोटी भूमिकाओं के साथ इस कथा में अपना गहरा असर रखते हैं।

इस उपन्यास की सबसे बड़ी खूबी है इसके चरित्रों की अपनी बोली-बानी और लोकेल की भाषा, जो इस पूरी कथा को विश्वसनीय और रोचक बनाती है। अगर और बारीकी से देखें तो मानवीय चरित्रों के समानान्तर डांग परिक्षेत्र अपने आप में एक जीवंत चरित्र की तरह यहाँ उपस्थित है, जिसका अतीत, वर्तमान और बनता हुआ भविष्य निश्चय ही पाठक का ध्यान आकर्षित करेगा।

000

पुस्तक समीक्षा

वैश्विक प्रेम कहानियाँ

(कहानी संकलन)

समीक्षक : दीपक गिरकर

संपादक : सुधा ओम ढींगरा

प्रकाशक : शिवना प्रकाशन, सीहोर, मप्र

दीपक गिरकर
28–सी, वैभव नगर, कनाडिया रोड, इंदौर–452016, मध्यप्रदेश
मोबाइल– 9425067036
ईमेल– deepakgirkar2016@gmail.com

"वैश्विक प्रेम कहानियाँ" कहानी संकलन का संपादन सुपरिचित प्रवासी साहित्यकार, कथाकार सुधा ओम ढींगरा ने किया हैं। सुधा जी के लेखन का सफ़र बहुत लंबा है। सुधा जी की प्रमुख रचनाओं में "नक़्क़ाशीदार केबिनेट" (उपन्यास), "सच कुछ और था", "दस प्रतिनिधि कहानियाँ", "कमरा नंबर १०३", "कौन सी ज़मीन अपनी", "वसूली", "खिड़कियों से झाँकती आँखें" (कहानी संग्रह), सरकती परछाइयाँ, धूप से रूठी चाँदनी, तलाश पहचान की, सफ़र यादों का (कविता संग्रह), विमर्श - अकाल में उत्सव (आलोचना पुस्तक), "साक्षात्कारों के आईने में" (साक्षात्कार) और "सार्थक व्यंग्य का यात्री : प्रेम जनमेजय" सहित नौ पुस्तकों का संपादन, साठ से अधिक संग्रहों में भागीदारी शामिल हैं। प्रवासी साहित्यकार सुधा ओम ढींगरा ने अपने सारगर्भित संपादकीय में लिखा है "प्रेम सिर्फ प्रेम होता है, 'विशुद्ध प्रेम', जो देश और विदेश में एक सा महसूस किया जाता है; क्योंकि मानवीय भावनाएँ पूरे विश्व में एक-सी हैं। हर देश की अपनी कालजयी प्रेम कथाएँ हैं। देश, काल और परिवेश का अंतर हो सकता है, पर संवेगों की गहराई और रूह के एहसास और भावों में कोई अंतर नहीं। पूरे विश्व में प्रेमी-प्रेमिका का दिल टूटता है और वेदना में तड़पता भी है। संयोग-वियोग, विरह-मिलन, बेवफ़ाई-वफ़ादारी प्रेम तत्व का हर भाव यहाँ मिलता है।"

इस संग्रह की कहानियाँ पढ़ते हुए प्रेम के विभिन्न आयाम दिलोदिमाग़ पर छा जाते हैं। इस संग्रह की कहानियों में देश-विदेश के कथाकारों ने प्रेम के विशद् और विशाल स्वरूप का यथार्थ चित्रण करके अत्यंत गहरे यथार्थबोध का परिचय दिया है। ये कहानियाँ पाठक को बाँधे रखती हैं और प्रेम के एक नए स्वरूप को सामने लाकर खड़ा कर देती हैं। ये सिर्फ प्रेम कथाएँ नहीं हैं, इन कथाओं में आम जीवन में होने वाली अनुभूतियाँ हैं, संवेदनाएँ हैं, आकांक्षाएँ हैं। इन कहानियों में जीवन के विविध रंग हैं। प्रेम के इंद्रधनुषी रंगों से सजी इन कहानियों को कथाकारों द्वारा महीनता

से बुना गया है। ये कहानियाँ पाठक को प्रेम की अनुभूति के सागर में गोते लगाने के लिए मजबूर करती है। इस संग्रह की कहानियों के शीर्षक स्पष्ट, विषयानुकूल, अर्थपूर्ण और प्रतीकात्मक हैं। कहानियों में जीवन की चेतना है, प्रेम-संबंधों की नई परिभाषाएँ हैं। इस संग्रह की कहानियों में प्रेम, आसक्ति, भावुकता, सम्मोहन, आनन्द, आत्मीयता, लगाव, त्याग इत्यादि मनोवृत्तियाँ बड़े सूक्ष्म रूप से स्पष्ट हुई है। कहानियों के पात्र अपनी ज़िंदगी की अनुभूतियों को सरलता से व्यक्त करते हैं। सुधा जी ने इस संकलन की कहानियों का चयन और संपादन बड़ी कुशलता से किया हैं। इस संग्रह में सत्ताईस कथाकार शामिल हैं। अमेरिका से उमेश अग्निहोत्री, सुदर्शन प्रियदर्शिनी, पुष्पा सक्सेना, अनिल प्रभा कुमार, सुधा ओम ढींगरा, डॉ. अफ़रोज़ ताज, अमरेंद्र कुमार, कैनेडा से - सुमन कुमार घई, डॉ. हंसा दीप, शैलजा सक्सेना, ब्रिटेन से - उषा राजे सक्सेना, उषा वर्मा, शैल अग्रवाल, कादम्बरी मेहरा, दिव्या माथुर, अरुण सब्बरवाल, तेजेन्द्र शर्मा, ऑस्ट्रेलिया से - रेखा राजवंशी, डेनमार्क से अर्चना पैन्यूली, त्रिनिडाड से आशा मोर, चीन से अनीता शर्मा, संयुक्त अरब अमीरात से - पूर्णिमा वर्मन, भारत से - नासिरा शर्मा, कृष्ण बिहारी, मनीषा कुलश्रेष्ठ, गीताश्री और पंकज सुबीर की कहानियाँ इस संग्रह में संकलित की गई हैं।

संकलन की पहली कहानी "एक प्यारी-सी याद" कथाकार उमेश अग्निहोत्री आत्मकथात्मक शैली में लिखी, मानवीय संवेदनाओं को चित्रित करती एक मर्मस्पर्शी, भावुक कहानी है। उमेश अग्निहोत्री अपनी कहानियों में अपने अनुभवों को बड़े ही सरल अंदाज़ में प्रस्तुत करते हैं। लेखक ने एक स्त्री के जीवन का कटु यथार्थ इन शब्दों में पिरोया हैं : मैंने अपर्णा से पूछा - क्या किसी लड़की के लिए यह संभव है कि वह अपने पहले प्यार को भूल जाए ? वह बोलीं, "अगर वह याद रखे तो गृहस्थी आगे कैसे चले ! बच्चों की परवरिश कैसे हो ! और हम लड़कियों को तो बचपन से ही शिक्षा दी जाती है कि अतीत को भूलो ! शादी होती है तो यह ही कहा जाता है - अब जिस घर में जा रही हो, वहीं की हो कर रहना। मायके को भूलो, सखियों को भूलो, सब को भूलो, आस-पड़ोस, गली-मोहल्ले, सब कुछ भूलो। पीछे मुड़ कर न देखो। भूलो, भूलो - अपना नाम, अपनी पहचान तक। लड़कियाँ पीछे देख कर भी नहीं देखतीं।"

"अब के बिछुड़े" कहानी को कथाकार सुदर्शन प्रियदर्शिनी ने कलमबद्ध किया है। "अब के बिछुड़े" गोरी मेम की मन: स्थितियों और द्वंद्व की एक मर्मस्पर्शी, भावुक कहानी है। यह कथा प्रेम की पराकाष्ठा का सजीव दस्तावेज़ है। यह रचना बचपन के आत्मीय प्रेम की अनुभूतियों का पिटारा है। बचपन से ही कथानायक रजत का कथा नायिका गोरी मेम के प्रति प्रेम वास्तविक और गहरा है लेकिन रजत अपने प्रेम को व्यक्त नहीं कर पाता है। गोरी मेम अन्य व्यक्ति से शादी कर के जा चुकी होती है। रजत गोरी मेम के प्यार में बावला हो जाता है। कहानी में प्रेम की अभिव्यक्ति का जो सजीव और जीवंत चित्रण है वह लाजवाब है।

विदेशों में भी रिश्तों में ताज़गी है, अपनापन है, नि:स्वार्थ प्रेम है, इसकी रोचक दास्ताँ प्रस्तुत करती है कथाकार पुष्पा सक्सेना की कहानी "चाहत की आहट"। विक्टर की संवेदनाओं को लेखिका ने जिस तरह से इस कहानी में संप्रेषित किया है वह काबिले तारीफ़ है। इस कहानी में विक्टर के गिटार की मीठी धुन क्रिस्टीना को बाँध सा लेती है। क्रिस्टीना को शुरू से संगीत से प्यार था लेकिन विक्टर के गिटार की धुन सुन कर वह दीवानी हो जाती है और वह विक्टर से प्रेम करने लगती है।

कथाकार अनिल प्रभा कुमार द्वारा लिखी कहानी "मौन-राग" बुज़ुर्ग दम्पति सतनाम और उसके पति रंजीत जग्गी की एक ऐसी प्रेम कहानी है जो कथ्य और अभिव्यक्ति दोनों ही दृष्टियों से पाठकीय चेतना पर अमिट प्रभाव छोड़ती है।

सुधा ओम ढींगरा ने "यह पत्र उस तक पहुँचा देना" कहानी का प्रारंभ अमेरिका के सेंट लुइस शहर के बर्फ़ीले तूफ़ानों से किया है। यह कहानी एक अमेरिकन लड़की जैनेट गोल्डस्मिथ और एक भारतीय लड़के विजय मराठा के प्रेम संबंधों और संवेदनाओं की संस्मरणात्मक कहानी है। परिवेश के अनुसार भाषा-शैली गढ़ने में सुधा जी बहुत दक्ष हैं। सेंट लुइस शहर का बर्फ़ीला तूफ़ान पाठक की आँखों के सामने चलचित्र की तरह चलता हुआ नज़र आता है। लेखिका ने परिवेश के अनुरूप भाषा और दृश्यों के साथ कथा को कुछ इस तरह बुना है कि कथा खुद आँखों के आगे साकार होते चली जाती है। कहानियाँ लिखते समय सुधा जी स्वयं उस दुनिया में रच-बस जाती हैं, यही उनकी कहानियों की सबसे बड़ी विशेषता है। इस कहानी में दीपाली का यह कथन बहुत महत्त्वपूर्ण है - "गंदी राजनीति जीत गई और सच्चा प्यार हार गया। पॉलिटिशियन किसी भी देश के हों, सब एक जैसे हैं।" कहानी में लेखिका ने संवेदना के मर्मस्पर्शी चित्र उकेरे हैं।

कथाकार डॉ. अफ़रोज़ ताज ने "अतीत की वापसी" कहानी का गठन बहुत ही बेजोड़ ढंग से प्रस्तुत किया है। लेखक ने कथानायक अनिल की ऐसी मन:स्थिति पर वार किया है जिसमें अक्सर पति अपनी पहली पत्नी को भूल नहीं पाता है और दूसरी पत्नी में अपनी पहली पत्नी की छवि ढूँढ़ता है। लेखक ने कहानी की मुख्य किरदार नीमा के मन की अनकही उथल-पुथल को शब्दों के धागों में सुंदरता से पिरोया है - "मैं तुम्हारे साथ रहना चाहती थी। मगर मुझे क्या मिला? सिर्फ़ आइना। मुझे लगता है मैं दर्पण के मकान में रह रही हूँ। चारों ओर जिधर देखती हूँ केवल मैं ही नज़र आती हूँ ख़ुद को देखते-देखते। ख़ुद को खो चुकी थी तुम्हें तलाश करते-करते।" इस कहानी की गहराई आप इस कहानी के अंत से जान सकते हैं और यह अंत बहुत कुछ सोचने को मजबूर कर देता है। कहानी का अंत ही कहानी की जान है। "तुमने मेरा अतीत खोकर मुझे न पाया। मैंने तुम्हारा अतीत पाकर तुम्हें खोया।" अनिल सहर उठा डूबते स्वर में बोला, "मेरी बात तो सुनो नीमा !" "और हाँ," वह बोली, "तुम्हीं चाहते थे न कि मैं पूरी की पूरी अंजलि बन जाऊँ तो अगर मैं तुमसे तलाक़ न चाहती तो अधूरी ही अंजलि

बनती।"

अमरेंद्र कुमार की कहानियों में अनुभव एवं अनुभूतियों की सच्चाई के साथ अपनी मिट्टी की सौंधी महक की ख़ुशबू आती है। कथाकार अमरेंद्र कुमार ने "ग्वासी" कहानी का सृजन बेहतरीन तरीके से किया है। कहानी का दृश्य विधान इसकी ताक़त है। "ग्वासी" अमरेंद्र कुमार की आत्मकथात्मक शैली में लिखी एक अनूठी दार्शनिक प्रेम कहानी है। कथाकार अमरेंद्र कुमार ने "ग्वासी" कहानी में ग्वासी इमारत में बचपन, किशोर और युवा वय में अंजली के साथ गुज़ारे समय को कहानी के नैरेटर अमर के माध्यम से सजीव चित्रण करके ग्वासी इमारत को अमर और अंजली के प्रेम की तरह अमर कर दिया। यह कहानी 'ग्वासी' जैसे ऐतिहासिक स्थल के साथ अमर और अंजली के घनिष्ठ आत्मिक संबंध को उभारती है। लेखक ने अमर की मन:स्थिति का विशद चित्रण किया है।

कथाकार सुमन कुमार घई द्वारा लिखित "स्वीट डिश" शीर्षक को सार्थक करती, वैचारिक अंतर्द्वंद्व के भँवर में डूबते-उतरते कथानायक विजय के मन की उथल-पुथल की कहानी है। सहज, संवेदनशील मानव मन से साक्षात्कार कराती इस कहानी में कहानीकार ने विजय के मनोभावों को खूबसूरती से व्यक्त किया है। इस कहानी में प्रेम, आसक्ति, विरक्ति, भावुकता, सम्मोहन, आनन्द, आत्मीयता इत्यादि मनोवृत्तियाँ बड़े सूक्ष्म रूप से स्पष्ट हुई है। कथाकार की परिवेश के प्रति सजग दृष्टि है। कहानी रोचक है। कहानी में सहजता है। विजय और सुधा ने अपने विवाहित जीवन के चालीस वर्ष पूर्ण किए थे। कहानी में सुधा की मृत्यु के पश्चात् विजय के एकाकी जीवन का वर्णन है। विजय की छोटी बहू अमि को जब मालूम पड़ता है कि विभा आंटी विजय को पसंद करती है तो वह विभा आंटी को डेट पर ले जाने के लिए विजय को मना लेती है।

कथाकार डॉ. हंसा दीप द्वारा लिखित "कॉफी में क्रीम" कामकाजी जीवन में सहजता से होने वाले आत्मीय प्रेम की एक अनोखी कहानी है। लेखिका ने बॉब और इवा के आत्मीय प्रेम को कहानी के अंत में प्रतीकात्मकता के साथ रेखांकित किया है - गर्म हथेलियों की तपन ने इवा के जमे हुए आँसुओं को बहा दिया। शाम का धुँधलका अपने चरम पर था। काले बादलों का झुंड, सफ़ेद बादलों के साथ एकाकार होते, डूबते सूरज की लालिमा में विलीन हो रहा था। न दिन था, न रात, सिंदूरी शाम थी। इस कहानी में कथ्य और शिल्प की नवीनता है।

शैलजा सक्सेना एक सिद्धहस्त कहानीकार हैं। "निर्णय" कहानी की नायिका माला शर्मा परिस्थिति के अनुसार दोनों बार सही निर्णय लेती है। शैलजा सक्सेना ने कथानायिका माला शर्मा का चरित्र-चित्रण बहुत ही सशक्त रूप से किया है। अपनी प्रतिभा और शक्ति से माला शर्मा संस्कृति एवं परम्परा का संकोच छोड़कर तर्क और बुद्धि से अपने जीवन का निर्णय लेती दिखती है। वह भावना में नहीं बहती है।

"मिस्टर कमिटमेंट" कहानी को कथाकार उषा राजे सक्सेना ने काफी संवेदनात्मक सघनता के साथ प्रस्तुत किया है। इस कथा में अनुभूतियों की मधुरता है, अकेलेपन से उबरने की तीव्र उत्कंठा है और अपने प्रेमी से शादी करके घर बसाने की उत्कट अभिलाषा है। "मिस्टर कमिटमेंट" अपने प्रेम पर अटूट विश्वास को दर्शाती मुनीरा और बुरहान की रोचक प्रेम कहानी है जो पाठकों को काफी प्रभावित करती है। इस कहानी में लेखिका ने संबंधों की गर्माहट, ज़िंदादिली को बखूबी रेखांकित किया है। लेखिका ने मुनीरा के मन की अनकही उथल-पुथल को शब्दों के धागों में सुंदरता से पिरोया है - बुरहान उसके जीवन का मक़सद है। बुरहान का अस्त-व्यस्त जीवन उसका मनोरंजन करेगा। शायद इसीलिए बुरहान उसे पसंद है। वह उसके जीवन की बागडोर सँभालना चाहती हैं। उसके जीवन को व्यवस्थित करने में वह असीम सुख का अनुभव करेगी। बुरहान के लंबे बिखरे बाल, अधसोई- अलसाई झपकती आँखें, नीचे सरकते पतलून की कमर से आधी अंदर और आधी बाहर खुसी क़मीज़, सब कुछ उसे अच्छा लगता है, कई बार बातें करता-करता बुरहान उसे बुरहान काम लॉरेल अधिक लगता है, कई बार बातें करता-करता बुरहान कॉमेडियन से दार्शनिक हो उठता है। यही क्षण, बस यही क्षण वह बटोर और समेट कर अपने अंदर महफ़ूज़ रखना चाहती है। बुरहान उसका है और सदा उसका ही रहेगा, बुरहान उसके जीवन में ख़ूबसूरत इंद्रधनुषी रंग बिखेरता है। उषा राजे सक्सेना की कहानियों में विदेशी जीवन से प्राप्त अनुभवों की सच्चाई का चित्रण मिलता है।

कथाकार उषा वर्मा ने "एलिस तुमने कहा था" कहानी का गठन बहुत ही बेजोड़ ढंग से प्रस्तुत किया है। इस कहानी का कैनवास बेहतरीन है, जिसे पढ़ते हुए आप के मन में जिज्ञासा बनी रहती है कि कहानी का अंत क्या होगा। कहानी की स्त्री पात्र एलिस अपनी विशिष्टता के साथ उपस्थित है और साथ ही इस कहानी में एलिस के संघर्ष, साहस और आत्मविश्वास को बहुत बारीकी के साथ उठाया है। कहानी की मुख्य किरदार एलिस विकट परिस्थितियों में भी अपना धैर्य नहीं खोती है। सच्चे प्यार में उम्र का कोई बंधन नहीं होता है। एलिस अपने पति जिम से आठ साल छोटी थी। इस कहानी में अवचेतन मन की अवधारणा है। यह रचना एक जिम मॉरगन के मानसिक अन्तर्द्वंद्व की कहानी है। "एलिस तुमने कहा था" कहानी जिम मॉरगन और उसकी पत्नी एलिस के अमर प्रेम को दर्शाती है। एलिस ग़ज़ब की खूबसूरत थी। उसकी बड़ी-बड़ी आँखों में समंदर की गहराई थी। जिम अक्सर ही कहता, एलिस तुम इतनी ख़ूबसूरत नहीं भी होती तो भी मैं तुमसे इतना ही प्यार करता। मैं चाहता हूँ तुम मुझसे दूर न रहो। हम हमेशा साथ रहें। "ओनली डेथ डू अस पार्ट।" एलिस मुस्करा देती कहती - "नॉट ईवन डेथ विल पार्ट अस।" कहानी का शीर्षक "एलिस तुमने कहा था" कथानक के अनुरूप है। यह कहानी पाठक की चेतना को झकझोरती है।

"विसर्जन" कहानी शिल्प और कथानक में बेजोड़ हैं और पाठकों को सोचने को मजबूर करती हैं। कहानियाँ लिखते समय लेखिका शैल अग्रवाल स्वयं उस दुनिया में

रच-बस जाती है, यही उनकी कहानियों की सबसे बड़ी विशेषता है। "विसर्जन" कहानी में कथाकार शैल अग्रवाल ने शब्द चयन पात्र एवं परिवेश के अनुकूल किया है। यह कहानी एक अलग संवेदनात्मक मन:स्थिति की उपज है। यह रचना एक व्यक्ति के मानसिक अन्तर्द्वंद्व की कहानी है। कहानी वास्तविक यथार्थ को प्रस्तुत करती है। कहानी में एक ओर एक ऐसे टूटते हुए व्यक्ति की मनोदशा का चित्रण है जिसमें आत्मविश्वास की कमी है तो दूसरी ओर एक ऐसी युवती का चित्रण है जो साहसी, बिंदास और आत्मविश्वासी है।

कादम्बरी मेहरा की "तितली" एक अल्हड़ नवयुवती आशु कपूर की कहानी है जो शेखर के प्यार में छटपटाती है। शेखर की वास्तविक परिस्थिति को जानकर और उसका इंतज़ार करते-करते कहानी की नायिका आशु कपूर अंतत: वास्तविकता को स्वीकार करती है और अपने घरवालों की मर्ज़ी से गंभीर से शादी कर लेती है। कहानीकार ने आशु कपूर की विवशता को दिखाकर स्त्री जीवन की नियति को दिखाया है।

अत्यंत सहजता और संवेदना से रची दिव्या माथुर की कहानियों का फलक बहुत बड़ा है। उसमें ब्रिटेन का स्थानीय समाज, भारतीय समाज, स्त्री विमर्श सब मौजूद है। इस कहानी में स्त्री मन में बसा अकेलापन एवं असुरक्षा बोध उद्घाटित हुआ है जो अपनी परिस्थितियों और परिवेश से जूझ रही है। "टकराव" कहानी प्रेम, मोहब्बत, रूमानियत, विछोह के माध्यम से मानव जीवन के विशिष्ट क्षणों का दर्शन कराती है। इस कहानी में ब्रिटेन और भारतीय समाज के यथार्थ की अभिव्यक्ति है। कहानी में घटनात्मक चेतना प्रवाह अधिक है, इसी में चरित्रों की विशिष्टता उद्घाटित होती है। इस कहानी में कहानी की मुख्य किरदार महिका की विवशताओं को कथाकार ने स्वाभाविक रूप से शब्दबद्ध किया है। इस कहानी में महिका की भीतरी यातना तीव्रता के साथ व्यक्त हुई है। महिका के संघर्षों का जटिल संवेदनात्मक चित्रण दिव्या माथुर ने अपनी पैनी कलम से किया है।

कथाकार अरुण सब्बरवाल द्वारा लिखित "इंग्लिश रोज़" एक बेहद ख़ूबसूरत कहानी है। यह कहानी पारिवारिक रिश्तों के बीच का ताना-बाना, रिश्तेदारों की संवेदनहीनता, पारिवारिक रिश्तों का विद्रूप चेहरा, इत्यादि बुनियादी सवालों से साक्षात्कार करती नज़र आती हैं। यह पश्चिमी संस्कृति के प्रति उसके पूर्वाग्रह को ध्वस्त करती एक सशक्त कहानी है। एक भारतीय नारी विधि अपने विवाहित जीवन के कटु अनुभव के बाद एक नया कदम उठाकर अपनी उम्र से ३५ वर्ष बड़े लन्दन निवासी जॉन से शादी कर लेती है। उसका अतीत और उसका समाज उसे डराता है। कहानी विधि के मानसिक संघर्ष को चित्रित करने के साथ भारतीय लोगों के रिश्ते-नातों के कड़वे सत्य को उद्घाटित करती है। कहानीकार ने विधि की पीड़ा, व्यथा और संवेदना को बखूबी व्यक्त किया है। यह कहानी पूरी शिद्दत से यह हक़ीक़त उद्घाटित करती है कि किसी भी देश या वर्ग विशेष के प्रति कोई पूर्वाग्रह नहीं रखना चाहिए। लेखक ने बहुत गहराई से पूर्ण शोध करने के बाद इस कहानी का ताना-बाना बुना है।

चर्चित कथाकार तेजेन्द्र शर्मा की कहानी "प्यार की इंटेलेक्चुअल जुगाली" में आधुनिक समाज के यथार्थ दर्शन होते हैं। तेजेन्द्र शर्मा अपनी हर कहानी में नयापन लाते हैं। इनकी सभी कहानियाँ अनूठी हैं। तेजेन्द्र शर्मा की कहानियाँ इंटेलेक्चुअल जुगाली नहीं हैं बल्कि समाज का ठोस यथार्थ है। "प्यार की इंटेलेक्चुअल जुगाली" में कहानीकार ने प्रेम और कामेच्छा को एक ही बताया है। इस कहानी में मानव तथा ममता उर्फ़ हीर के माध्यम से प्रेम की एक नई अनुभूति से परिचय करवाया है। "प्यार की इंटेलेक्चुअल जुगाली" कहानी फ़ोन पर हुए संवादों के माध्यम से बुनी गई है। प्रेम के यथार्थ स्वरूप को कथाकार ने स्वाभाविक रूप से शब्दबद्ध किया है - "ऐसा नहीं होगा हीर। तुम मुझसे प्यार करके मैली नहीं हो सकतीं। मैं तुम्हारे साथ ऐयाशी नहीं करूँगा। प्यार तब तक पूरा नहीं होता जब तक दो जिस्म, दो जान, दो रूहें एक न हो जाएँ! जब तक तुम तैयार नहीं हो जातीं, इंतज़ार करेगा, तुम्हारा गन्दा जानू।"

कथाकार रेखा राजवंशी द्वारा लिखित "प्रेम या छलावा" पति-पत्नी के रिश्तों के बीच के ताने-बाने को चित्रित करती भावुक कहानी है जो समाज को सीधे-सीधे आईना दिखाती है। मनप्रीत को अपने पति सुखविंदर के प्रेम में छलावे का रूप देखने को मिलता है। यह अत्यधिक भावुक विश्वास का परिणाम है। प्रेम में सामान्यत: विश्वास का अतिरेक धोखे का आधार तैयार करता है। सुखविंदर का घिनौना चरित्र मनप्रीत की आँखें खोल देता है। कहानी आख़िर तक पाठकीय उत्तेजना को बना के रखती है। इस कहानी में प्रवासी मन के अंर्तद्वंद्व और संघर्ष उद्घाटित हुए हैं। कहानी में मनप्रीत का मानसिक ऊहापोह प्रखर रूप में विद्यमान है। मनप्रीत से उसकी कहानी सुनकर कला के मन में सच्चे प्रेम और रिश्तों को लेकर कशमकश चल रही थी - क्या सुख और जस का रिश्ता वाकई प्रेम का रिश्ता था? क्या जस का सुख से प्रेम सच्चा था? क्या जैसे सुख ने गुरप्रीत से सिर्फ ऑस्ट्रेलिया के पी आर के लिए शादी की थी, जस ने सुख के साथ ठीक वही नहीं किया? क्या सच्चा प्रेम कहीं होता भी है? कई बार स्वार्थ ही रिश्ते बनाने और निभाने का मुख्य कारण हो जाता है। और गुरप्रीत का सुख के प्रति प्रेम सच्चा था या सिर्फ ऑस्ट्रेलिया में उसकी पढ़ाई- लिखाई का खर्चा उठाने की ज़रूरत? और सुख ने तो गुरप्रीत को इस्तेमाल किया ही था, पर जस से भी उसका सच्चा प्रेम क्या सिर्फ शारीरिक भूख थी, जिसे वह सच्चा प्रेम मान रहा था? और जस का सुख से प्रेम और शादी? वो क्या सिर्फ जस का ऑस्ट्रेलिया में बस जाने का एक माध्यम भर नहीं था? "और मेरी राघव से शादी?"

कथाकार अर्चना पैन्यूली की कहानियाँ स्त्री-जीवन की सच्चाई, दाम्पत्य जीवन में बनते-बिगड़ते रिश्तों को अभिव्यक्त करती हैं। "किसे चुनूँ?" परम्परा और आधुनिकता के टकराव की एक रोचक कहानी है। यह कहानी घटना प्रधान होने के साथ-साथ चरित्र प्रधान भी है। अनिता का कम उम्र में ही सांस्कृतिक असमानता और प्रवासियों के जीवन संघर्ष से परिचय होता है। अनिता की बड़ी बहन नैना

यहूदी बॉयफ्रेंड जोनाथन के साथ रहने लगी तो उसका सबसे अधिक प्रभाव अनिता पर पड़ा। नैना के किये की सज़ा अनिता को भुगतनी पड़ी। अनिता अपने स्कूल के दोस्त मॉर्गन से प्रेम करती थी लेकिन उसे अनिल से शादी करनी पड़ी। इस कहानी में अनिता के मन की बेबाक, निश्छल, निस्संकोच अभिव्यक्ति चित्रात्मकता के साथ बरबस व्यक्त हुई है। इस कहानी में स्त्री मन की सुंदर चित्रण है।

कथाकार आशा मोर द्वारा सृजित कहानी "तुम्हारा इंतज़ार करूँगा" शर्मिला की मर्म को स्पर्श करती है और पाठक को भी उसकी छुअन का एहसास दिलाती है। आशा मोर ने इस खूबसूरत प्रेम कहानी का गठन बहुत ही बेजोड़ ढंग से प्रस्तुत किया है। कहानी की पात्र शर्मिला को जिस प्रकार लेखिका ने गढ़ा है, उससे ऐसा लगता है कि शर्मिला सजीव होकर हमारे सामने आ गई है। यह डॉक्टर अशोक और शर्मिला की एक अनोखी प्रेम कहानी है।

इस संकलन की एक दिलचस्प, रोचक और महत्त्वपूर्ण कहानी है "कमली यार दी ..."। इस कहानी को कथाकार अनीता शर्मा ने एक अलग कलेवर की बेहद खिलंदड़ अंदाज़ में लिखी है। अपने प्यार को पाने के लिए कथानायक को कितने पापड़ बेलने पड़ते हैं, इसे बहुत ही मनोरंजक अंदाज़ में लेखिका ने कहानी में बयाँ किया है। पाठक के मन में रह-रह कर जिज्ञासा एवं कौतुहल की भावना पनपती रहती है। अनीता शर्मा की कहानियाँ घटनाओं के माध्यम से अत्यंत गहरे प्रवासी यथार्थ-बोध का मनोवैज्ञानिक परिचय देती हैं। इस कहानी की नायिका एलिना बिल्कुल सहज और वास्तविक लगती है। यह कहानी बहुत सधे हुए अंदाज़ में आगे बढ़ती है और अंततः जब एलिना बाँसुरी की वही धुन सुनती है तो उस बाँसुरी वाले से मिलने के लिए बेचैन हो जाती है। वह बाँसुरी वाला और कोई नहीं, वह एलिना का प्रेमी यू ता छंग ही था। एलिना की प्रेमानुभूति को लेखिका ने इस प्रकार उजागर किया है। "नाराज़ तो मैं बहुत थी इसके साथ, पर इसने बाँसुरी के जादू में बाँध ही लिया मुझे। फिर तो इसके पीछे-पीछे चीन चली आई और अब तो हर रोज़ इसकी बाँसुरी सुने बिना नींद नहीं खुलती।"

शारजाह की रहने वाली पूर्णिमा वर्मन का साहित्य जगत् से घनिष्ठ संबंध है। वे वेब पत्रिका के संपादन के साथ विविध विधाओं के लेखन से भी जुड़ी हुई हैं। "मुखौटे" पूर्णिमा वर्मन की एक महत्त्वपूर्ण कहानी है। कहानी के दृश्य बहुत प्रभावी हैं, लेखिका ने शारजाह के मनोरंजन स्थल कसबा को जीवंत कर दिया है। मोहक खुली हवा, तरह-तरह की आकर्षक बत्तियों से जगमगाता, कनाल में नौका विहार, आर्ट सेंटर, थियेटर, रेस्त्रां, संगीत से भरपूर यह कसबा कला, साहित्य और संस्कृति का अद्‌भुत संगम स्थल है। इस कहानी की नायिका शारजाह में अपने अकेलेपन को दूर करने के लिए अपने असली नाम की जगह छुईमुई नाम से सोशल मीडिया में एक अकाउंट बनाती है। वैक्यू लियोनी नाम का एक इटैलियन छुईमुई का मित्र बन जाता है। उस इटैलियन का नाम भी वैक्यू लियोनी नहीं है। दोनों औरकुट पर चैटिंग करते हैं। दोनों प्रत्यक्ष रूप से कभी नहीं मिलते हैं। वैक्यू लियोनी मुसीबत में छुईमुई की सहायता करता है, छुईमुई उससे मिलकर उसका धन्यवाद अदा करना चाहती है तब औरकुट पर छुईमुई को एक सन्देश मिलता है - छुईमुई, मुझे ख़ुशी है कि मैं तुम्हारे लिए कुछ कर सका। आशा है तुम खुश होगी। मुझे कुछ काम से कल ही सिसली के लिए निकलना है। लगता है कि जल्दी लौटना न होगा। वहाँ व्यस्तता बहुत होगी इसलिये औरकुट पर आना संभव नहीं होगा। इटली के लोगों को मुखौटे बहुत पसंद हैं। शायद आपने कार्निवाल ऑफ वेनिस का नाम सूना होगा। यह पर्व ही मुखौटों का पर्व है। मुखौटों से जीवन की सुंदरता बढ़ती है। इसलिये मुखौटों से बाहर आने की बात सोचना बेकार है।

हिन्दी की वरिष्ठ कथाकार नासिरा शर्मा की "मरुस्थल" दो सहेलियों ममता और इंदू की कहानी है जो एक ही पुरुष राकेश के प्रेम जाल में फँस जाती हैं। राकेश दोनों सहेलियों को यादों के मरुस्थल में छोड़ कर उन से दूर चला जाता है। नासिरा शर्मा अपने विभिन्न किरदारों को समग्रता से पेश करती हैं। कहानी के पात्र हमारे आस-पास के परिवेश के लगते हैं। इस कहानी में प्रयुक्त कथानुकूलित परिवेश, पात्रों की रोमांटिक अनुभूतियों, प्रणयानुभूति, पात्रों का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण लेखिका की उत्कृष्ट कला-कौशलता का परिचय देती है। यह कहानी अपने कथ्य, शिल्प और कलात्मकता की दृष्टि से उल्लेखनीय बन पड़ी है।

कृष्ण बिहारी बेमिसाल कथाकार हैं। कथाकार कृष्ण बिहारी ने "ढाके की मलमल" कहानी का सृजन बेहतरीन तरीके से किया है। कहानी का दृश्य विधान इसकी ताक़त है। कहीं-कहीं तो लगता है हम इसके साथ बह रहे हैं। कृष्ण बिहारी की कहानियों में खाड़ी देशों के समाज का यथार्थ सामने आया है। कृष्ण बिहारी सामाजिक एवं परिवेशगत प्रवृत्तियों के प्रति जागरूक है। वे किसी विस्तार अथवा विषय की विवेचना में फँसने के बजाए सीधे तौर पर अपनी बात कहना पसंद करते हैं। उनकी कहानियों का शिल्प चरित्रों की मनःस्थिति एवं कथ्य की आवश्यकता के अनुरूप निर्धारित होता है। वे कहानी उसी तरह लिखते हैं जिस तरह कोई व्यक्ति डायरी लिखता है। इस कहानी को पढ़ते हुए लगता है कि हम महक शुक्ला उर्फ़ मलमल की डायरी पढ़ रहे हैं। सधे और सीधे अंदाज़ में महक के जीवन का एक बड़ा सच हमारे सामने उभरकर आ जाता है। "कॉन्ट्रैक्ट तीन साल का ही था। मैं चाहती थी कि यथास्थिति ही बरकरार रहे लेकिन अब ऐसा नहीं लगता। ग्वाटम तलाक़ भी नहीं ले सकता। मैं उसे पा भी नहीं सकती। खो भी नहीं सकती। क्या से क्या हो गई मेरी ज़िंदगी। भरी सभा में द्रौपदी निर्वस्त्र होने से बच गई मगर मैं चार मर्दों के सामने खुद ही नंगी हो गई।" उसकी आँखों से टप-टप आँसू गालों पर ढलक आए।

चर्चित युवा कथाकार मनीषा कुलश्रेष्ठ ने "एक ढोलो दूजी मरवण ... तीजो कसूमल रंग" कहानी में एक क़स्बे की यात्रा के माध्यम से अव्यक्त और ख़ामोश प्रेम को अत्यंत मार्मिकता से रेखांकित किया है। इस कहानी का शीर्षक एक लोकप्रिय राजस्थानी लोक

गीत के मुखड़े पर आधारित है। एक ढोलो दूजी मरवण ... तीजो कसूमल रंग का मतलब है सच्चा प्रेमी, निश्छल प्रेमिका और तीसरा कसूमल रंग जो शौर्य, प्रेम और ज़िंदादिली का प्रतीक है। कहानी की नैरेटर और उसका प्रेमी शैलेश, दोनों ही चित्रकार हैं, इन दोनों को सच्चे और पवित्र प्रेम का अनुभव एक क़स्बे की यात्रा के दौरान एक बस में होता है। मास्टरनी और बस कंडक्टर का ख़ामोश, उदात्त, पवित्र प्रेम कहानी की नैरेटर और उसके प्रेमी शैलेश के साथ ही पाठक को भी चकित करता है। इस कहानी में लेखिका ने प्रतीकों का प्रयोग किया है। एक बानगी देखिए – मुझे उसकी माँग कोई उजाड़, सूनी गली लगने लगी। उस पर बहुत बड़ी और घनी बरौनियों वाली आँखें, गली के मुहाने पर उगे दो पीपल। जो उठतीं तो उदास करती हीं, गिरतीं तो रुला ही जातीं। उसकी आँखें केवल आँखें नहीं थी, चाँदनी में भी सुलगता हुआ कोई रेगिस्तान थीं। सारे संसार में विधवाओं की पोशाक चाहे जैसी हो, वे माँग भी न भरती हों। पर आँखों का सूनापन। अनायास किसी लहलहाते खेत का बंजर और रेतीला हो जाने जैसा था।

सुपरिचित कथाकार गीताश्री की कहानी "हंकपड़वा" एक हंकपड़वा पमपम तिवारी और सामंती परिवार की एक स्त्री जानकी की अनोखी प्रेम कहानी है। बचपन से ही दोनों एक-दूसरे को चाहते हैं, लेकिन प्रेमिका के पिता उसकी शादी इसलिए नहीं होने देते हैं, क्योंकि हंकपड़वा पमपम तिवारी ग़रीब था। दोनों बिछड़ जाते हैं। पमपम की प्रेमिका जानकी कहती है कि कोई काम छोटा-बड़ा नहीं होता, यह एक आर्ट है। मरते समय वह जानकी अपनी बेटी को वसीयत देती और उसमें एक ज़मीन का ज़िक्र करती है कि मरने के बाद हंकपड़वा पमपम तिवारी उस ज़मीन पर आए और हंक पढ़े। हंकपड़वा पमपम तिवारी वहाँ आता है और अंतिम बार अपनी प्रेमिका का नाम लेकर हंक पढ़ता है और चला जाता है। कथाकार ने जानकी के कथन को बड़े ही स्पष्ट तरीके से शब्दबद्ध किया है – "देख पमपम, तुझसे पहले मैं मरूँगी, तू वादा कर, मेरे मरने के बाद अंतिम हंक तुम ही पढ़ोगे। पढ़ना ज़रूर कोई बहाना नहीं चलेगा। तुमसे सुंदर कौन पढ़ेगा हंक। और सुन इस खानदान का खूब मज़ाक बनाना। छोड़ना मत।" यह एक सशक्त कहानी है जिसमें कथ्य का निर्वाह कुशलतापूर्वक किया गया है। लेखिका ने जानकी के मानसिक धरातल को समझकर उसके मन की तह तक पहुँचकर कहानी का सृजन किया है।

इस संकलन की एक दिलचस्प, रोचक और महत्त्वपूर्ण प्रेम कहानी है "महुआ घटवारिन"। सुपरिचित कथाकार पंकज सुबीर का कथा साहित्य में विशेष स्थान है। पंकज सुबीर की कहानी "महुआ घटवारिन" को पढ़कर रेणु की महुआ घटवारिन की याद ताज़ा हो जाती है। "महुआ घटवारिन" १९वें कथा यूके अवॉर्ड से सम्मानित पंकज सुबीर की एक लोकप्रिय कहानी है। इस कहानी में शारदा का किरदार प्रभावशाली है। कथाकार ने इस कहानी का सृजन बहुत ही खूबसूरती से और कलात्मकता के साथ किया है। कथानायक आनंद कहानी की नायिका शारदा से जब अंतिम बार मिलने जाता है तब आनंद ने शारदा से कहा "मैं तुमसे मिलने आता रहूँगा शारदा।" आनंद की बात सुनकर शारदा आनंद से कहती है "आनंद तुमने आम्रपाली की कथा पढ़ी है ? उसमें जब आम्रपाली को वैशाली द्वारा ज़बर्दस्ती नगरवधु बना दिया जाता है, तब एक दिन उसका पूर्व प्रेमी हर्ष सारे बंधन तोड़ते हुए आम्रपाली तक पहुँच जाता है, और उसे अपने साथ भाग चलने को कहता है, तब आम्रपाली उसे कहती है, कि ऐसे नहीं, सारे वैशाली में आग लगा कर आना मेरे पास, तब मैं चलूँगी तुम्हारे साथ, अभी नहीं।" आनंद ने कहा "तो ? इस आम्रपाली की कथा को सुनाने का अभी क्या प्रयोजन है ?" तब शारदा ने कहा "प्रयोजन यह है, कि तुम्हारे परिवार की यहाँ से विदाई के कई सारे कारणों में, मैं स्वयं को भी एक महसूस करती हूँ। यह अपराध बोध है मेरे अंदर, जो तुम्हारे बार-बार आने से और गहरा होगा, इसीलिए मैं भी वही कहती हूँ, कि इस तरह मत आना मेरे पास, कुछ बन जाओ तब आना मेरे पास, मैं तब तक तुम्हारी प्रतीक्षा कर लूँगी, पर इस आधे अधूरे पलायनवादी अस्तित्व के साथ तुम्हारा बार-बार आना स्वीकार नहीं कर पाऊँगी।" कुछ सालों बाद जब प्रोफ़ेसर आनंद को साहित्य का शिखर सम्मान मिलता है और फिर वे शारदा से मिलने जाते हैं। शारदा आनंद से कहती है - पिछले साल तुम्हें शिखर सम्मान मिला है, बस तभी से मुझे उम्मीद थी कि अब तुम्हें आना चाहिए क्योंकि अब तुम वह बन गए हो जो मैं चाहती थी। शारदा से मिलकर प्रोफ़ेसर आनंद को लगा अब वे कुसुम के साथ बहस कर सकते हैं, महुआ घटवारिन की कहानी के बारे में क्योंकि अब वह कहानी पूरी जो हो गई है। पंकज सुबीर की "महुआ घटवारिन" एक युवक और संवेदनशील नारी के प्रेम संबंधों के नए स्वरूप को समझने का मंथन प्रस्तुत करती है। लेखक की यह कहानी हिन्दी कथा साहित्य में नए दृष्टिकोण का विकास करती है। शारदा के त्याग और आत्मीय प्रेम के कारण समकालीन आधुनिक कथा साहित्य में यह कहानी उल्लेखनीय बन पड़ी है। इस कहानी में कथाकार ने चरित्रों का चित्रण यथार्थ की भूमि पर किया है।

इस संकलन की कहानियों में कथाकारों की परिपक्वता, उनका सामाजिक सरोकार स्पष्ट दृष्टिगोचर होता है। कहानियों के चरित्र वास्तविक चरित्र लगते हैं, कृत्रिम या थोपे हुए नहीं। इन कहानियों में अनुभव एवं अनुभूतियों की प्रामाणिकता है। इस संग्रह की कहानियों में व्याप्त स्वाभाविकता, सजीवता और मार्मिकता पाठकों के मन-मस्तिष्क पर गहरा प्रभाव छोड़ने में सक्षम है। कहानियों के शीर्षक कथानक के अनुसार हैं और शीर्षक कलात्मक भी हैं। इस संग्रह की जो प्रेम कहानियाँ विदेश की पृष्ठभूमि पर रची गई हैं वे भी देशी ख़ुशबू से सराबोर हैं। कहानियों का यह संग्रह सिर्फ पठनीय ही नहीं है, संग्रहणीय भी है। आशा है कि प्रवासी साहित्यकार सुधा ओम ढींगरा द्वारा सम्पादित इस नवीन कहानी संग्रह "वैश्विक प्रेम कहानियाँ" का हिन्दी साहित्य जगत् में भरपूर स्वागत होगा।

000

भूरी आँखें घुँघराले बाल

(कहानी संग्रह)

समीक्षक : रमेश शर्मा

लेखक : अनुपमा तिवाड़ी

प्रकाशक : शिवना प्रकाशन, सीहोर, मप्र

रमेश शर्मा,
92 श्रीकुंज, बोईरदादर, रायगढ़
(छत्तीसगढ़)
मोबाइल- 9752685148, 7722975017
ईमेल- rameshbaba.2010@gmail.com

कहानियों को पढ़ते हुए पाठकों को अपनी बाहरी और भीतरी दुनिया से साक्षात्कार होने जैसा कुछ न कुछ अनुभव होना चाहिए अर्थात कहानी को पढ़ने के पूर्व और पढ़ने के उपरान्त मानसिक अनुभवों का जो अंतर है, उस अंतर का इन दोनों ही दुनियाओं से ठहरकर सीधा संवाद होना चाहिए। अनुपमा तिवाड़ी की कहानियों को पढ़ने के उपरान्त उपरोक्त वर्णित इस शर्त की कसौटी पर उन्हें कसे जाने की अगर बात हो, तो मेरा खुद का अपना अनुभव यह कहता है कि उनके संग्रह 'भूरी आँखें घुँघराले बाल' की ज़्यादातर कहानियाँ हमारी भीतरी और बाहरी दुनियाओं से भरपूर संवाद करती हैं। इन कहानियों को पढ़कर हम यूँ ही आगे नहीं बढ़ जाते बल्कि एक लम्बे समय तक इन कहानियों के भीतर रंगे-घुले ज़िंदगी के असल पात्रों के दु:ख दर्द और उनके संघर्ष को हम करीब से महसूस करते हैं। ये कहानियाँ कहीं से भी कहानी न लगते हुए ज़िंदगी की ठोस सच्चाइयों का एक जीवंत दस्तावेज़ लगती हैं जिसे लेखिका ने सामाजिक ज़िम्मेदारियों से भरे अपने यायावरी जीवन के बीच से खोज निकाला है। बहुत करीब से देखी परखी गईं सामाजिक घटनाओं को लेकर जब संवेदना की आँख से कहानियाँ लिखी जाती हैं, तब उन कहानियों में जीवन के दर्दनाक पहलुओं की स्वाभाविकता बची रह जाती है। यही स्वाभाविकता कहानी और पाठकों के मध्य एक सेतु की तरह है जहाँ से होकर ही कहानी और पाठक एक दूसरे के करीब पहुँच पाते हैं। कहानी के कथ्य की स्वाभाविकता जीवन की ठोस सच्चाइयों के करीब पहुँचकर ही अपनी अर्थवत्ता ग्रहण कर पाती है। अनुपमा की कहानियों को पढ़ते हुए कथ्य की उसी स्वाभाविकता को हम बराबर महसूस करते हैं। कथ्य की स्वाभाविकता को महसूसने के साथ कहानी में प्रयुक्त सरलरेखीय भाषा शिल्प जैसे आज के गैर ज़रूरी मुद्दे दिलोदिमाग़ से दूर जाने लगते हैं। अनुपमा ने घटनाओं की एकरेखीय प्रस्तुति और सरलरेखीय भाषा शिल्प का प्रयोग करते हुए भी कथ्य की गहराई के सहारे कहानियों को जिस तरह पठनीय बनाया है, यह पठनीयता ही कहानियों के साथ बची रह जाने वाली असल पूँजी है जिसे आज के समय में एक तरह से जान बूझ कर नज़र अंदाज़ करने की कोशिशें हुई हैं। कहानी "एक थी कविता" स्त्री जीवन से जुड़ी ऐसी कहानी है जिसे पढ़कर समाज और परिवारों के दमन की हौलनाक तस्वीरें एक ठोस सच्चाई के साथ आँखों के सामने चलचित्र की तरह आने लगती हैं। एक दमित स्त्री जिसे हर हाल में संघर्ष करना है, कभी अपने अस्तित्व के लिए तो कभी पारिवारिक अत्याचारों के खिलाफ़ ! कहानी में इस स्त्री संघर्ष को एक व्यापक स्पेस मिला है। कहानी की मुख्य पात्र 'कविता' जिस तरह अपनी मुक्ति के लिए परिवार और समाज की सभी वर्जनाओं को तोड़कर बाहर निकलती है और तमाम कठिनाइयों के बाद भी अपने लिए एक स्वतंत्र जीवन जीने का विकल्प चुनती है, ऐसे निर्णय बहुत मुश्किल प्रतीत होते हुए भी उसे चुने जाने की माँग कहानी के भीतर से उठती है जो आज के सन्दर्भ में सही भी है। अनुपमा ने जिन पात्रों को लेकर जीवन की कहानियाँ बुनी हैं वे पात्र समाज के ठुकराए हुए वंचित और दमित पात्र हैं। वंचित और दमित पात्र होते हुए अगर वह पात्र एक स्त्री हो तब उसकी कहानी दमन के

कई रंगों को लिए हुए होती है। ऐसी कहानियों को खोजती हुईं अनुपमा की नज़रें उन जगहों तक भी गई हैं जिन्हें कई बार पितृ सत्ता में डूबा हुआ समाज जान बूझकर नज़र अंदाज़ करने का आदी होता है। एक लड़की को उसकी देह से परे देखने की दृष्टि जब समाज के पास न हो, उसे केवल एक स्त्री के रूप में ही देखे जाने की आदत सी पड़ गई हो तो आख़िर ऐसे समाज की नज़र में घर से निकली अकेली लड़की की क्या स्थिति होती है? ऐसे ही ज्वलंत हालात की पड़ताल "ओ लड़की तू कहाँ है" कहानी के माध्यम से अनुपमा ने की है। रेल में सफ़र कर रही एक सर्वहारा वर्ग की दमित लड़की जो रेल के दरवाज़े के पास बैठी है, उसे हरेक पुरुष द्वारा यौनिक दृष्टि से देखा जाना और उसी यौनिक दृष्टि से उनकी ओर से उसे छूने की कोशिशों का घटित होना आज हमारी आँखों के सामने आम घटना है जिसे हमारा समाज बड़ी आसानी से स्वीकार भी चुका है। ऐसी घटनाएँ अब लोगों का ध्यान नहीं खींचती, बल्कि लोग अब उसे सहज मान चुके हैं। समाज की इसी सहज स्वीकार्यता पर यह कहानी प्रहार करती हुई जायज़ सवाल खड़ा करती है।

एक सशक्त स्त्री कई बार कमज़ोर कही जाने वाली स्त्री का भी दमन कर बैठती है। फ़ैसला कहानी में एक स्त्री द्वारा ही जब एक अन्य स्त्री सुकन्या को यह कहकर उपेक्षित किया जाता है कि गाँव की लड़कियाँ बहुत झूठ बोलती हैं तब यह प्रसंग पाठकों के मन को कचोटने लगता है। अनुपमा की कहानियों में दमन के विविध रंगों को सामने रखने की कोशिश जिस तरह हुई है, वह उनके अनुभव संसार की प्रामाणिकता को हमारे सामने रखती है। संग्रह की कुछ कहानियाँ स्त्री मुक्ति के अनछुए रास्तों को भी टटोलने की कोशिश करती हैं। स्त्री जीवन में पसरे हुए लोभ, लालच और कपट पूर्ण व्यवहार भी स्त्री मुक्ति के मार्ग में बाधक होते हैं। "गुट्टन चाची" कहानी की पात्र गुट्टन चाची ऐसी ही महिलाओं का प्रतिनिधित्व करती है जिनके अस्वीकार्य और असामान्य व्यवहारों से परिवार कई बार विघटन की राह पर आ जाते हैं। अनुपमा ने ऐसी कहानियों के माध्यम से एक स्त्री को सचेत एवं जागरूक करने का प्रयास किया है। आचरण की सकारात्मकता किसी भी मनुष्य को समाज में स्वीकार्यता की ओर ले जाती है चाहे वह कोई स्त्री ही क्यों न हो। स्त्री की स्वीकार्यता ही तो उसकी मुक्ति का एक साधन है जिसे अनुपमा भली भाँति समझती हैं और उसे इस कहानी के माध्यम से प्रस्तुत करती हैं।

सामाजिक दायित्वों के निर्वहन के साथ साथ शैक्षिक गतिविधियों के निर्वहन में संलग्नता, कई बार किसी कथाकार को कुछ अधिक सचेत कर जाती है। अनुपमा भी उन्हीं कथाकारों में से हैं जिनकी सचेतनता उनके द्वारा चुने हुए पात्रों के दु:ख दर्द के माध्यम से सामने आती है। 'टपोरी' कहानी का 'मुन्ना', 'तारे' कहानी का 'फ़तेह सिंह' सहित 'एक मई' कहानी का 'फन्नी', ये सभी ऐसे पात्र हैं जो हमारे आसपास सघन रूप में मौजूद हैं जिन्हें अपने जीवन संघर्ष में समाज ने बिलकुल अकेला छोड़ दिया है। ये सभी पात्र अपने अकेलेपन में जीने को अभिशप्त हैं जिन्हें लोगों का साथ चाहिए पर यह साथ कहीं से भी उन्हें मिलता हुआ नहीं दिखता। जीतना उनके नसीब में कहीं नहीं लिखा, वे बस जीने के लिए ही जूझ रहे हैं। तारे कहानी का पात्र फ़तेह सिंह जब यह कहता है कि भीड़भाड़ वाले शहरों में भाग्य की चाबी एक बार खो जाती है तो बड़ी मुश्किल से मिलती है, तो उसका एकान्तिक संघर्ष ध्वनित होता है जिसे कोई संवेदनशील मनुष्य ही सुन सकता है। ऐसी कहानियाँ लोक के प्रति समाप्त हो चुकी संवेदना को पुन: पुन: दोबारा अपने साथ लौटाकर लाती हैं। संवेदना का पुनर्स्थान भी कहानी का एक उद्देश्य है, इस नज़रिये से अगर देखा जाए तो ये कहानियाँ प्रेमचंद युगीन कहानियों की याद ताज़ा करने लगती हैं।

ऐसे अकेले और वंचित लोग जिनके भाग्य की चाबी कहीं खो गई है, उसे खोजने में हमारी भी सामूहिक भूमिका तय हो, हम उनकी कुछ सहायता कर सकें, इस तरह का भाव लिए इन कहानियों का कथ्य अपनी लोक उपयोगिता साबित करने में सफल दिखती है।

इस संग्रह में कुल तेरह कहानियाँ हैं। शीर्षक कहानी 'भूरी आँखें घुँघराले बाल' भी स्त्री जीवन के उतार-चढ़ाव पर बुनी गई कहानी है। इस कहानी में भी स्त्री जीवन की विभीषिकाएँ उसी रूप में मौजूद हैं, जिसे कई बार हम अपने आसपास घटित होता हुआ देखते तो हैं, पर देखकर भी उसे एक स्त्री की नियति मानकर चुप्पी साध लेते हैं।

अपनी कहानियों में अनुपमा समाज की ओर से बरती जाने वाली हर उस चुप्पी पर बैचैन नज़र आती हैं, जो स्त्री को एकान्तिक कर हाशिये की ओर धकेलने के लिए ज़िम्मेदार है।

एक पुरुष के प्रेम में पड़ी और उसके द्वारा छली गई स्त्री का दु:ख असहनीय होता है। उसे महसूसने के लिए एक नाज़ुक सा दिल, नाज़ुक सा मन चाहिए पर वह अब शायद ज़्यादातर लोगों के पास नहीं। अपनों के पास भी नहीं। उसके दु:ख को महसूसने के बजाय उससे पिंड छुड़ाने के लिए जब उसका परिवार ही किसी बूढ़े से उसकी शादी करा दे तो उसका दु:ख कई गुना बढ़ जाता है। जब वर्षों बाद किसी बच्चे में जिसकी आँखें भूरी हैं और जिसके बाल घुँघराले हैं, वह अपने उसी प्रेमी की प्रतिछवि को महसूस करती है तो पुरुष का वही छल उसके सीने को छलनी कर जाता है। स्त्री पीड़ा का यह चरम उत्कर्ष है जिसे संवेदना की आँख से ही देखा समझा जा सकता है।

'सफेदपोश', 'किरायेदार', 'बड़े सरकार' इत्यादि भी अनुपमा के अनुभव संसार से उपजी कहानियाँ हैं जहाँ स्त्री दमन अपनी स्वाभाविकता में मौजूद है। दमन की यह स्वाभाविकता संवेदनशील पाठकों को दमन के विरूद्ध उद्वेलित होने को प्रोवोक भी कर सकती है, यही इन कहानियों का निकष भी है जिसे ध्यान में रखकर इन्हें एक बार ज़रूर पढ़ा जाना चाहिए। अपने इस पहले संग्रह के साथ, अनुपमा अपने पाठकों में कथा लेखन का प्रभाव छोड़ पाने में सफल होती लगती हैं, उन्हें बहुत बहुत बधाई!

000

स्ट्राइक 2.0

(व्यंग्य संग्रह)

समीक्षक : कैलाश मण्डलेकर

लेखक : राजशेखर चौबे

प्रकाशक : नीरज बुक सेंटर, नई दिल्ली

कैलाश मण्डलेकर
15-16, कृष्णपुरम कॉलोनी, जेल रोड,
माता चौक खंडवा म.प्र. 450001
मोबाइल– 9425085085,
9425086855
ईमेल– kailash.mandlekar@gmail.com

राजशेखर जी के नए व्यंग्य संग्रह का नाम है स्ट्राइक २.०। नाम कुछ अटपटा है पर इसमें संगृहीत व्यंग्य लेख अटपटे नहीं हैं। वे लगभग वैसे ही हैं जैसे इन दिनों आत्यन्तिक तौर पर लिखे जा रहे हैं। ये आकार में छोटे हैं पर इनके निहितार्थ गहरे हैं। इन दिनों अख़बारों, पत्रिकाओं में छोटे और तयशुदा शब्दों के व्यंग्य लेख छप रहे हैं, राजशेखर जी के व्यंग्य इसी चलन के अनुरूप हैं। राजशेखर चौबे का यह दूसरा व्यंग्य संग्रह है, उनका पहला व्यंग्य संग्रह 'आज़ादी का जश्न' २०१६ में प्रकाशित हुआ था। उनके व्यंग्य में ताज़ा राजनैतिक हालात और सामाजिक घटनाओं को लेकर त्वरित तथा व्यंजनामय प्रतिक्रियाएँ होती हैं जो उनके सजग नागरिक बोध का भी परिचायक है। नौकरशाही, राजनीति, सोशल मीडिया, व्यक्तिगत आचरण, साहित्यिक मूल्यों का पतन तथा संस्थागत भ्रष्टाचार आदि उनके व्यंग्य के केन्द्रीय विषय होते हैं। राजशेखर जी सहज भाषा शैली के व्यंग्यकार हैं उन्हें अच्छी तरह पता है कि व्यंग्य के विषय क्या होने चाहिए, लेखक की पक्ष धरता किसके साथ हो, सत्ता, व्यवस्था के नेपथ्य में क्या कारगुज़ारियाँ चलती हैं तथा व्यंग्य लेखन के सरोकार क्या हैं। इन्हीं सब स्थितियों के आधार पर वे अपनी रचना का खाका तैयार करते हैं। उक्त संग्रह की भूमिका सुपरिचित आलोचक डॉ. रमेश तिवारी ने लिखी है। डॉ. तिवारी का मानना है कि "राजशेखर चौबे विसंगतियों पर गहरा प्रहार करते हैं तथा वे गहरे अध्ययन और विश्लेषण वाले लेखक हैं"। चौबे जी के व्यंग्य बोध पर अपना अभिमत व्यक्त करते हुए प्रसिद्ध व्यंग्यकार विनोद साव ने हिन्दी व्यंग्य की जवाबदेही, लोकशिक्षण तथा व्याप्ति एवं प्रभावोत्पादकता को लेकर गहरी बातें की हैं। राजशेखर के व्यंग्य की लघुता अथवा संक्षिप्त आकार को लेकर विनोद जी कहते हैं "व्यंग्य जनमानस की अभिव्यक्ति से बाहर जब साहित्य में अपनी पैठ बनाता है तब उसके लेखन में विस्तार देने की अपेक्षा की जाती है। यह किसी भी आलोचना शास्त्र की माँग होती है जिसमें रचना अपने व्यापक फ़लक के साथ मुखरित हो ताकि लेखक की रचना धर्मिता को किसी मुकाम पर पहुँचाया जा सके"। दरअसल विनोद साव का आग्रह रचना के विस्तार को लेकर है। आशय यह कि व्यंग्यकार केवल घटना की रिपोर्ट ही न करे वरन उन कारकों को भी स्पर्श करे जिनकी वजह से वह घटना घटित हुई तथा व्यंग्य लिखने की ज़रूरत महसूस हुई। यदि घटना या ख़बर के इर्द-गिर्द ही व्यंग्य का ताना-बाना बुना जाएगा, तो हो सकता है घटना विशेष, व्यंग्य रचना से बड़ी लगने लगे। होना यह चाहिए कि उस स्थिति विशेष की व्याप्ति समाज में कितनी दूर तक जाती

है, उसके राजनीतिक निहितार्थ क्या हैं, अथवा उसने जन मानस को कितना आंदोलित किया है आदि। किसी रचना में जब इन तमाम मुद्दों की पड़ताल की जाएगी तो ज़ाहिर है उसकी पैठ भी बढ़ेगी और व्यंग्यकार के सरोकार भी स्पष्ट होंगे। हालाकि यह व्यंग्य की अगली ज़मीन है जहाँ तक राजशेखर को या किसी भी व्यंग्यकार को जाना पड़ेगा। बहरहाल।

स्ट्राइक -२.० नामक इस संग्रह में कुल जमा ३० व्यंग्य रचनाएँ हैं जिनके बारे में खुद राजशेखर जी का कहना है कि ये समसामयिक घटनाओं की उपज है तथा इनमें भारतीय बहुरंगी समाज की तस्वीर नुमाया है। संग्रह की रचनाओं के साथ कार्टूनिस्ट निशांत होता के कार्टून भी दिए गए हैं जो व्यंग्य की पठनीयता और सम्प्रेष्ण में अभिवृद्धि करते हैं। "ईमानदारी मापक यंत्र" नमक व्यंग्य में सरकारी तंत्र को व्यंग्य का आधार बनाया गया है। सरकारी तंत्र का यह चरित्र है कि वह सैद्धांतिक तौर पर बड़े बड़े मंसूबे बाँधता है पर व्यावहारिक धरातल पर प्राय: विफल होता है। जो व्यवस्था ईमानदारी के लिए मशीनों पर निर्भर होगी उसका ईमान कितना पुख्ता होगा, यह विचारणीय है। दरअसल ईमानदारी और चरित्र ऐसे मूल्य हैं जो भीतर से आते हैं, उसे मशीनों से नही मापा जा सकता। दुर्भाग्यवश हमारे देश में सरकारी तंत्र आरम्भ से ही स्वार्थ और लिप्सा में डूबा है इसलिए यहाँ ईमानदारी को स्थापित करना दुष्कर कार्य है। चौबे जी की यह कथा सरकार के दोहरे चरित्र को बखूबी उजागर करती है। "बीमारी के फ़ायदे" नामक व्यंग्य में आम भारतीय चरित्र का अध्ययन है। लोग बीमार आदमी को तरह-तरह की सलाह देकर सोचते हैं कि वे उसका भला कर रहे हैं लेकिन नीम हकीम ख़तरा ए जान की वजह से भला होना संभव नही है। कुछ लोग बीमारी को स्टेटस से भी जोड़ लेते हैं मानों बीमार होना साहसिकता की बात हो। "वाट्स एप की दुनिया" में सोशल मीडिया की स्वैच्छाचारिता पर व्यंग्य है जहाँ वाट्स एप आदि का काफी दुरुपयोग हो रहा है। "जूतम पैज़ार" नामक व्यंग्य रचना में एक सांसद के उस अशोभनीय आचरण को व्यंग्य का निशाना बनाया गया है जिसने अपनी ही पार्टी के विधयाक के साथ जूतम पैज़ार कर डाली। व्यंग्य इस बात पर है कि हमारा प्रतिनिधि जो लाखों लोगों की नुमाइंदगी करता है, जो प्रजातांत्रिक मूल्यों की रक्षा की शपथ लेता है तथा, जो सो काल्ड आभिजात्य वर्ग से आता है वह सार्वजनिक रूप से ऐसी हरकत करता है, तो हमारे सभ्यता बोध को चोट पहुँचती है। वह केवल विधायक को अपमानित नहीं कर रहा है वह पूरी परम्परा और सांस्कृतिक मूल्यों को जुतिया रहा है। "बिकाऊ से बाग़ी" में भी राजनीतिक पतनशीलता पर व्यंग्य है। राजनेता, अंतरआत्मा की आवाज़ के बहाने दल बदलते हैं लेकिन मज़े की बात यह कि जिस जनता ने अपना मत देकर इन्हें सांसद या विधायक बनाया है उसकी आत्मा की आवाज़ कोई नहीं सुनता। "कतार में देश" में एक आम आदमी बल्कि मज़दूर से साक्षात्कार है, जो अपने मतानुसार चीज़ों का खुलासा करता है। "कॉफी हाउस चिंतन" में बुद्धिवादियों पर व्यंग्य है। बुद्धिवादी सिर्फ बौद्धिक विमर्श करते हैं इनके चिंतन से व्यावहारिक रूप में व्यक्ति या समाज कैसे लाभान्वित होगा, उन्हें इसकी परवाह नहीं है। "रोस्टेड चिकन" नामक व्यंग्य में मुर्गे को प्रतीक बनाकर कथा गढ़ी गई है। इसमें ब्यूरोक्रेट, कारपोरेट और नेता मिलकर आम आदमी को हलाल कर रहे हैं। "फेक राइटर" शीर्षक से लिखी गई व्यंग्य रचना में लेखन की दुनिया में होने वाले अनाचार और धाँधली को उजागर किया गया है। साहित्य में भी एक तरह का अन्डर वर्ल्ड है। जेनुइन लेखक इस अन्डर वर्ल्ड में मारा जा रहा है। राजशेखर का व्यंग्य इस अनाचार का बेहतर खुलासा करता है। इसी तरह "गांधी जी का पाँचवा बन्दर", "आनंद ही आनंद", "इक्कीसवीं सदी में कबीर", "कड़कनाथ मुर्गा", "विमुद्रीकरण" आदि व्यंग्य रचनाएँ भी राजशेखर जी के प्रखर व्यंग्य बोध की परिचायक हैं। हम उम्मीद करें कि उनकी व्यंग्यकारिता का अगला पड़ाव और अधिक व्यापक तथा सामाजिक चेतना का उन्नायक होगा। आमीन।

000

लेखकों से अनुरोध

'शिवना साहित्यिकी' में सभी लेखकों का स्वागत है। अपनी मौलिक, अप्रकाशित रचनाएँ ही भेजें। पत्रिका में राजनैतिक तथा विवादास्पद विषयों पर रचनाएँ प्रकाशित नहीं की जाएँगी। रचना को स्वीकार या अस्वीकार करने का पूर्ण अधिकार संपादक मंडल का होगा। प्रकाशित रचनाओं पर कोई पारिश्रमिक नहीं दिया जाएगा। बहुत अधिक लम्बे पत्र तथा लम्बे आलेख न भेजें। अपनी सामग्री यूनिकोड अथवा चाणक्य फॉण्ट में वर्डपेड की टैक्स्ट फ़ाइल अथवा वर्ड की फ़ाइल के द्वारा ही भेजें। पीडीऍफ़ या स्कैन की हुई जेपीजी फ़ाइल में नहीं भेजें, इस प्रकार की रचनाएँ विचार में नहीं ली जाएँगी। रचनाओं की साफ़्ट कॉपी ही ईमेल के द्वारा भेजें, डाक द्वारा हार्ड कॉपी नहीं भेजें, उसे प्रकाशित करना अथवा आपको वापस कर पाना हमारे लिए संभव नहीं होगा। रचना के साथ पूरा नाम व पता, ईमेल आदि लिखा होना ज़रूरी है। आलेख, कहानी के साथ अपना चित्र तथा संक्षिप्त सा परिचय भी भेजें। पुस्तक समीक्षाओं का स्वागत है, समीक्षाएँ अधिक लम्बी नहीं हों, सारगर्भित हों। समीक्षाओं के साथ पुस्तक के कवर का चित्र, लेखक का चित्र तथा प्रकाशन संबंधी आवश्यक जानकारियाँ भी अवश्य भेजें। एक अंक में आपकी किसी भी विधा की रचना (समीक्षा के अलावा) यदि प्रकाशित हो चुकी है तो अगली रचना के लिए तीन अंकों की प्रतीक्षा करें। एक बार में अपनी एक ही विधा की रचना भेजें, एक साथ कई विधाओं में अपनी रचनाएँ न भेजें। रचनाएँ भेजने से पूर्व एक बार पत्रिका में प्रकाशित हो रही रचनाओं को अवश्य देखें। रचना भेजने के बाद स्वीकृति हेतु प्रतीक्षा करें, बार-बार ईमेल नहीं करें, चूँकि पत्रिका त्रैमासिक है अत: कई बार किसी रचना को स्वीकृत करने तथा उसे किसी अंक में प्रकाशित करने के बीच कुछ अंतराल हो सकता है।

धन्यवाद

संपादक

shivnasahityiki@gmail.com

पुस्तक समीक्षा

कोरोना काल की दंश कथाएँ

(निबंध संग्रह)

समीक्षक : दीपक गिरकर

लेखक : अजय बोकिल

प्रकाशक : शिवना प्रकाशन, सीहोर

दीपक गिरकर
28-सी, वैभव नगर, कनाडिया रोड,
इंदौर- 452016
मोबाइल- 9425067036
ईमेल- deepakgirkar2016@gmail.com

हाल ही में अजय बोकिल की पुस्तक "कोरोना काल की दंश कथाएँ" शिवना प्रकाशन, सीहोर से प्रकाशित होकर आई है। यह कोरोना काल का एक विवेचनात्मक एवं विचारोत्तेजक दस्तावेज़ है। अजय बोकिल ने कोरोना काल के अपने अविस्मरणीय अनुभव पर वैचारिक, विश्लेषणात्मक और आलोचनात्मक आलेख क़िस्सागोई के अंदाज़ में लिखे हैं। यह पुस्तक प्रकाशित होते ही काफी चर्चित हो गई है क्योंकि कोरोना काल और लॉकडाउन जैसे ज़रूरी और प्रासंगिक विषय पर इतना यथार्थ, सटीक और गंभीर विश्लेषण किसी भी समाचार पत्र, पत्रिका या पुस्तक में पढ़ने को नहीं मिला। लेखक ने सामाजिक समस्याओं एवं समसामयिक समय के अनेक ज्वलंत मुद्दों पर अपनी कलम चलाई है। यह अपनी तरह की पहली किताब है जिसमें कोरोना काल के पूरे परिवेश का यथार्थ चित्रण है। लेखक ने इस पुस्तक में कोरोना काल में समाज से जुड़े सभी मुद्दों पर बेबाकी से लिखा है। अनेक सम्मानों से सम्मानित अजय बोकिल एक सजग पत्रकार एवं दैनिक "सुबह सवेरे" में वरिष्ठ संपादक हैं। इस पुस्तक में शामिल सभी आलेख दैनिक "सुबह सवेरे" में 'राइट क्लिक' के तहत प्रकाशित हुए हैं। श्री अजय बोकिल ने कोरोना काल की दंश कथाओं में तार्किक एवं तथ्यात्मक बातें कही हैं। लेखक किसी विचारधारा का पक्ष न लेते हुए तथ्यों तथा तर्कों के साथ सच को बयान करते हैं। पुस्तक में कुल ५४ आलेख शामिल हैं। पुस्तक में लेखक द्वारा सत्ता, प्रशासन, मीडिया, पुलिस, स्वास्थ्य विभाग, डॉक्टर्ज़, अस्पतालों, पत्रकारों, कारोबारियों की भूमिका पर और आर्थिक संकट, बेरोज़गारी, राजनीति का नंगा नाच, समाज में फैला अविश्वास और दहशत का माहौल, भारतीय पारंपरिक जीवन शैली, वर्क फ्रॉम होम, पुलिस द्वारा अपराधियों का एनकाउंटर, चीनी माल का बहिष्कार, चीन पर डिजिटल स्ट्राइक, ई-लर्निंग पर विस्तृत प्रकाश डाला गया है। कोरोना काल और लॉकडाउन के अनेक तथ्य एवं सत्य इन आलेखों में उद्भासित हुए हैं।

इस पुस्तक की भूमिका दैनिक "सुबह सवेरे" के प्रधान संपादक उमेश त्रिवेदी ने लिखी है। उन्होंने लिखा है "एक पत्रकार के रूप में अजय बोकिल गुणवत्ता की कसौटियाँ निर्धारित करते हैं। कोरोना के इस दौर में मानवीय करुणा को समेटते हुए अपने पत्रकारीय दायित्वों को अंजाम देना आसान काम नहीं हैं। हर दिन कुछ ऐसा घटता है, जो उद्वेलित करता है, हताश करता है, निराशा घोलता है लेकिन बोकिल जैसे पत्रकारों की कलम हार नहीं मानती है।" सुविख्यात लेखक, साहित्यकार एवं चित्रकार श्री प्रभु जोशी ने अपनी टिप्पणी में लिखा है "अजय बोकिल के लिखे में 'देश और काल' बोलता है। हाँ, राष्ट्र भी बोलता है, लेकिन राष्ट्रवाद नहीं बोलता। उसकी एक आँख पीठ में भी है, जो 'पास्टनेस ऑफ़ पास्ट' को देखती है और सामने की सचाई को अपनी ही दो आँखों से नहीं बल्कि 'जन' की आँखों से देखती है।"

पुस्तक में शामिल अनेक आलेखों में अजय बोकिल की पीड़ा और बेचैनी दिखाई देती है। लेखक इस पुस्तक का प्रथम आलेख "मीडिया पर कसता शिकंजा और माफिया की मीडियागिरी" में लिखते हैं - जिस मध्यप्रदेश की माटी ने कई शीर्ष पत्रकार हिंदी पत्रकारिता को दिए हैं, वही मध्यप्रदेश अब पत्रकारों के मुखौटों में उन चेहरों को चीन्ह रहा है, जिनमें डॉन, दलाल, शोषक, चोर और दबंग सब एकाकार हो गए हैं। दुर्भाग्य से इनमें से कुछ का दावा यह है कि वे अपने स्वार्थ और सुविधा के साथ पत्रकारिता के चीर को हरण होने से बचाए हुए हैं। इनमें से कुछ का यहाँ तक कहना है कि व्यवस्था के लूप होल बेनकाब करने के कारण उनकी मुश्कें कसी जा रही हैं। इसमें आंशिक सच्चाई हो सकती है। लेकिन जिस मकसद से इस माफिया की 'मीडियागिरी' चल रही थी, वह समूचे मीडिया को आत्मावलोकन पर विवश कर रहा है। माफिया की इस मीडियागिरी ने पत्रकारिता के लाल कालीन को ज़मीन के काले धंधे, गुटखे, शराब व शबाब के कारोबार तथा बेख़ौफ़ टैक्सचोरी की शक्ल में तब्दील करने में कोई कसर

नहीं छोड़ी। "अमिताभ को कोरोना : मीडिया ने बनाया 'सदी का बीमार' आलेख में लेखक लिखते हैं - बेशक अमिताभ बच्चन इस देश की अज़ीम शख़्सियत हैं, धरोहर हैं। उनकी हारी-बीमारी और सुख-दुःख से सभी का चिंतित होना स्वाभाविक है। लेकिन बिग-बी और परिजनों के कोरोना पॉजिटिव होने की ख़बर जिस तरह मीडिया में सिर चढ़कर बोली, उससे लगा कि महानायक के बीमार होने के आगे देश में (ताज़ा आँकड़ों के मुताबिक़) हज़ार मौतों और साढ़े आठ लाख कोरोना संक्रमितों का होना कुछ भी नहीं है। शायद बीमारी भी सेलेब्रिटी के हिसाब से बड़ी या छोटी हो सकती है। एक दैनिक अख़बार ने तो कमाल ही किया। उसके शीर्षक आईब्रो था - सदी महानायक को सदी की महामारी। यानी महानायक को महामारी ही घेर सकती है, कोई मामूली बीमारी नहीं। "श्रम कानूनों में बदलाव मज़दूरों को काम देंगे या उसे छीन लेंगे?" में लेखक ने यथार्थ स्थिति से पाठकों को रूबरू किया। क्या विडंबना है कि कोरोना संकट में जहाँ प्रवासी मज़दूरों की बदहाली और विवशता देख पूरा देश सिहर रहा था, वहीं राज्यों ने ताबड़तोड़ तरीके से श्रमिक हितैषी कानूनों को बदल डाला। 'काम वाली बाई' और 'मैडमजी' के बीच रिश्तों की टूटती डोर...!", "वर्क फ्रॉम होम" या "लुंगी लपेट लैपटॉप में उतराना?" इत्यादि आलेखों में व्यंग्य का गहरा पुट है। वर्क फ्रॉम होम में निजता का स्पेस ज़्यादा है, लेकिन शोषण की गुंजाइश भी ज़्यादा है। इस कल्चर में घर और दफ्तर की लक्ष्मण रेखा पूरी तरह धुल गई है।

इस पुस्तक में शामिल सभी आलेख लॉकडाउन और कोरोना काल की असली तस्वीर पेश करते हैं। इस पुस्तक के कुछ अंश जो पाठकों को लॉकडाउन की जटिल अनुभूतियों को विसंगतियों, विडम्बनाओं और वास्तविकता से परिचय करवाते हैं :

इस एनकाउंटर ने उन संभावनाओं का भी एनकाउंटर कर दिया है, जो कई चेहरों को बेनकाब कर सकती थी। इन पोशीदा चेहरों में नेता भी हैं, अफ़सर भी हैं, कारोबारी भी हैं और क़ानून के रखवाले और क़ानून को ठेंगे पर रखने वाले भी हैं। (विकास दुबे : बूझे हुए जवाबों का सवालों से एनकाउंटर...? : पृष्ठ ३०)

यकीनन छत्तीसगढ़ सरकार का यह फैसला गोबर को प्रतिष्ठा दिलाने वाला है। वरना 'पंच गव्य' का यह पाँचवा तत्व आर्थिक रूप से भी उपेक्षित ही रहा है। बावजूद इसके कि गाएँ बराबर गोबर कर रही हैं। लेकिन किसी सरकार का ध्यान इस बात पर गंभीरता से नहीं गया कि गोबर गोपालक के साथ-साथ सरकार की माली हालत को भी बदल सकता है। यह पहल इसलिए भी अनूठी है, क्योंकि कोरोना काल में मध्यप्रदेश सहित देश की कई राज्य सरकारों ने शराब को ही आर्थिक वैतरणी माना हुआ था। अब इस श्रेणी में गोबर का शुमार होना उत्साहवर्द्धक और नवाचारी है। (छग में गोबर खरीदी : आर्थिक नवाचार या राजनीतिक 'अवशेषवाद'! : पृष्ठ ५८)

इस बीच चीनी सामान के बहिष्कार की मुहिम सोशल मीडिया में भी ज़ोरों पर है। मज़े की बात है कि यह मुहिम भी ज़्यादातर चाइना मेड मोबाइलों के माध्यम से चल रही है। (चीनी माल के जाल से निकलने कितने तैयार हैं हमारे युवा ? : पृष्ठ ७५)

बहुत से विचारकों का मानना है कि अख़बारों का बंद होना लोकतंत्र के मैदान से उन तोपों का हटना है, जो बोफोर्स की तरह कारगिल की चोटियों पर बैठी निरंकुश सत्ताओं को निशाना बना सकती हैं। अख़बारों का हस्तक्षेप ख़त्म होने का साफ़ मतलब चैनलों के वृन्दगान को चौथे खम्भे की ध्वजा सौंपना है। (क्या यह 'विचार शून्य' समाज की ओर बढ़ने का संकेत है ? : पृष्ठ ७८)

देशभर की कलारियों पर सोमवार को जो नज़ारा दिखा, वह कोरोना काल के इतिहास में अलग से दर्ज करने लायक है। बीते चालीस दिनों में देश की अप्रदूषित हवा में यह भ्रम तैरने लगा था कि इतने दिनों तक मयखानों पर ताले पड़े रहने से ज़्यादातर बेवड़े इस बुराई को छोड़ भगवत भक्ति में लीन हो गए होंगे। क्योंकि सरकारी दावा यही था कि लॉक डाउन में शराब तो क्या, चैतन्य चूर्ण और गुटखा तक मिलना नामुमकिन है। अर्थात यह लॉक डाउन के 'डाउन टू अर्थ' होने की पराकाष्ठा थी। (लॉक डाउन ३.० : फोकस जमातियों से शराबियों पर शिफ्ट होना! : पृष्ठ १३६)

कोरोना काल में जब अधिकाँश मीडिया सत्ता की नारेबाज़ी में जुटा हुआ है तब अजय बोकिल जैसे बिंदास पत्रकार का लॉकडाउन एवं कोरोना काल के महत्त्वपूर्ण मानवीय मुद्दों पर गहन विश्लेषण मायने रखता है। सच को सच और ग़लत को ग़लत कहने की हिम्मत अजय बोकिल जैसे बिंदास पत्रकारों में ही होती है। इस पुस्तक को पढ़ते हुए बार-बार स्वर्गीय श्री राजेंद्र माथुर की याद आई है। पुस्तक में सरकार, प्रशासन, समाज और व्यापारियों-कारोबारियों से वे तमाम ज़रूरी सवाल उठाए गए हैं जिनका संबंध आम आदमी के जीवन से जुड़ा हुआ है। लेखक द्वारा इस कृति में कोरोना काल और लॉकडाउन का यथार्थ चित्रण प्रस्तुत किया गया है। लेखक ने इस कृति में व्यक्ति के बजाए लोगों की प्रवृत्तियों और व्यवस्था की विसंगतियों पर गहरी चोट की है। इस पुस्तक के माध्यम से लेखक ने सरकार, प्रशासन, मीडिया, कारोबारियों द्वारा कोरोना काल की अवधि में किये गए क्रियाकलापों और आम आदमी की जीवन शैली का विस्तृत खुलासा करते हुए समाज को आईना दिखाया है। इन दंश कथाओं में तटस्थता तथा निष्पक्षता के साथ यथार्थ अभिव्यक्त हुआ है। पुस्तक आम पाठक के लिए काफी रोचक और पठनीय है। "कोरोना काल की दंश कथाएँ" पाठकों के मन मस्तिष्क पर असर छोड़ते हुए सकारात्मक सोच अपनाने के लिए प्रेरित करती है। कुल मिलाकर यह कृति सामाजिक सरोकारों एवं मानवीय मूल्यों से जुड़े मुद्दों की गहन पड़ताल करती है। लेखक ने इस पुस्तक के सभी आलेख बहुत ही मुखर ढंग से प्रस्तुत किए है। अजय बोकिल के विचारों में स्पष्टता है। वे समसामयिक विषयों पर गहरी समझ रखते हैं। पुस्तक की भाषा सहज और सरल है। पुस्तक पठनीय ही नहीं, चिन्तन मनन करने योग्य वैचारिक विमर्श की समसामयिक कृति है।

000

पुस्तक समीक्षा

साक्षात्कारों के आईने में

(साक्षात्कार संग्रह)

समीक्षक : दीपक गिरकर

संपादक : डॉ. रेनू यादव

प्रकाशक : शिवना प्रकाशन, सीहोर

दीपक गिरकर
28-सी, वैभव नगर, कनाडिया रोड,
इंदौर- 452016
मोबाइल- 9425067036
ईमेल- deepakgirkar2016@gmail.com

साक्षात्कार मानवीय अभिव्यक्ति का एक सशक्त माध्यम है। "साक्षात्कारों के आईने में" पुस्तक में १८ साहित्यकारों पंकज सुबीर, मधु अरोड़ा, श्याम किशोर, सुनीता गौतम, नवनीत कौर, तरसेम गुजराल, डॉ. अनीता कपूर, सुमन सिंह, कंचन सिंह चौहान, शहनाज, डॉ. एम फ़िरोज़ खान, राजपाल, अनुराग शर्मा, स्मिता सिंह, डॉ. प्रीत अरोड़ा, सुबोध शर्मा, नूतन पांडेय, अनीता सक्सेना द्वारा समय-समय पर सुधा ओम ढींगरा से जो बातचीत की गई थी उसे डॉ. रेनू यादव ने संकलित और संपादित कर इसे पुस्तक का रूप दिया है। इस पुस्तक में सुधा ओम ढींगरा के व्यक्तित्व-कृतित्व की प्रामाणिक जानकारी मिलती है। सुधा ओम ढींगरा ने प्रवासी साहित्यकार के रूप में अपनी महत्त्वपूर्ण जगह बनाई है। भारत के जालन्धर (पंजाब) में जन्मीं सुधा ओम ढींगरा अमेरिका में कई वर्षों से रह रही हैं। सुधा ओम ढींगरा अमेरिकी संस्कृति से अच्छी तरह से परिचित होने के बावजूद अपनी भारतीय संस्कृति तथा भारतीय रीति-रिवाजों को नहीं भूली हैं। सुधा जी के लेखन का सफ़र बहुत लंबा है। सुधा जी की प्रमुख रचनाओं में नक़्क़ाशीदार केबिनेट (उपन्यास), सच कुछ और था, दस प्रतिनिधि कहानियाँ, कमरा नंबर १०३, कौनसी ज़मीन अपनी, वसूली (कहानी संग्रह), सरकती परछाइयाँ, धुप से रूठी चाँदनी, तलाश पहचान की, सफर यादों का (कविता संग्रह), विमर्श - अकाल में उत्सव (आलोचना पुस्तक) और सार्थक व्यंग्य का यात्री : प्रेम जनमेजय सहित नौ पुस्तकों का संपादन, साठ से अधिक संग्रहों में भागीदारी शामिल हैं। लेखन में इतनी विविधता एक साथ कम देखने को मिलती है। देश-विदेश में सुधा जी के पाठकों का एक बड़ा वर्ग है।

लेखन सुधा जी की साधना है। सुधा जी जो भी लिखती हैं हलचल मचाने के लिए नहीं। उनके भीतर की हलचल और द्वंद्व उनकी लेखनी में उतरता है। सुधा जी किसी विचारधारा के दबाव में नहीं लिखती हैं। उनके लिए लेखन एक यात्रा है और पाठकों का स्नेह और आशीर्वाद ही उनकी मंज़िल है। सुधा जी विदेशों में हिन्दी के प्रचार-प्रसार के लिए महती कार्य कर रही हैं। सुधा जी अमेरिका में वर्ष १९८२ से हिन्दी की मशाल जलाने के लिए सतत प्रयासरत हैं और उन्हें इसमें काफ़ी सफलता मिली है। वे अमेरिका में हिन्दी नाटकों का निर्देशन और मंचन करती आई हैं। सुधा जी ढींगरा फ़ैमिली फ़ाउंडेशन ट्रस्ट के तहत लोकहितकारी और परोपकार के कार्य कर रही हैं। ढींगरा फ़ैमिली फ़ाउंडेशन वंचित परिवारों की लड़कियों को उच्च शिक्षा दिलवाने के साथ एक साल का कंप्यूटर प्रशिक्षण प्रमाणपत्र कार्यक्रम प्रायोजित कर रहा है। ढींगरा फ़ैमिली फ़ाउंडेशन साहित्य और भाषा के क्षेत्र में विशेष कार्य कर रहा है। सुधा जी बहुत सी संस्थाओं के साथ जुडी हुई हैं जो शिक्षा, संक्रमण रोगों, कैंसर, एड्स की रोकथाम और नारी उत्थान के लिए कार्य कर रही हैं।

कई सम्मानों से सम्मानित सुधा ओम ढींगरा के अनुसार –

हर सम्मान चुनौती लेकर आता है। प्रवासी साहित्य का उचित मूल्यांकन नहीं हो पा रहा है। प्रवासी साहित्य की ओर आलोचकों का ध्यान नहीं है क्योंकि प्रवासी साहित्यकार किसी विशेष गुट या विशेष विचारधारा से प्रभावित नहीं हैं। लेखन एक नैसर्गिक प्रतिभा है। लिखने के बीज इंसान के अन्दर होते हैं... परिवेश, हालात-परिस्थितियाँ और अनुभव जब उन्हें खाद पानी देते हैं तो वे स्वत: फूट पड़ते हैं। भाषा और साहित्य के प्रति जो प्रतिबद्धता मराठी और बंगाली प्रदेशों में हैं, वह हिन्दी प्रदेशों में कम मिलती है। हिन्दी भाषी लोगों की उदासीनता ही हिन्दी साहित्य को

पीछे ले जा रही है। लेखक का उद्देश्य जीवन की गतिशीलता में अवरोध पैदा करना नहीं बस राह के काँटों से सचेत करना होता है। प्रवासी साहित्य की आलोचना के संबंध में सुधा जी ने एक महत्त्वपूर्ण तथ्य से अवगत किया है– "अंतर्जाल और सोशल मीडिया ने आलोचकों की उपस्थिति एक तरह से कम कर दी है। पाठक और लेखक का सीधा रिश्ता बना दिया है। पाठकों ने ही प्रवासी साहित्य को पहचान दिलवाई है और यूजीसी ने उसे विश्वविद्यालयों तक पहुँचाया है।" संवेदनाओं के संबंध में सुधा जी के विचार स्पष्ट हैं। उनका कहना है– "संवेदनाओं की कोई सीमा नहीं, वे सीमा रहित हैं, उनकी कोई परिधि नहीं, उन पर कोई बन्धन नहीं। संवेदना ही अभिव्यक्ति के स्वरूप को तय करती है।" स्त्री के संबंध में सुधा जी कहती हैं कि संवेदनशीलता के धरातल पर महिला अधिक सशक्त है। स्त्री को अधिक समायोजन करना पड़ता है। साहित्य सृजन, हिन्दी भाषा का प्रचार-प्रसार और सामाजिक कार्यों हेतु इतनी ऊर्जा और प्रेरणा के संबंध में सुधा जी का मानना हैं - "तीन "पी" हमेशा उनके साथ रहते हैं, इन्हीं से उन्हें प्रेरणा मिलती है यानी प्रेम, पेशेंस और प्रेयर।"

युवा कथाकार कंचन सिंह चौहान और नूतन पांडेय ने सुधा ओम ढींगरा से साक्षात्कार विधा को लेकर कई प्रश्न पूछे। कंचन सिंह चौहान और नूतन पांडेय की सुधाजी के साथ बातचीत से पत्रकारिता के छात्र साक्षात्कार विधा को समझकर निश्चित ही लाभान्वित होंगे। सुधा जी ने अपना कैरियर साक्षात्कारों से ही शुरू किया था। पत्रकारिता जगत् में प्रवेश करते ही सुधा जी का पहला परिचय साक्षात्कार विधा के साथ हुआ। पंजाब केसरी के लिए सुधा जी ने कई कलाकारों, राजनीतिज्ञों, संगीतकारों, गायकों-गायिकाओं, अभिनेताओं-अभिनेत्रियों, उद्योगपतियों के साक्षात्कार लिये। सुधा जी ने विश्व के ५० साहित्यकारों के साक्षात्कार लिए हैं।

पुस्तक "साक्षात्कारों के आईने में" (सुधा ओम ढींगरा के साक्षात्कार) में साहित्यकारों ने सुधा जी के साथ उनके व्यक्तित्व-कृतित्व, प्रवासी साहित्य (प्रवासी साहित्य का मूल्यांकन, भारतीय समाज, संस्कृति, संस्कार और हिन्दी भाषा के विकास में प्रवासी की भूमिका, प्रवासी साहित्यकारों की समस्याएँ, प्रवासी साहित्य में आलोचना, प्रवासी साहित्य पर नॉस्टेल्जिया का आरोप, प्रवासी हिन्दी साहित्य का भविष्य) के साथ साहित्य रचना, मानवीय संवेदना, महिला सशक्तिकरण, स्त्री विमर्श, नारी अस्मिता, साहित्य में प्रौद्योगिकी, अमेरिका में रंगभेद, अमेरिका में समलैंगिकों की स्थिति, साहित्य में गुटबाज़ी, समाज सेवा पर विस्तार से चर्चा की है। सुधाजी ने साहित्यकारों के सभी प्रश्नों के जवाब स्पष्ट और साफगोई से दिए हैं। सुधा जी के लेखन पर हमारे देश में कई शोधकार्य चल रहे हैं। सुधा जी अमेरिका में भारतीय सांस्कृतिक विरासत को समृद्ध कर रही हैं। इस पुस्तक में सुधा जी ने एक बहुत बड़ी बात कही है - "भारतीय संस्कृति और भारतीय जीवन मूल्यों के अवशेष ढूँढ़ने लोग विदेशों में ही आएँगे।" "नक़्क़ाशीदार केबिनेट" उपन्यास और "कमरा नंबर १०३", "सूरज क्यों निकलता है?" कहानी की रचना प्रक्रिया पर सुधा जी ने विस्तार से चर्चा की।

इस पुस्तक में सुधाजी के बालपन, पारिवारिक जीवन, लेखन, रचनात्मक यात्रा, अमेरिका में अकेलेपन का दंश, संघर्ष और उनके अनुभव पर विस्तृत रूप से प्रकाश डाला गया। यह पुस्तक सुधा जी के मन की भीतरी परतों को खोलकर उनके सामाजिक सरोकारों, मानवीय मूल्यों, दृष्टिकोण, जीवन दर्शन, अभिरुचियों, व्यक्तित्व और कृतित्व को विस्तृत रूप से सामने लाती है। यह पुस्तक रचनाकारों की जिज्ञासाओं का समाधान भी करती है। इस पुस्तक को पढ़कर पाठक, रचनाकार, साहित्यकार और छात्र निश्चित ही लाभान्वित होंगे। "साक्षात्कारों के आईने में" (सुधा ओम ढींगरा के साक्षात्कार) पुस्तक सिर्फ पठनीय ही नहीं है, संग्रहणीय भी है। कुशल संपादन के लिए डॉ. रेनू यादव बधाई की पात्र हैं।

000

नई पुस्तक

पंकज सुबीर की कहानियों का समाजशास्त्रीय अध्ययन

(शोध)

लेखक : दिनेश कुमार पाल

प्रकाशक : शिवना प्रकाशन

यह किताब चार अध्यायों एवं उपसंहार में विभक्त है और प्रत्येक अध्याय में उप-अध्याय है। अन्त में दो शोध- आलेख एवं पंकज सुबीर का साक्षात्कार भी सम्मिलित हैं। प्रथम अध्याय 'समकालीन समय और सन्दर्भ में हिन्दी कहानी: एक परिप्रेक्ष्य', द्वितीय अध्याय 'कहानीकार पंकज सुबीर का व्यक्तित्व एवं कृतित्व: एक परिचयात्मक विवरण' है। तृतीय अध्याय 'पंकज सुबीर की कहानियाँ: समाजशास्त्रीय परिप्रेक्ष्य' के अंतर्गत बाजार तंत्र और सत्ता तंत्र के गठजोड़, उसकी दमनकारी नीतियाँ, किसान, मजदूर वर्ग और मध्यवर्ग का पूँजीवादी आदि पर प्रकाश डाला गया है। चतुर्थ अध्याय में पंकज सुबीर की कथा भाषा और शिल्पगत संरचना को प्रस्तुत किया गया है।

000

पुस्तक समीक्षा

हिंदी साहित्य और सिनेमा : रूपांतरण के आयाम

(आलोचना)

समीक्षक : अनिल गोयल

लेखक : डॉ. विजय कुमार मिश्र

प्रकाशक : शिवालिक प्रकाशन, नई दिल्ली

अनिल गोयल
ई/9– सी, डी.डी.ए.,
मुनिरका, नई दिल्ली 110067
मोबाइल– 9911168381
ईमेल– anilkgoel@rediffmail.com

साहित्य और सिनेमा का अटूट संबंध है। किसी भी फिल्म का आधार एक कहानी ही होती है। इस के अनुसार, हर फिल्म साहित्य पर ही आधारित हुआ करती है। सिनेमा कहानी को कहने का एक तरीका ही तो है। जैसे कठपुतली के कार्यक्रम में या फिर नाटक में भी एक कहानी को ही कहा जाता है। फणीश्वर नाथ 'रेणु' ने कहा है, "हर अच्छी साहित्यिक कृति अपने आप में फिल्म होती है, फिल्म की सभी संभावनाएँ लिए हुए। होता यह है कि कभी-कभी ही दृष्टिसंपन्न साहित्यिक संवेदना से सुपरिचित फ़िल्मकार किसी कहानी या अन्य विधा की कृति को प्रस्तुति के लिए चुनता है। फिर वह अपनी दृष्टि के अनुसार उन संभावनाओं को मूर्त करने में भी सफल हो जाता है। जबकि दूसरी ओर जहाँ व्यावसायिक आग्रह से ही रचना फिल्मांकन के लिए चुनी जाती है, वहाँ हर तरह से रचना की मूल संवेदना ही क्षतिग्रस्त होती है।"

हाँ, अकादमिक अध्ययन के लिए यह देखना आवश्यक रहेगा कि फिल्म के लिए प्रयोग की गई कहानी कहीं छपी है या नहीं। बिना छपी कहानी का स्वरूप फिल्मांकन के पहले कैसा था, कहानी के छपे बिना यह समझना कैसे संभव होगा! अत: विवेचना के लिए सिर्फ छपी हुई कहानी, उपन्यास या आख्यान पर ही चर्चा संभव है। हाँ, कोई आख्यान इतना लोकप्रिय और समाज के मानस में रचा-बसा हुआ भी हो सकता है, कि उसके छपे हुए स्वरूप की आवश्यकता नहीं भी हो सकती – जैसे महुआ-घटवारिन, सुभाषचंद्र बोस, झाँसी की रानी, हीर राँझा इत्यादि।

सिनेमा एक अपेक्षाकृत नई विधा है। इस विधा का अविष्कार हुए एक सौ वर्ष से कुछ अधिक मात्र ही तो हुए हैं। इसी प्रकार छपी हुई पुस्तकें भी कोई बहुत पुरानी वस्तु नहीं हैं। सन १४४० के आसपास गुटेनबर्ग ने आधुनिक छापेखाने का आविष्कार किया था, हालाँकि बड़े पैमाने पर छपी हुई पुस्तकों का प्रचलन होने में कुछ और समय लगा। लेकिन क़िस्से-कहानी कहने का प्रचलन तो अनादि काल से है।

ऐसे में 'हिन्दी साहित्य और सिनेमा : रूपांतरण के आयाम' नाम से डॉ. विजय कुमार मिश्र की पुस्तक को आधुनिक तकनीकी युग के दो अविष्कारों – छापेखाने और सैल्यूलॉइड पर चित्रों के छायांकन – के मिलन से उपजे उत्पाद के अध्ययन की संज्ञा दी जा सकती है।

सिनेमा के साहित्य के साथ संबंधों पर कुछ अध्ययन हुए हैं, परन्तु वे अकादमिक दृष्टि से ही अधिक हुए हैं। यह स्वाभाविक भी है, क्योंकि, एकाध अपवाद को छोड़ कर, कोई फ़िल्मकार लेखक नहीं होता, एक फिल्म-निर्माता की लेखनी उसका कैमरा होता है, उसकी लेखन-पुस्तिका फिल्म की रील (आजकल रील की जगह चिप ने ले ली है) होती है।

ऐसे में साहित्य और सिनेमा पर कोई भी अध्ययन एकांगी होगा, यह स्वाभाविक ही है। यह इस प्रकार के अध्ययन की कमज़ोरी नहीं, शैलीगत मजबूरी है; क्योंकि जिस प्रकार एक फ़िल्मकार लेखक नहीं होता, उसी प्रकार एक लेखक या फिल्म-अध्येता फिल्म-निर्माता भी नहीं होता। अत: उसकी दृष्टि निर्माता की दृष्टि से भिन्न होगी ही। इस क्षेत्र में फिल्म-निर्माताओं के साक्षात्कारों के पुस्तक-रूप में प्रकाशन से साहित्य और सिनेमा के संबंधों पर संवाद को आगे बढ़ाने में सहायता मिल सकती है, जिस पर हिन्दी में अभी तक कोई विशेष ध्यान नहीं दिया गया है। पत्र-पत्रिकाओं, रेडियो, टेलीविज़न, यूट्यूब, फेसबुक इत्यादि पर निर्माताओं, निर्देशकों और फिल्मकारों के शायद हज़ारों साक्षात्कार प्रकाशित हुए हैं, जिनमें अनेक बार उस कथानक की चर्चा भी हुई है, जिस पर कोई फिल्म आधारित रही है। इन साक्षात्कारों के संकलन और प्रकाशन से फिल्मकारों के साहित्य के फिल्मांकन के प्रति दृष्टिकोण की भी जानकारी उपलब्ध हो सकती है! या फिर, साहित्यकार और अकादमिक क्षेत्र के अन्य अध्येता फिल्म-निर्माताओं के साथ बातचीत करें, तो इस क्षेत्र में संवाद आगे बढ़ सकता है।

डॉ. विजय कुमार मिश्र ने 'प्रेमचंद की कथा रचनाओं के सिनेमाई रूपांतरण की समस्याएँ' विषय पर शोध किया। उसके पश्चात् उस शोध को विस्तार देते हुए कुछ अन्य हिन्दी रचनाओं

पर आधारित बनी फिल्मों को भी अपने अध्ययन में सम्मिलित करके 'हिन्दी साहित्य और सिनेमा : रूपान्तरण के आयाम' नामक पुस्तक प्रस्तुत की है। लेकिन इस पुस्तक की विशेषता यह है कि इसमें सिद्धान्त और व्यवहार, दोनों ही दृष्टियों से साहित्य और सिनेमा के संबंधों पर विवेचन किया गया है। केवल फिल्म बनाने के सिद्धांतों पर चर्चा करने से यह अध्ययन एकांगी ही रह जाता, अत: लेखक ने एक फिल्म-निर्माता का अनुभव उसके पास न होते हुए भी इस विषय पर अनेक पुस्तकों का अध्ययन करके फिल्म-निर्माण के व्यवहार पक्ष को भी पाठकों के सामने रखने का प्रयत्न किया है।

पुस्तक मुख्यत: चार भागों में विभाजित है – पहला, साहित्यिक कृतियों के सिनेमाई रूपान्तरण की समस्याएँ, दूसरा, हिन्दी कथाकृतियाँ और उनका सिनेमाई रूपान्तरण, तीसरा, नव-सिनेमा आन्दोलन और हिन्दी कथाकृतियों का रूपान्तरण, और चौथा, प्रेमचन्द की कथा रचनाओं का फिल्मान्तरण, विश्लेषण और उसके विविध आयाम। चौथा भाग डॉ. मिश्र की पीएॅच.डी. के शोध का अंग है, अत: स्वाभाविक ही था कि उसे पुस्तक में सबसे अधिक स्थान मिलता। इसीलिए, साहित्य के फिल्म के लिए रूपान्तरण के समय आने वाली समस्याओं का परीक्षण करने के लिए प्रेमचंद की ही रचनाओं का सहारा लिया गया है, हालाँकि कुछ अन्य हिन्दी फिल्मों के भी बारे में विवेचन किया गया है। पुस्तक में उन कारणों को समझने का प्रयत्न किया गया है जिनसे कोई साहित्यिक कृति एक अच्छी फिल्म में बदली जा सकती है।

हिन्दी फिल्म-संसार का अध्ययन साहिब बीवी और गुलाम, गाइड, देवदास, आनंदमठ, एक चादर मैली सी जैसी फिल्मों के बिना हो ही नहीं सकता। लेकिन अध्ययन की सुविधा के लिए लेखक ने अपने को हिन्दी साहित्य तक ही सीमित रखा है, अत: हिन्दी-इतर साहित्य पर आधारित अनेक अच्छी हिन्दी फिल्मों की चर्चा होने से रह गई है। छूट गई श्रेष्ठ फिल्मों की इस सूची में रुथ पी. झबवाला के उपन्यास 'हीट एंड डस्ट' पर आधारित फिल्म भी उल्लेख के योग्य है। हॉलीवुड में भी थॉमस हार्डी के उपन्यास 'फार फ्रॉम दी मैडिंग क्राउड' जैसी अनेकों रचनाओं का फिल्मांकन किया गया है।

जहाँ तक प्रेमचंद की कहानी पर आधारित सत्यजित रे की फिल्म 'शतरंज के खिलाड़ी' का प्रश्न है, उसे एक 'असफल' फिल्म माना जाता है। लेकिन वह फिल्म व्यावसायिक सफलता के लिए नहीं, अपितु सत्यजित रे के काम की उत्कृष्टता और उनकी दृष्टि की विशालता के लिए जानी जाती है। यह भी विडंबना ही है कि हिन्दी लोक में उच्च कलात्मकता वाली फ़िल्में प्राय: व्यावसायिक रूप से असफल ही रही हैं। राज कपूर की १९७० में आई 'मेरा नाम जोकर' अत्यन्त उच्च कलात्मक स्तर की थी, और उसमें व्यावसायिक सफलता के सभी फ़ॉर्मूले राज कपूर ने डाले थे, लेकिन फिर भी वह फिल्म बुरी तरह से फ्लॉप रही। उसी राज कपूर की तीन वर्ष बाद आई फिल्म 'बॉबी' केवल एक व्यावसायिक और फार्मूला फिल्म थी, और उसने बॉक्स ऑफ़िस के रिकॉर्ड तोड़ दिए थे। इनके अतिरिक्त भी तीसरी कसम, पाकीज़ा जैसी कितने ही फिल्मों के उदाहरण दिए जा सकते हैं। फिल्म और कला के भिन्न-भिन्न ही फ़ॉर्मूले हैं।

इसी प्रकार 'शतरंज के खिलाड़ी' की 'साहब बीवी और ग़ुलाम' के साथ तुलना भी समीचीन होगी। 'साहब, बीबी और ग़ुलाम' बिमल मित्र के इसी नाम के बांग्ला उपन्यास पर आधारित थी और 'शतरंज के खिलाड़ी' की तरह ही एक भव्य फिल्म थी। लेकिन उसके बॉक्स ऑफिस पर सफल होने के पीछे क्या कारण रहे होंगे, इसकी विवेचना रोचक रहेगी। 'शतरंज के खिलाड़ी' में निर्देशक की अपनी कलात्मक दृष्टि साहित्यिक कृति पर कुछ अधिक ही हावी रही। या फिर, यह भी कहा जा सकता है कि रे एक दृष्टिवान निर्देशक थे, जिस कारण उनकी दृष्टि में प्रबुद्ध वर्ग ही अधिक रहा, और फिल्म आम आदमी के लिए नहीं बन पाई...! मुझे यह दृष्टिकोण ज़्यादा ठीक लगता है, कि इस फिल्म के लिए रे ने प्रेमचंद की कहानी के कथानक को आधार तो बनाया था, लेकिन उसके बाद इस फिल्म की पटकथा का उद्देश्य उनके अपने दृष्टिकोण, अपनी विचारशैली और अपनी काल्पनिकता को दिखाना ही अधिक रहा। प्रेमचंद ने अपनी कहानी में विशुद्ध ग्रामीण परिवेश और सामाजिक परिवर्तनों के काल में गहन मानवीय संवेदनाओं को दर्शाया है, जबकि रे एक नागरी पृष्ठभूमि वाले व्यक्तित्व के कलाकार थे और अपनी फिल्म में राजदरबार, उसमें सत्ता के लिए चलने वाले आपसी संघर्ष और षड्यंत्रों को दिखाना चाहते थे। मूल कहानी को पढ़ कर पता चलता है कि रे ने कहानी के सभी मूल तत्वों को अक्षुण्ण रखा था। लेकिन प्रेमचंद की इस कहानी का विस्तार आवश्यक था। केवल नौ पृष्ठ की इस छोटी सी कहानी के आधार पर ही फिल्म का निर्माण अकल्पनीय था। प्रेमचंद की कहानी में तीन-चार स्थानों को छोड़ कर संवाद लगभग नहीं ही हैं जबकि फिल्म तो संवादों पर ही आधारित होती है। इसीलिए रे को रेजिडेंट वाले क़िस्से, और लखनऊ पर अधिकार ज़माने के लिए आ रही कंपनी के सैनिकों की फौज वाले प्रसंगों को विस्तार देना पड़ा। इसके अतिरिक्त, उनकी फिल्म और प्रेमचंद की कहानी के भावात्मक और शिल्पगत आधार भी बिल्कुल भिन्न हैं। इस बात को पी.सी. बरुआ और बिमल रॉय द्वारा शरतचन्द्र के उपन्यास 'देवदास' पर बनाई गई अलग-अलग फिल्मों को देख कर ज़्यादा अच्छे तरीके से समझा जा सकता है। रे के समर्थन में मैं इतना अवश्य कहना चाहूँगा कि यदि कोई निर्देशक किसी साहित्यिक कृति की आत्मा को सुरक्षित रखते हुए उसका विस्तार करता है, तो वह ग़लत क्यों हो? हालाँकि मैं मंडलोई की पुस्तक में उल्लिखित इस बात से भी सहमत हूँ कि इस प्रकार की बात से निम्न स्तर के निर्देशकों को अनावश्यक छूट लेने का अधिकार मिल जाएगा, इसका ख़तरा अवश्य है! मोनी भट्टाचार्य जी द्वारा निर्देशित फिल्म 'उसने कहा था' में यही हुआ है। 'शतरंज के खिलाड़ी' की ही तरह इस फिल्म की मूलकथा भी सिर्फ ग्यारह पृष्ठों की एक छोटी सी

कहानी है जिसका विस्तार आवश्यक था। परन्तु निर्देशक ने वहाँ पर मूलकथा की आत्मा की ही हत्या कर दी – मूलत: युद्ध की पृष्ठभूमि वाली कहानी में युद्ध के दृश्य ही लगभग नदारद थे। जो दृश्य थे, उनमें भी मूल कहानी कहीं नज़र नहीं आती थी। बर्फ के दृश्य... फ्रांस और बेल्जियम... अंग्रेज़ और जर्मन सैन्य अधिकारी – सभी इस फिल्म से नदारद थे... इसमें युद्ध के कुछ स्टॉक-दृश्य उठा लिए गए थे... लड़ाई भी यूरोप के स्थान पर भारत-पाकिस्तान के बॉर्डर पर होती नज़र आती थी, यहाँ तक कि कहानी की सिक्ख पृष्ठभूमि के भी ग़ायब हो जाने के कारण कहानी का परिवेश ही पूरी तरह से बदल गया था, जिस चीज़ से रे ने 'शतरंज के खिलाड़ी' में अपने को बचाए रखा था।

यहाँ पर मैं विवेक दुबे की 'साहब बीवी और ग़ुलाम' पर की गई एक तकनीकी टिप्पणी से भिन्न मत रखता हूँ। पृष्ठ ३१ पर अपनी विवेचना में वे लिखते हैं, "लखनऊ की शानो-शौकत का पुनर्निर्माण... केवल फिल्म में ही पूरा हो सकता है" – चाक्षुष दृष्टि से वे ठीक हो सकते हैं; परन्तु राजदरबार की शानो-शौकत का निर्माण शब्दों के माध्यम से कितने ही उपन्यासों, प्रसाद के नाटकों और अमानत लखनवी के नाटक 'इन्दरसभा' जैसे सैंकड़ों नाटकों में भी बखूबी हुआ है!

इस फिल्म के आलोचक लोग यह भी कहते हैं कि उस काल-खण्ड और उस संस्कृति को दर्शाने के चक्कर में यह फिल्म एक फीचर फिल्म की जगह एक डाक्यूमेंट्री ही अधिक बन गई थी, जबकि 'साहब बीवी और ग़ुलाम' में गुरुदत्त ने इससे अपने को बचा कर रखा। 'साहब, बीबी और ग़ुलाम' में एक चीज़ और ध्यातव्य है, वह है इस फिल्म की पटकथा। इस उपन्यास के लेखक बिमल मित्र ने इसकी पटकथा खुद लिखी थी। उन्होंने अपनी पुस्तक 'बिछड़े सभी बारी-बारी' में लम्बी अवधि तक गुरुदत्त के फार्महाउस पर रह कर 'साहब, बीबी और ग़ुलाम' की पटकथा लिखे जाने के बारे में विस्तार से लिखा है। बिमल मित्र ने फिल्म के प्रदर्शन के पहले कुछ दिनों में टिकट खिड़की पर बहुत अच्छी सफलता ना पाने पर इस फिल्म के अन्त को बदलने संबंधी बहस, और गुरुदत्त के मूल कथा के अन्त को ही फिल्म में बनाए रखने के जोखिम भरे फैसले, और इस फैसले के द्वारा लेखक की मूलकथा के प्रति सम्मान प्रकट करने का भी विस्तृत विवरण दिया है। इस बात का उद्देश्य रे जैसे महान् फ़िल्मकार को छोटा करना नहीं है, उन्होंने तो एक ऐसा महान क्लासिक भारतीय फिल्म-जगत् को दिया है जिस पर हम सब गर्व करते हैं। लेकिन आम भारतीय दर्शक उनकी दृष्टि तक, और 'जोकर' में राज कपूर, और 'तीसरी कसम' में बासु भट्टाचार्य की दृष्टि तक भी तो नहीं पहुँच सके, जबकि इन दोनों फिल्मों में व्यावसायिक मसाला भी भरपूर डाला गया था। अत: फिल्म-जगत् में किसी फिल्म के सफल या असफल होने का पैमाना टिकट की खिड़की होना आवश्यक होने पर भी, अकादमिक अध्ययन में किसी फिल्म को असफल कहने के लिए कुछ और भी तत्वों का विवेचन आवश्यक है। 'शतरंज के खिलाड़ी' में इतिहास पर एक अलग कोण से दृष्टि डालने का प्रयास था, प्रयोगात्मकता थी, शास्त्रीयता थी, लेकिन 'मसाला' नहीं था, जो दर्शकों को अपनी ओर खींच सके! हिन्दी में अनेक ऐतिहासिक फ़िल्में बहुत सफल भी रही हैं, लेकिन हिन्दी दर्शकों की सोच बांग्ला दर्शक से भिन्न है, और शायद रे इस बात की परवाह किए बिना अपने ही दृष्टिकोण से काम कर रहे थे। यह बहुत अचरज की चीज़ भी नहीं थी, अगर हम इस बात को अपनी दृष्टि में रखें कि अवध का नवाब लखनऊ से निकाले जाने के बाद तीस वर्ष तक कलकत्ता (कोलकता) में रहा था; जिस कारण कला-फिल्मों के स्तम्भ माने जाने वाले तीन, सत्यजित रे, ऋत्विक घटक और मृणाल सेन में से एक, रे जैसे महान् बंगाली निर्देशक का इस विषय के साथ भावनात्मक जुड़ाव स्वाभाविक ही था।

मनोवैज्ञानिक उपन्यासों अथवा कृतियों के सिनेमाई रूपान्तरण और उसकी सम्प्रेषणीयता की अपनी समस्या है तो प्रयोगवादी फिल्मकारों की सम्प्रेषणीयता की अपनी समस्या है। "आज़ादी के बाद नव सिनेमा आन्दोलन ने हिन्दी की अनेकानेक साहित्यिक कृतियों के सिनेमाई रूपांतरण का कार्य किया। हालाँकि उनमें से अधिकांश फ़िल्में (व्यावसायिक दृष्टि से) असफल ही रहीं, किन्तु फिर भी रूपांतरण की दृष्टि से यह सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण दौर था।" अल्पजीवी रहे नवसिनेमा की लगभग एक दर्जन फिल्मों की लेखक ने विस्तृत विवेचना की है। इसी प्रकार प्रेमचंद की 'मिल मज़दूर' (१९३४) से लेकर अनेक कृतियों के फिल्मान्तरण के विविध आयामों, और फिल्मान्तरण की संभावनाओं और सीमाओं का विस्तृत विश्लेषण और विवेचना भी इस पुस्तक में की गई है, जो इस पुस्तक को फिल्म के विद्यार्थियों के लिए उपयोगी बना देती है।

व्यावसायिक सिनेमा से लघुफिल्मों और टेलीफिल्मों का गणित अलग होता है। ऐसे में साहित्य को लघुफिल्मों और टेलीफिल्मों के माध्यम से प्रस्तुत किया जाना क्या अधिक प्रभावशाली नहीं होगा? इस सन्दर्भ में टेलीफिल्मों की उपयोगिता पर प्रेमचंद की कहानियों के आधार पर गुलज़ार द्वारा निर्मित टेलीफिल्म श्रृंखला 'तहरीर' की सफलता पर लेखक की स्वीकारोक्ति बहुत प्रासंगिक है, "कृतिकार के संवेदनात्मक उद्देश्य की रक्षा और प्रेमचंद के पाठकों की रुचि को बिना किसी प्रकार का आघात पहुँचाए इन सफल टेलीफिल्मों का प्रभाव अत्यन्त ही व्यापक रहा।" आज के करोना-काल में उत्पन्न नवीन परिस्थितियों में यह प्रश्न और अधिक प्रासंगिक हो जाता है।

किसी लेखक की कृति को कक्षा में पढ़ाने के लिए पुस्तक की अपेक्षा यदि उसकी फिल्म को विद्यार्थियों को दिखा कर उस कहानी या उपन्यास को उन्हें पढ़ाया जाए, तो उसका प्रभाव कुछ अलग ही होगा। हालाँकि यह फ़िल्मकार के दृष्टिसंपन्न और साहित्यिक संवेदना से सुपरिचित होने पर भी निर्भर करेगा, और इस बात पर भी, कि निर्माता ने अपनी फिल्म को मूल आलेख के कितना समीप रखा है।

000

खिड़कियों से झाँकती आँखें

(कहानी संग्रह)

समीक्षक : भारती पाठक

लेखक : सुधा ओम ढींगरा

प्रकाशक : शिवना प्रकाशन, सीहोर

भारती पाठक
9/2/66, सत्य सदन, जैन मंदिर के बगल, महाजनी टोला,
रिकाबगंज, फैजाबाद– 224001 उप्र
मोबाइल– 8874885000

संस्कृति या विचारधारा किसी भी देश की हो, मानवीय संवेदनाओं में मिलावट की गुंजाइश कम ही होती है। ऐसे में कहानियों में कहीं कोई आडम्बर नहीं गढ़ा जा सकता क्योंकि सहज भाव की एक अपनी सुगंध होती है जो भाषा में किसी भी प्रकार की बनावट की बुनावट को झट से भाँप लेती है। ऐसे ही भावों में गुँथी छोटी-छोटी कहानियाँ हैं प्रख्यात साहित्यकार, पत्रकार तथा संपादक सुधा ओम ढींगरा के कहानी संग्रह "खिड़कियों से झाँकती आँखें" की। ये कहानियाँ एक ऐसे समय और समाज की झलक दिखाती हैं जिसमें संवेदना शून्य हो हम बिना परिणाम की परवाह के भागे जा रहे हैं। ऐसी कहानियाँ जो अपनी पहली पंक्ति से ही पाठक को बाँधकर उत्सुकता की ऐसी दुनिया में ले जाती हैं जहाँ बिना अंत तक पहुँचे लौटना मुश्किल होता है।

सुधा ओम ढींगरा यूँ तो विवाहोपरांत अमेरिका में बस गईं लेकिन हिन्दी प्रेम ने उन्हें अपने देश से बाँधे रखा।

'खिड़कियों से झाँकती आँखें' कुल आठ कहानियों का संग्रह है जिसकी हर कहानी में भारतीयता की सुगंध रची-बसी महसूस होती है। इनकी कहानियों की सबसे बड़ी खूबी उनकी रोचकता शुरू से अंत तक बरकरार रहना है जो कहानी का एक विशेष तत्व है। ये कहानियाँ अपने साथ-साथ दो देशों की सांस्कृतिक और सामाजिक सरोकारों की समझ विकसित करती चलती हैं। ख़ास बात है कि पाठकों का ये सीखना, समझना कहानी दर कहानी चलता रहता है और कहानी को एक दूसरे से जोड़ता हुआ प्रतीत होता है।

प्रतिनिधि कहानी 'खिड़कियों से झाँकती आँखें' एक ऐसे भारतीय युवा डॉक्टर की कहानी है जो अमेरिका के एक क़स्बेनुमा शहर में अपनी ड्यूटी ज्वाइन करता है और वहाँ के माहौल में खुद को कुछ अजीब सी कशमकश और असहजता में घिरा पाता है, वजह है उसके रहने की जगह पर खिड़कियों से झाँकती कुछ आँखें। यहाँ आँखें उन बुज़ुर्गों की प्रतीक हैं जिन्हें अपनों का साथ छूट जाने से जहाँ प्रेम व स्नेह की हलकी सी किरण नज़र आती है वहीं जुड़ जाना चाहती हैं।

"पहले दिन ही जब मैं यहाँ आया, घर का दरवाज़ा खोलते ही, आस-पास के घरों की खिड़कियों से कुछ चेहरे एकदम से झाँकते हुए मुझे घूरने लगे थे। किसी खिड़की से एक, किसी खिड़की से दो। अगर चेहरा होता तो शायद अजीब नहीं लगता, पर यहाँ तो दो या चार आँखें ही दिख रही थी मुझे। शून्य में टँगी, निर्जीव स्थिर सी आँखें। घर के अन्दर गया तो ऐसा लगा कि जैसे मेरी पीठ पर वे आँखें चिपक गई हैं।"

अब ख़ास बात यह है कि उन बुज़ुर्गों का वहाँ होना उनकी मजबूरी ही नहीं अपनी इच्छा भी है। बड़े शहरों के भाग-दौड़ वाले जीवन से अलग शांति की तलाश में वे क़स्बाई जीवन का सुख लेने के लिए वहाँ हैं। भले ही वे अकेले हैं लेकिन अपने मनपसंद माहौल में हैं। यह बात कहानी के शुरू में पाठकों के मन में उपजते पूर्वाग्रहों को कहानी के आगे बढ़ते- बढ़ते ध्वस्त करती चलती है। सबके जीवन अलग हैं और उससे जुड़े सुख-दुःख भी, जो इस कहानी को कई आयाम देते हैं। जल्दी ही कहानी का नायक इस सच्चाई को समझकर कहता है कि -"मैं जान

गया कि सहारे को तलाशती ये आँखें किसी भी अज़नबी में अपनापन ढूँढ़ने लगती हैं।" अपनी जड़ों से अलग होकर कहीं और जड़ें ज़माना फिर अगली पीढ़ी का भी उसी राह पर निकल पड़ना लोगों को नितांत अकेला करता जाता है, तो अपने देश लौटने की इच्छा उत्पन्न होना स्वाभाविक है। बदलते समय के साथ पनपते स्वार्थभाव से रिश्तों के बीच पहले जैसे प्रेम और मर्यादा का अभाव साफ दिखने लगा है लेकिन सुधा जी की कहानियों में यह बात साफ़-साफ़ दिखती है कि न तो विदेश में बसने वाले सभी बुरे ही होते हैं न ही स्वदेश में रहने से सभी संस्कार युक्त ही हो जाते हैं। यह बात हमें इस कहानी की कड़ी अगली कहानी 'वसूली' से जोड़ती है जहाँ हरि और सुलभा के माध्यम से लेखिका हमें विदेशों में बसे भारतीयों का अपने देश और बंधु बांधवों के प्रति प्रेम, लगाव और भावुकता को दिखाती है वहीं हरि के भाई और भाभी को स्वार्थ की उस मनोवृत्ति के रूप में जिनके लिए विदेश में बसे परिजन किसी बैंक बैलेंस से अधिक कुछ नहीं। भारत में जन्मा हरि अपने छह भाई बहनों के साथ निर्धनता में पला बढ़ा है। मेहनत से हासिल किये गए मुकाम ने जहाँ उसे अधिक विनम्र और भावुक बनाया वहीं उसी माहौल में पले-बढ़े उसके भाई को समय और संगत के साथ स्वार्थी और आत्मकेंद्रित। परिवार के सुख के लिए हरि अमेरिका में बसना स्वीकार करता है जिससे देश में उसके माता-पिता और भाई बहन को बेघर न होना पड़े लेकिन बड़े भाई के संपत्ति के लालच से परिवार को बिखरने से बचाने के प्रयास में वह वापस आता है। भाई के धोखे से क्षुब्ध हरि को समझाते हुए सुलभा कहती है कि-"दिल और दिमाग़, भावना और विवेक का द्वंद्व मानव के जीवन में हर समय चलता रहता है। कब किसका पलड़ा भारी हो जाए, कहा नहीं जा सकता। भौतिकता का आकर्षण कहाँ कुछ देखने देता है।" यानी एक जैसी परिस्थितियाँ भी मनुष्य को अलग-अलग विचारों से जोड़ सकती तथा प्रभावित कर सकती हैं।

अगली कहानी है एक अडल्ट लिविंग एंड नर्सिंग होम की, जहाँ आए शुक्ला दंपति के दो बेटे उन्हें वहाँ छोड़ गए है। बच्चों की संवेदनहीनता से वे स्तब्ध हैं। तीसरा बेटा और उसकी पत्नी जो जाने-माने डॉक्टर हैं उन्हें लेने आते हैं। यह वह बेटा है जिसे वे संकीर्ण परम्पराओं और संस्कार के नाम पर बरसों पहले त्याग चुके थे। वजह थी बेटे की एक विदेशी लड़की से मित्रता और विवाह की इच्छा जिसके लिए वे तैयार नहीं हुए और बेटे से संबंध विच्छेद कर लिया। आज वही बेटे बहू उन्हें अपने साथ ले जाने आए हैं। यहाँ तक तो कहानी कुछ-कुछ हिन्दी फिल्मों का सा आभास देती है लेकिन वास्तव में आगे इसके दूसरे ही आयाम दिखते हैं जब शुक्ला दंपति बेटे-बहू के साथ उनके घर जाते हैं। बहू के परिजनों और दोस्तों से मिलकर शुक्ला दंपति में जीवन को देखने और जीने का एक नया ही दृष्टिकोण विकसित होता है जिसमें आश्रित होने की घुटन नहीं बल्कि स्वछंदता से अपना जीवन अपने तरीके और अपनी इच्छा से जीने का सन्देश है। यह कैसे संभव होता है यही इस कहानी का सार है जो एक सकारात्मक प्रभाव छोड़ती है। यह कहानी पश्चिमी देशों में भी सयुंक्त परिवार के महत्त्व, रहन-सहन और विचारों को प्रदर्शित करती है

'ऐसा भी होता है' कहानी एक चिट्ठी के अपने पते पर पिन के अंक के ग़लत हो जाने के कारण करीब ग्यारह महीने भटकने के बाद पहुँचने की है। इस बीच चिट्ठी का जवाब नहीं देने के कारण कथा नायिका दलजीत को उसके माता-पिता तमाम नाराज़गी भरी ऐसी चिट्ठियाँ लिखते हैं जिससे आश्चर्यचकित दलजीत पहले तो समझ नहीं पाती कि उसके माता-पिता क्यों नाराज़ हैं; लेकिन जब चिट्ठी उसे मिलती है तो आभास होता है कि माता पिता और भाइयों के लिये वह पैसा भेजने की मशीन के अलावा कुछ नहीं। पंजाब में बेटियों के विदेशों में बसे भारतीय लड़कों से विवाह के पीछे की सच्चाई को उकेरती यह इस संग्रह की एक सशक्त और उम्दा कहानी है।

माँ-बेटे के भावनात्मक रिश्ते में किसी तीसरे को लेकर हुई खींचतान को दर्शाती कहानी है 'कॉस्मिक की कस्टडी'। कहानी के सूत्रधार हैं फैमिली कोर्ट के डिस्ट्रिक्ट एडवाईज़र अटर्नी जिन्हें इस अजीबोगरीब केस को सुनकर फ़ैसला देना है जिसके एक तरफ एक माँ है और दूसरी तरफ बेटा जो एक दूसरे को गैर ज़िम्मेदार ठहराकर कॉस्मिक की कस्टडी हासिल करना चाहते हैं। खुद को ज़िम्मेदार और सही ठहराने के दोनों के अपने तर्क हैं जिनके बीच-बीच में दोनों का एकदूसरे से भावनात्मक लगाव भी छिपता नहीं। ये लेखिका की सशक्त कलम का कमाल है कि वे एक बेहद संवेदनशील मुद्दे को भी इतनी सहजता से कहानी में पिरो देती हैं कि पाठक खुद को उन्हीं के बीच खोया महसूस करने लगता है। अब यह कॉस्मिक कौन और उसकी कस्टडी के लिए दोनों के बीच मनमुटाव क्यों ? यह एक रोचक तथ्य जिसके लिए अंत से पहले कहानी से नज़रें हटाना मुश्किल है।

"यह पत्र उस तक पहुँचा देना" कहानी एक अंतर्राष्ट्रीय फर्म की एग्ज़ीक्युटिव दीपाली और उसके पति हार्दिक के कुछ विदेशी मेहमानों को एअरपोर्ट ले जाने के साथ शुरू होती है। रास्ते में अचानक बहुत ज़्यादा ट्रेफिक मिलने से वे एक ऐसी सड़क को चुन लेते हैं जिसके बारे में कई तरह की डरावनी कहानियाँ कही और सुनी जाती हैं। उनकी कार में बैठा मनीष नामक युवक उन्हें एक चिट्ठी देता है जिसे किसी जैनेट गोल्डस्मिथ तक पहुँचाने की बात कहता है। दीपाली और हार्दिक यह नाम सुनकर सोच में पड़ जाते हैं। यह चिट्ठी विजय नाम के युवक की है जो मनीष का मित्र है। अब उस चिट्ठी का जैनेट और विजय के साथ क्या और कैसा संबंध तथा आगे उस रास्ते पर उन सभी के साथ क्या हुआ, यह बेहद रोचक शैली में लिखी कहानी है। कहानी का मुद्दा कहीं-कहीं अपने झूठे मान सम्मान के लिए बच्चों की खुशियों की बलि देने का है। तो आगे कहानी में क्या मोड़ आता है और वह चिट्ठी जैनेट तक कैसे पहुँचती है इसकी उत्सुकता अंत तक बनी रहती है।

"बहुत से माँ-बाप उसने ऐसे देखे हैं जो अपनी अतृप्त इच्छाओं को बच्चों से पूरा करना चाहते हैं। उससे बच्चे किस मानसिक

तनाव से गुज़रते हैं माँ-बाप कभी महसूस ही नहीं कर पाते। कई बार बच्चे अवसाद में चले जाते हैं। ऐसे में बच्चों के व्यक्तित्व का सही विकास नहीं हो पाता है।" ये पंक्तियाँ वैसे तो कहानी 'अँधेरा उजाला' की हैं जिसकी शुरूआत अपनी महत्त्वाकांक्षा और खुद को दूसरे से बेहतर सिद्ध करने की होड़ में बच्चों की उपलब्धियों की डींगे मारने और उन्हें प्रतिस्पर्धा में झोंकने के प्रयासों से होती है लेकिन आगे मुड़कर यह जातिवाद से उपजे भेदभाव और दोहरी मानसिकता की ओर भी नज़र घुमाती एक रोचक कहानी में बदलती जाती है।

इस संग्रह की आख़िरी कहानी 'एक नई दिशा' मौली के अपने गहनों के प्रति आकर्षण और प्रेम को प्रदर्शित करती कहानी है। एक प्रापर्टी डीलिंग कंपनी में कार्यरत मौली को कीमती गहनों का शौक है। उससे आकर्षित हो एक जोड़ा उसे घर दिखाने के बहाने ज़ेवर लूटने की योजना बनाता है। आगे जो होता है उस घटना से मौली को एक नई सोच, नई दिशा मिलती है।

इस संग्रह की प्रत्येक कहानी किसी न किसी समसामयिक संवेदनात्मक समस्या के इर्द-गिर्द घूमती है और उस समस्या को कई दृष्टिकोणों से एक साथ देखने तथा विचार करने का नज़रिया देने का प्रयास करती है। सुधा जी की कहानियों में अंत का पहले से अंदाज़ा लगाना मुश्किल होता है क्योंकि सहजता से आगे बढ़ती कहानी अचानक कोई रोचक मोड़ ले कर पाठकों को चमत्कृत कर देती है। इनकी कहानी के पात्र किसी विशेष कालखंड या समय में ठहरे हुए नहीं बल्कि समय के साथ चलते हुए दिखाई देते हैं और यही बात इनकी भाषा के स्तर पर ही लागू होती है, जो लेखिका के खुद एक अच्छे पाठक होने का संकेत देती है, जिसकी अपने समकालीन ही नहीं नए लेखकों की विषयगत और समसामयिक लेखिकीय गतिविधियों पर पूरी नज़र है। कुल मिला कर दो देशों, संस्कृतियों तथा परिवेश की सुगंध लिए एक पठनीय संग्रह।

000

नई पुस्तक

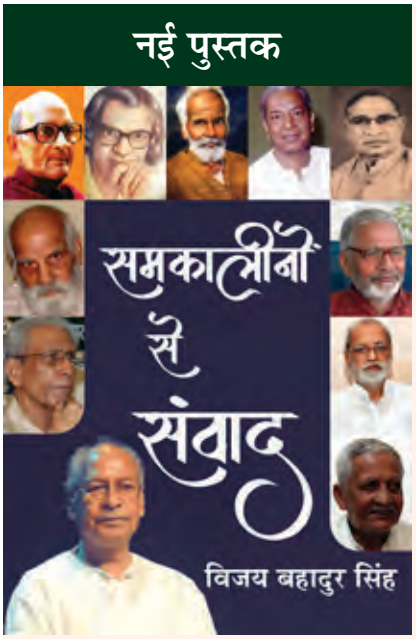

समकालीनों से संवाद

(साक्षात्कार, संस्मरण)

लेखक : विजय बहादुर सिंह

प्रकाशक : शिवना प्रकाशन, सीहोर, मप्र

वरिष्ठ आलोचक, कवि डॉ. विजय बहादुर सिंह की यह महत्त्वपूर्ण पुस्तक शिवना प्रकाशन से प्रकाशित होकर आई है। संस्मरण तथा साक्षात्कारों का संकलन है यह पुस्तक। पुस्तक में सुमित्रा नंदन पंत, आचार्य नंद दुलारे वाजपेयी, बाबा नागार्जुन, भवानीप्रसाद मिश्र, त्रिलोचन, डॉ. रामविलास शर्मा, नामवर सिंह, भगवान सिंह, दूधनाथ सिंह, अदम गोंडवी जैसे जाने-माने तथा यशस्वी साहित्यकारों को लेकर डॉ. विजय बहादुर सिंह के संस्मरण तथा साक्षात्कार हैं। स्वयं डॉ. विजय बहादुर सिंह इस पुस्तक को लेकर कहते हैं- "समकालीनों से संवाद का काल वृत्त शताब्दी के उत्तरार्ध से लेकर समापन-काल तक को समेटता है। इसे निपट संवाद कहना कितना सटीक है, कहना मुश्किल। कहीं-कहीं तो बस श्रोता की और लिपिकार की भूमिका निभाई गई है। जिन लोगों से यह बातचीत की गई है सौभाग्य से उनमें केवल भगवान सिंह हमारे बीच हैं। संस्कृति और साहित्य के अधिकांश उनके काम से परिचित हैं। ऐसे लेखक और बौद्धिक से हिन्दी संसार परिचित होना चाहेगा।

पुस्तक के पाठकों को यह बताना ज़रूरी है कि सुव्यवस्थित बातचीत चार पाँच- सर्वश्री कवि सुमित्रानंदन पंत, आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी, भवानी प्रसाद मिश्र और अदम गोंडवी से ही हुई। आचार्य वाजपेयी मेरे गुरु ही थे और हिन्दी आलोचना में सर्व प्रतिष्ठित कवि भवानी प्रसाद मिश्र और अदम गोंडवी मेरे साहित्यिक जीवन के अविभाज्य अध्याय रहे। एक का भरपूर स्नेह मिला और दूसरे का भरपूर साथ। कवि श्री नागार्जुन तो मेरे गुरुओं के भी महागुरु थे। दुनिया और शब्दों की दुनिया में रहने और जीने का गुण उन्होंने ही सिखाया। आचार्य वाजपेयी के बाद साथ रहने का समय सबसे ज़्यादा उन्हीं के साथ गुज़रा। भवानी भाई की मृत्यु के बाद उनकी रचनावली, साक्षात्कार, प्रतिनिधि कविताएँ, उनके लिखे पत्र सबका संपादन परिवार की ओर से मेरे ही ज़िम्मे आया। रामविलास जी से संक्षिप्त बातचीत आकस्मिक रूप से घटित हुई थी। आचार्य वाजपेयी के निजी सहायक रहने के कारण और थोड़ा बहुत मेरे लेखक होने के चलते वे मुझे हर बार मुझे स्नेह और ज़रूरी नसीहतें भी दिया ही करते थे। त्रिलोचन जी ने न केवल हमारे अवध के ठाकुर परिवार से थे बल्कि हमारे ख़ानदान के एक चाचा के स्कूल सहपाठी थे। नामवर जी से संवाद का सिलसिला गोवा-विश्वविद्यालय की पहाड़ियों पर सुबह की टहलान के समय हुआ। घूमते समय वे अपनी स्मृतियों में खो जाया करते और मैं एक ज़िम्मेदार श्रोता की तरह उनके शब्दों को सहेजता चलता। दूधनाथ भाई से बातचीत उनके निराला सृजन पीठ, भोपाल के दिनों की है जब वे कभी-कभी विदिशा साधिकार आ धमकते।"

000

पुस्तक समीक्षा

मेरे गाँव का पोखरा

(कविता संग्रह)

समीक्षक : नीरज नीर

लेखक : डॉ. नीलोत्पल रमेश

प्रकाशक : प्रलेक प्रकाशन

नीरज नीर
आशीर्वाद, बुद्ध विहार,
पोस्ट– अशोक नगर,
रांची– 834002 (झारखंड)
मोबाइल – 8789263238

भारत में धर्मनिरपेक्षता एक ऐसा विचार है जिसका बीजारोपण न करके सीधे वृक्षारोपण किया जाता है। इसलिए इस विचार-वृक्ष के फलने फूलने और लहलाने में सदैव ही संदेह बना रहता है। ऐसे ही में जब एक कवि लिखता है : बच्चे स्कूल जा रहे हैं / अपनी पीठ पर लादे हुए— / कुरान की आयतें / गीता के श्लोक / बाइबल की सूक्तियाँ / और-और धर्मों की / अनेक विचारधाराएँ ... / बच्चे स्कूल जा रहे हैं / उनकी पीठ पर / बैठा हुआ है पहाड़ / पृथ्वी इसके बोझ से / असहज महसूस कर रही है / दिशाएँ खोती जा रही हैं / अपना संतुलन (बच्चे स्कूल जा रहे हैं कविता से) तो एक पाठक का चौंकना स्वाभाविक है। उसे कवि से सहसा उम्मीद बाँधने लगती है। बतौर एक पाठक यह महसूस होता है कि इस कवि ने नई बात कहने की हिम्मत दिखाई। समस्या के मूल की ओर ध्यान आकृष्ट किया है। हम यह जान पाते हैं कि इस कवि की रुचि समस्या के समाधान में है न कि व्यर्थ का वितंडा खड़ा करने में।

अभी मेरे हाथों में नीलोत्पल रमेश जी का नया नवेला एवं पहला कविता संकलन है "मेरे गाँव का पोखरा"। इनकी कविताओं से गुज़रते हुए यह प्रतीत होता है कि वे अपने परिवेश के कवि हैं, अपनी मिट्टी के, अपनी गली -कूचे के कवि, अपने गाँव-अहरा –पोखरा के कवि। छोटी-छोटी बातें जिन्हें आम आम आदमी नज़रअंदाज़ कर देता है लेकिन जिनका प्रभाव एवं निहितार्थ बड़ा होता है, इनकी कविताओं के विषय वस्तु बनते हैं।

नीलोत्पल रमेश धवल आकाश के कवि नहीं बल्कि धरती के कवि हैं। उनकी कविताओं में आवेग, उद्वेग समंदर की लहरों की तरह ठाँठे नहीं मारता बल्कि धूल के ग़ुबार की तरह उठता है लेकिन वह किसी विनाशकारी सुनामी की तरह नहीं होता बल्कि रचनात्मक होता है। वे समाज के प्रति अपनी ज़िम्मेवारियों से अच्छे से परिचित हैं। वे दुनिया में बदलाव तो चाहते हैं पर दुनिया को ख़त्म करके नहीं।

नीलोत्पल रमेश की कविताओं में हाशिये के समाज की पीड़ा मर्मांतक रूप से दर्ज होती है एवं पाठक के सामने एक चित्र सा खड़ा हो जाता है। उसे लगता है कि अरे! यह तो मेरा देखा हुआ दृश्य है। मानों कवि ने मेरे ही मन की बात कह दी हो और पाठक अनायास ही कविता से जुड़ जाता है। इसका एक कारण यह भी है कि नीलोत्पल रमेश सायाश कविता करते हुये प्रतीत नहीं होते बल्कि अपने आस-पास से, लोगों की भाव भंगिमा से, आचार—विचार से कविता चुनते और उठाते हुये प्रतीत होते हैं।

बच्चे अभी चलना भी / नहीं सीख पाए हैं ठीक से/ कि निकल पड़ते हैं/ पिता के साथ—/सूअर चराने, मूस मारने, मछली पकड़ने/ और-और बहुत सारे काम करने/ सृष्टि की गतिशीलता के साथ ही/ इनकी भी होती है सुबह/ और इनके पैरों में लग जाते हैं पंख/ जो उड़ान भरने को/ हो जाते हैं बेताब ("पिता के साथ" कविता से)

वर्तमान समय के राजनैतिक हालात पर भी कवि की पैनी नज़र है एवं राम के ढोंगी भक्तों की भी ख़बर लेते हुये वे दिखते हैं। जिन्होने राम के चरित्र को कभी नहीं पढ़ा, उसे जानने, समझने की चेष्टा नहीं की, वैसे लोग जब राम के नाम पर ध्वजवाहक होते हैं तो उसका जो दुष्परिणाम होता है, जो सामाजिक ताना-बाना छिन्न-भिन्न होता है, उससे व्यथित कवि का मन विह्वल मन पुकार उठता है कि हे राम! कब आओगे?

हे राम! / कब आओगे?/आज तुम्हारी आवश्यकता/ आन पड़ी है/ ताकि भारत की जनता/

ढोंगी भक्तों से/ छुटकारा पा सके!/ आ रहे हो न!/ यहाँ की जनता के लिए/ उनकी हिफाजत के लिए/ अब आ भी जाओ/ कुछ बिगड़ा नहीं है/ ताकि भारत की जनता को/ त्राण मिल सके/ इन ढोंगी रामियों से।

नीलोत्पल रमेश की विशेषता है कि वे अपनी कविताओं में बहुत ही सहज तरीके से बड़ी बात कह जाते हैं। उनकी कविताओं में दर्ज मनोभाव अभिव्यंजना को बहुत ही विस्तृत फ़लक प्रदान करते हैं। अब इसी कविता को देखिये : सभी आज़ाद हैं / किसी को मनाही नहीं /जिसके मन में जो आए-कहे / क्या फ़र्क पड़ता है! / मैं / पानी को आग/ जंगल को समुद्र /और वृक्ष को पहाड़ कहूँगा /क्या फ़र्क पड़ता है! / मैं /आदमी को जानवर /संजीव को संजू/ और सड़क को प्यार कहूँगा /क्या फ़र्क पड़ता है! / मैं/ लालू को चारा/ राबड़ी को खटाल/और भारत को राम कहूँगा/ क्या फ़र्क पड़ता है! ("क्या फ़र्क पड़ता है" कविता से)

निर्बाध आज़ादी के इस पगलाए समायावधि में कितनी सहजता से कवि कह देता है कि "भारत को राम कहूँगा"। कितना बड़ा इसका निहितार्थ है, कितना दूरगामी इसका प्रभाव है। यही बात कहने के लिए न जाने कितना हाय-तौबा मचाने के ज़रूरत पड़ती। कितने लोगों के हाथ में पत्थर पकड़ाना होता, कितने दंगे कराने होते। कविता की विशेषता यही होती है कि कवि अपनी बात कह भी देता है, समझने वाले समझ भी जाते हैं, उसका आवश्यक प्रभाव भी होता है लेकिन वह विनाशकारी नहीं होता। वह परिवर्तन तो करता है पर हिंसा के लिए उकसाकर नहीं।

नीलोत्पल रमेश की कविता वाचाल एवं उलझावों की शिकार नहीं है वह अपने सीमित साधन में ही अपने साध्य को लेकर सुस्पष्ट है। वे झारखंड के कोयलाञ्चल में निवास करते हैं। वहाँ के लोगों की रोज़ की पीड़ा से दो-चार होते हैं इसलिए कोयला और कोयले से जुड़े लोग उनकी कविताओं में बार-बार आते हैं। एक खनिज संपदा संपन्न राज्य में खनिज सम्पदा का किस तरह से अविवेकी एवं बलात दोहन किया जाता रहा है इसकी पीड़ा नीलोत्पल रमेश बहुत गहरे महसूस करते हैं। खनिज सम्पदा के इस दोहन से न केवल यहाँ की ज़मीन कराहती है बल्कि यहाँ के रहने वाले लोग भी अनेक तरह की बीमारियों के शिकार हो जाते हैं- भुरकुंडा / एक स्टेशन है कोयलांचल का / सवारियाँ कम होती हैं यहाँ/ लदान ज़्यादा/ लदान कोयलों की/ चहुँओर धरती घर, सड़क, वनस्पति/ हर रेशे गोशे पर जमी हुई है/ कोयले की धूल/ ट्रेन पकड़नी हो तो/ पार करना होता है/ काली धूल का समंदर/ कोयले की धूल यह/ चाटती रहती है भूमि की उर्वरा/ दोपायों के भीतर उतर/ पोसती हैं बीमारियाँ/ नसीहतें देते हैं चिकित्सक/ सीख देते हैं बुज़ुर्ग/ रोज़ गुड़ खाओ...गुड़ ("भुरकुंडा" कविता से)

इसी तरह एक कविता है "कोयला ढोने वाले" जिसमें, कोयला ढोने वाले मज़दूरों के दुख –तकलीफ की बहुत ही मार्मिक अभिव्यक्ति हुई है- कई मज़दूर ऐसे हैं / जिन्हें अपने घर गिद्दी से/ रांची तक पहुँचने में/ बीच के थानों के / वसूली करते पुलिस वाले / मिल ही जाते हैं/ जो पहले पाँच-दस में/ मान जाते थे/ लेकिन अब तो उन्हें भी / तीस-चालीस से कम नहीं चाहिए

नीलोत्पल रमेश की कविताएँ हमारे समय और समाज की त्रासद विडंबनाओं और अंतर्विरोधों को केंद्रगत करते हुये गहन सरोकारों एवं प्रतिबद्धताओं का मार्मिक चित्र उकेरती है। इनकी भाषा सहज, सरल एवं बोधगम्य है। गंभीर बातों को भी ये अपनी कविताओं में बहुत सहजता से रख देते हैं।

एक कवि का काम आईनासाज का काम नहीं होता है वह आईना दिखाने का काम करता है और इसके लिए ज़रूरी नहीं है कि उसका आईना बहुत खूबसूरत हो बल्कि जो चीज़ ज़रूरी है वह यह कि आईना चटका हुआ नहीं हो। आज जब पढ़े-लिखे तथाकथित बुद्धिजीवि लेखक, पत्रकार, डॉक्टर आदि को हम देखते हैं तो लगता है कि उनके घोषित जीवन आदर्शों एवं उनके कर्मों में कितना अंतर है। हर आदमी अपने चेहरे पर एक मुखौटा लगाए घूम रहा है और जब मुखौटा हटता है तो वह सारे बाज़ार पूरी तरह नंगा खड़ा दिखता है। नीलोत्पल रमेश अपनी एक कविता "बेचेहरे का आदमी" में इसी सच को आईना दिखाते नज़र आते हैं- आजकल /मुझे एक ही आदमी के / दीखते हैं कई चेहरे /जो अक्सर परेशान करते हैं / और मैं हो जाता हूँ बेचैन / मैं निकला तलाश में / ताकि खोज सकूँ / एक चेहरा का आदमी / लेकिन नहीं खोज पाया / फिर अपने से ही पूछ बैठा— /भई, बताओ / कोई ऐसा आदमी / जिसके / सिर्फ एक चेहरा हो/ जिसे मैं

कहीं भी, कभी भी / पहचान सकूँ! फिर मेरे अंदर

हमारे समय की राजनीति और उसके प्रति हमारी प्रतिक्रिया भी अक्सर अजीब मंजर उपस्थित करती है। जो किसी के लिए बुरा है वही बात कर्ता के बदलते ही सही प्रतीत होने लगता है। यह दरअसल राजनीतिक-मानसिक विभ्रम की स्थिति है। जो आम आदमी को सही और ग़लत का निर्णय करने में भेद करने से रोकती है। लेकिन एक कवि के रूप में न केवल इसकी पहचान करना बल्कि ग़लत के विरुद्ध प्रतिरोध की आवाज़ को मुखर करना भी कवि का कर्तव्य है और कवि नीलोत्पल रमेश इसमें पीछे नहीं हटते। वे अपनी कविताओं में समय की विसंगतियों को पाठकों के सामने कुछ ऐसे प्रस्तुत करते हैं कि पाठक का मर्म आंदोलित हो उठता है- लड़कियाँ / चुपचाप कर रही थीं प्रतिरोध / कि डंडे बरस पड़े / एकाएक आसमान से /नहीं-नहीं / दिशाओं के अपने हाथ हो गए हैं / और अदृश्य शक्तियाँ / बरसा रही हैं लाठियाँ / फूल-सी कोमल / सत्ता के लिए बनी मुसीबत / लड़कियों पर ("सत्ता के लिए मुसीबत" कविता से)

नीलोत्पल रमेश के सद्यप्रकाशित कविता संकलन "मेरे गाँव का पोखरा" में संकलित कविताएँ अपने सुस्पष्ट कथ्य एवं साफ दृष्टिकोण के लिए अवश्य पढ़ी जानी चाहिए। इस संकलन में कुल ६७ कविताएँ संकलित हैं। यह कविता संकलन संग्रहणीय बन पड़ा है।

000

पुस्तक समीक्षा

माँ के लिये

(कविता संग्रह)

समीक्षक : पूनम मनु

लेखक : हेमधर शर्मा

प्रकाशक : प्रोग्रेसिव प्रकाशन, नागपुर

पूनम मनु
बी–285 श्रद्धापुरी फेज–2, कैलाशी हॉस्पिटल के पीछे, सरधना रोड़, कंकर खेड़ा, मेरठ कैंट– 250001 उप्र
मोबाइल- 9012339148

बेचैनी की ज़मीन बहुत ही भुरभुरी और उर्वरक होती है। उस पर यदि संवेदनाएँ भावुकता की सभी सीमाएँ लाँघ जाएँ तो सर्जक का जन्म होना निश्चित है। मन कहता है, ऐसा ही कुछ हुआ होगा कवि हेमधर शर्मा के साथ। क्योंकि उनकी सभी कविताएँ उनकी पूरी-पूरी चुगली करती प्रतीत होती हैं। उनका काव्य संग्रह आजकल मेरे सिरहाने है।

'माँ के लिये' उनके काव्य संग्रह का शीर्षक उनकी लंबी भावुक कविता-'माँ के लिये' पर है, जो बहुत ही उचित जान पड़ता है। कविता को पढ़ते हुए ऐसे लगता है जैसे उनको इसके बाद किसी और से जानने की आवश्यकता ही नहीं। इस कविता की कुछ पंक्तियाँ देखिए- 'नहीं माँ, मैं कलह के डर से/नहीं भागा हूँ घर से/कोई ग़लती नहीं है भाभी की /तीन-तीन बच्चे और भैया बेरोज़गार हैं/ हर कोई चाहता है आर्थिक सुरक्षा/मैंने तो कभी दुखाना नहीं चाहा था माँ/दिल तुम लोगों का/विश्वास था कभी कि/सुधार लूँगा एक दिन/भाभी के बिगड़ैल स्वभाव को/भैया के क्रोध को/और तुम्हारी ग्लानि को/अपने मधुर व्यवहार से।' इसके आगे की कुछ पंक्तियाँ देखिए कि- 'द्विपक्षी हूँ मैं/कि एक पक्ष में जन्म हुआ है मेरा/और दूसरे में संस्कार/इसलिए शांत रहता हूँ मैं पंद्रह दिन/और पंद्रह दिन बेचैन।' उनकी बेचैनी को परिलक्षित करती है।

कवि हेमधर शर्मा कहते हैं- राह एकाकी चुनी, / चलता रहा बरसों बरस / पर देख कर मंज़िल निकट, हो रही अकुलाहट ये कैसी ! / काँपते हैं हाथ क्यों?' एक अनुत्तरित प्रश्न। प्रश्न से भरी अकुलाहट। संग्रह के आरंभ में ही रचना प्रक्रिया नामक शीर्षक के अंतर्गत उनके लिखित ये शब्द उनके अत्यंत संवेदनशील होने का प्रमाण हैं। जो स्वयं चुना उसमें भी उन्हें चैन नहीं। यानि कवि हृदय में भरी बेचैनी उन्हें हर स्तर, हर विषय पर चिंतन को मजबूर करती है। जिससे यह बोध होता है कि प्रकृति से वे कवि थे, हैं और रहेंगे। उन्होंने स्वयं कहा है- 'एक समय वह भी था जब किसी भी अच्छी रचना का सृजन खुशी से पागल किए रखता था। कई कई दिनों तक, अनुच्चरित पंक्तियाँ मन में गूँजती रहती थीं। खुशी की वह लहर सृजन के लिए निरंतर प्रेरित रखती थी...' अब उनके व्यक्तित्व और उनकी रचनात्मक्ता को समझना तनिक भी कठिन नहीं।

यूँ तो कविताएँ, प्रत्येक उस कवि के हृदय का दर्पण हैं जिनकी वे रचनाएँ होती हैं। परंतु यह सभी के लिए नहीं कहा जा सकता। जिस तरह का वातावरण है। कॉपी कट पेस्ट का ज़माना है। चोरी का माहौल है। ऐसे में यह कहना थोड़ा अनुचित भी जान पड़ता है। किन्तु हेमधर शर्मा को पढ़ते हुये यह आभास होता है कुछ है जो अभी प्रकृति को बचाए हुए हैं। उनकी कविताएँ उनके स्वभाव अनुरूप है हैं। उन्हें प्रकृति से कितना प्रेम है। उन्हें खेतों से कितना प्रेम है। उनकी नस-नस में बसता है गाँव। उनकी कविताओं को पढ़ते आप भी उस भावुक हृदय के साथ कहीं बहते चले जाते हैं। उनकी कविताएँ केवल उनकी नहीं हैं। सबकी हैं। कविताओं से उनका लगाव अदभुत है। इसको भली प्रकार स्पष्ट करने के लिए उनके संग्रह की पहली कविता की कुछ पंक्तियाँ इस ओर ध्यान आकृष्ट करती हैं देखिए- 'हो सकता है कि अच्छी न बने कविता / क्यूँकि आँखों में नींद और सिर में भरा है दर्द / पर स्थगित नहीं हो सकता लिखना / लिखा था कभी / कि जीवन की लय को पाना ही कविता है'

उसी प्रकार अंतर्द्वंद्व शीर्षक नामक कविता की कुछ पंक्तियाँ अपने में विशेष हैं। ये कविताएँ नहीं, पाठक से सीधे संवाद करती उनकी संवेदनाएँ हैं। देखिए – 'भयानक हो चुका है / सभ्यता का विकास / सर्वाधिक ख़तरनाक मोड़ पर है इन दिनों मनुष्यता / इन सबके बावजूद / जिये जा रहा हूँ मैं / बिना किसी प्रतिरोध के / सपने में इसी पर / होता हूँ शर्मिंदा'

ओह! कितना व्यथित है उनका मन मनुष्यता को लेकर। यह कविता उन्होंने पता नहीं कब

लिखी होगी। पर जो आज भी प्रासंगिक है। इस संग्रह में उनकी कविताओं के स्वर सामाजिक विषमताओं, विसंगतियों और वर्तमान राजनीति पर स्पष्ट रूप से पाठक को सुनाई पड़ते हैं।

उनकी चिंताएँ अपने चरम पर तो हैं ही, कटाक्ष भी अपने शिखर पर है। जिनमें संवेदनाओं व अनुभूतियों की मुखर प्रखर अनुगूँज पाठक को देर तक झकझोरती रहती है। उनका समाज के साथ-साथ, संबंधों में होती राजनीति को लेकर मानसिक उद्वेलन भी अपने उच्च स्तर पर दिखलाई पड़ता है। सभी अस्वीकार्य स्थितियों के लिए स्वयं को ही ज़िम्मेदार मानते हुए। वे बार-बार कविता रचते हैं। रचते चले जाते हैं।

जहर मोहरा नामक शीर्षक की इस कविता को पढ़ते यही आभास होता है- 'सूली पर तो मैं चढ़ा नहीं /फिर भी याद आते हैं ईसामसीह /जब तक हमले हुए दुश्मनों के /करता रहा मुक़ाबला /कैसे लड़ूँ, लेकिन अब /दोस्तों ने उठा लिए जब हथियार!'

रचाव की ज़मीन में कुछ भी बोते जब भी हाथ काँपेंगे। रचना कच्ची-कच्ची ही होगी। सभी की शुरूआत ऐसे ही होती है। सधते-सधते सधता है सब। धीरे-धीरे परिपक्व होते जाते हैं। ऐसा ही उनकी इक्का-दुक्का कविताओं को पढ़ते लगता है। अवश्य ही वे आरंभ में रची गई होंगी। पर भाव तब भी वही था जैसे आज। कहीं कोई कमी नहीं। सादगी से भरी उनकी रचनाएँ कोई काल्पनिक बिम्ब तैयार नहीं करतीं। शिष्ट भाषा और सही प्रवाह इनकी कविताओं की विशेषता है। आत्ममंथन से जन्मी उनकी कविताएँ पाठक को ठहरकर सोचने पर मजबूर करती हैं। जैसे ये विनाश के बाद नामक शीर्षक की कविता- 'समय, धीरे चलो / धीरे चलो समय /इतनी जल्दी भी क्या है! /तुम्हारी रफ्तार तो इतनी तेज़ है कि /हफ्तों लग जाते हैं कभी-कभी /तुम्हें पाने में भागते-भागते /कुछ नहीं रखा आगे /बल्कि अगर कहूँ कि /विनाश ही है वहाँ तो चौंक मत उठना तुम' उनकी लंबी कविता है। इसी के आगे के पैरा की दो लाइनें पाठक को सोचने पर विवश करती हैं-

'नहीं समय, /यह सर्वग्रासी विकास /दस-बीस या सौ दो सौ साल का नहीं /इसकी नींव तो बहुत पहले पड़ चुकी थी /तुम्हारी कोख में /(कौन जाने, तुम्हारा वह आदर्श वैदिक युग कभी था भी अथवा कल्पना ही था) इस कविता को पढ़कर मुझे कुछ कुछ ऐसी ही कवि पाश की एक कविता याद आ रही है- समय ओ भाई समय /कुछ तो कह दो / हम तुम्हारे संग हो क्या कुछ करें / हमारा समय है गुनाहों भरा /कैसे पार जाएँ हम इस भवजल से?

हालाँकि दोनों ही कविताओं में कवियों के अपने अलग-अलग प्रश्न हैं। पर हैं वही कुछ जलते हुए।

कवि हेमधर शर्मा जी की कविताएँ जहाँ पाठकों के अन्तर्मन को झकझोरती हैं वहीं उन्हें सचेत भी करती हैं जैसे – ये बहरूपिये कविता में दृष्टिगत होता है- 'रूप बदल आए हैं वे /पहले आते थे रात के अँधेरे में /और लूटपाट कर चले जाते थे /अब वे सेवक बनकर आए हैं /कई-कई दलों में आए हैं / जाओगे कहाँ तुम'

जटिल शब्द और गूढ अर्थ मेरी नज़र में कविता को आम पाठक से दूर कर देते हैं। वह इस संग्रह की कविताओं में नहीं है। अपनी सभी भावनाओं को सहजता से कविता में पिरोने का उपक्रम करते हैं हेमधर। उनकी हर कविता पाठकों से संवाद करती है। उनके व्यथित मन की व्यग्रता हो या प्रकृति के निरंतर होते जाते क्षरण को लेकर आक्रोश। हर पाठक को अपना लगता है। यही तो हर कविता की सार्थकता है कि वह पाठक से सीधे संवाद करे। इस पर हेमधर खरे उतरते हैं।

अगरचे उनकी हर कविता को लेकर ये नहीं कहा जा सकता। कहीं-कहीं उनकी चिंता, उनका भय, उनका क्रोध आवश्यकता से अधिक दिखलाई पड़ता है। जिससे कविता कहीं-कहीं उस भार को सँभाल नहीं पाती। फिर भी... फिर भी... कहते हैं यदि पूरे संग्रह में मात्र पाँच कविताएँ भी हृदय से वाह निकालने में सक्षम हों तब भी वह संग्रह संग्रहणीय बन जाता है। यहाँ तो बहुत सी कविताएँ पाठकों द्वारा सहेजी जा सकती हैं।

वे ठीक ही कविता की शक्ति को पहचानते हैं। मन तो करता है उनकी हर कविता पर अपनी प्रतिक्रिया दूँ। पर ये संभव नहीं। समय की अल्पता बाध्य करती है मन को सँभालने के लिए। उनका संघर्ष स्वयं से ही है। किसी और से नहीं। इसमें कोई संदेह नहीं, समकालीन काव्य-परिदृश्य में लिखने के प्रण में वे उन विरोधी शक्तियों के षड्यंत्रों को बेनकाब करते से प्रतीत होते हैं। जो दोहरे व्यक्तित्व को ओढ़े मानवता और प्रकृति के प्रति अपनी तटस्थ भावनाओं को रसों की चाशनी में लपेटकर कर प्रस्तुत करते हैं। और वाह-वाही लूटते हैं। इसी के साक्ष्य को यहाँ उनकी आम आदमी नाम की कविता की कुछ पंक्तियाँ दृष्टव्य हैं- 'आते ही ट्रेन / झपटता हूँ अंदर /खचाखच भरे डिब्बे में /कई गुना बढ़ जाता है /सीट मिल पाने का सुख /भटकते हैं बाल-बच्चेदार लोग /खुश हूँ कि अकेला हूँ /भटकना पड़ता वरना /मुझको भी ऐसे ही/ आता जब अगला स्टेशन / दरवाज़ा अंदर से बंद कर देता हूँ'

अंत में उन्हीं के शब्दों में रचना को रचते समय के समस्त दुनिया से विरक्त हुए भाव को इस तरह उकेरा है उन्होंने। मानों कोई वैराग्य उनके भीतर उतर कर ठहर जाता है। उसी भँवर से कहीं उपजता है अकेलेपन का भाव। मगर वह भाव दुनियादारी से छूटने का भाव है। अकेलेपन की पीड़ा का है। पर मेरी समझ से हताशा या निराशा का नहीं।

उनके संग्रह के पीछे लिखे बसंत त्रिपाठी जी के विचार भी कुछ-कुछ यही तो हैं- 'यह संग्रह एक ऐसे निम्न-मध्यमवर्गीय औसत भारतीय का अन्तर्मन है जो अपनी जिजीविषा, ईमानदारी। बेलाग पक्षधरता और बेबसी के साथ लगातार अकेला होता चला गया है- जितना ही होता है / संवेदनाओं का विस्तार / पड़ता जाता हूँ अकेला /छूटती जाती है दुनिया

अंत में इस संग्रह के विषय में समग्र रूप से यदि एक पंक्ति में कहें तो संवेदनाओं के अथाह सागर से निकले सीपी और उनसे निकलते मोती हैं इन कवि की कविताएँ। हेमधर जी को इस संग्रह के लिए बधाई।

000

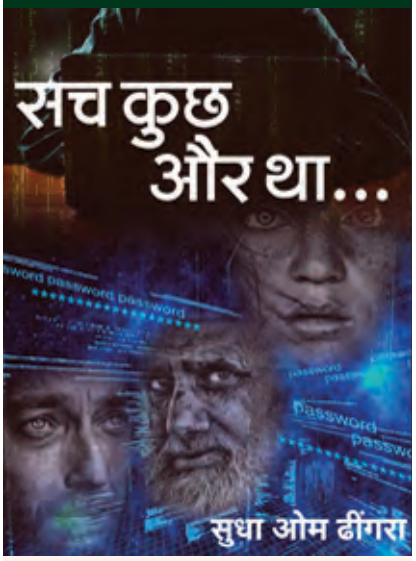

सच कुछ और था

(कहानी संग्रह)

समीक्षक : मधूलिका श्रीवास्तव

लेखक : सुधा ओम ढींगरा

प्रकाशक : शिवना प्रकाशन, सीहोर, मप्र

मधूलिका श्रीवास्तव
E-101/17, शिवाजी नगर,
भोपाल 462016
मोबाइल- 9425007686
ईमेल- shrivastavmadhulika@gmail.com

सुधा ओम ढींगरा का कहानी संग्रह "सच कुछ और था" पढ़ा। उनकी पहली कहानी 'अनुगूँज' अमेरिकन पृष्ठभूमि पर आधारित है। बरसों से विदेश में बसे भारतीय परिवार की सामंती फितरत का बहुत अच्छा चित्रण है। मनप्रीत इसी परिवार का हिस्सा बन कर आई है उसके माँ-बाप उसे विदेश में ब्याह कर अपना कॉलर ऊँचा कर प्रसन्न हैं पर बेटी इन वहशी, संस्कारहीन परिवार के बीच कितनी डरी-सहमी है यह जानना भी नहीं चाहते। मनप्रीत अपनी जिठानी की हत्या अपनी आँखों से देखती है और फिर उसकी हत्या को आत्महत्या साबित करने की कोशिश उसे बेहद चुभती है। वह अकेली गवाह है जिसका बयान नहीं हो पाता है। पति उस पर दबाव बनाता है और धमका कर उसे डराता है। वह यह भी जानती है कि यदि वह सच बोलती है, तो उसका ठिकाना छिन जाएगा। कहाँ जाएगी कैसे रहेगी। माँ-बाप का आसरा भी उसे कमज़ोर लगता है। अपने घोंसले की चिंता उसे स्वयं ही करनी है। उसका अंतर्द्वंद्व दिल को झकझोर देता है। कोर्ट रूम में वह डरी-सहमी चुप खड़ी है, उसे गुरमीत की लाश के साथ अपनी लाश भी नज़र आ रही है और अचानक वह सच उगल देती है। कहानी बहुत दमदार है एक अकेली कमज़ोर लड़की की मज़बूती को उजागर करती है।

'उसकी ख़ुशबू' एक व्यंग्यात्मक कहानी है और प्रेम में हारी हुई युवती के प्रतिशोध को उजागर करती है। सुमित भारतीय रंग में रचा बसा विदेश में नौकरी के लिए जाता है और विदेश पहुँच कर महसूस करता है कि यहाँ की संस्कृति का जो रूप भारत में अपनाया गया है वह बिल्कुल भिन्न है, तब यथार्थ और ओढ़े हुए यथार्थ के अंतर को समझने की कोशिश करता है। वह दोनों संस्कृतियों को लेकर भ्रमित है। यहाँ आकर विदेश का अच्छा स्वरूप उसके मन में अपनी जगह बनाने लगता है। फिर जूली के इत्र की ख़ुशबू और उसका गोरा रंग उसे आकर्षित करता है और वह उसका शिकार होने लगता है। फिर एक्सीडेंट के बाद पुलिस से जूली की असलियत पता चलती है। यह कहानी भारतीय पुरुषों के गोरे रंग और विदेशी लड़की पर आकर्षित हो जाने पर एक करारा व्यंग्य है, अच्छे संदेश की कहानी है।

'काश ऐसा होता' बुज़ुर्गों के अकेलेपन का एहसास कराती तथा बच्चों के उपेक्षित व्यवहार को दर्शाती मन को छू लेने वाली कहानी है। विदेश में व्यवस्थित होने के बाद पड़ोस में रहने वाली बुज़ुर्ग महिला मिसेज़ हाइडी के साथ पड़ोसी परिवारों का और बच्चों का समर्पित प्यार देखकर और उनके हालात जानकर पारुल के हृदय में अपनी माँ का अकेलापन टीसने लगता है कि कैसे वह भी दो बेटों के होते हुए भी अकेली है। फिर मिसेज़ हाइडी का मिस्टर जार्ज से विवाह कर लेना उसे मायूस कर देता है। वह सोचने लगती है कि काश माँ के साथ भी ऐसा हो सकता पर भारतीय संस्कृति और नारी होना रास्ते में खड़ा है। कहानी बिल्कुल ऐसी है जैसे यूँ ही बात करते-करते कोई बहुत मार्मिक बात कह जाए।

'पासवर्ड' स्वयं को बहुत अधिक चतुर समझने वाले और सामने वाले की भलमनसाहत को उसकी मूर्खता समझने वालों पर बढ़िया कटाक्ष है। इस कहानी के जरिए लेखिका ने एक समझदार पढ़ी-लिखी लड़की तन्वी का चित्रण किया है, जो अमेरिकन वीज़ा पाने के लिए अपने पति साकेत का इस्तेमाल करती है और सोचती है कि उसने एक सीधे-साधे भारतीय लड़के को बेवकूफ़ बना लिया है, पर वह या नहीं जानती कि अपनी बुद्धि बल पर जो व्यक्ति विदेश में अपनी इतनी अच्छी जगह बना सकता है वह क्या इतना नासमझ होगा। इस कहानी द्वारा लेखिका ने बहुत ही बढ़िया तरीके से समस्या का हल ढूँढ़ा है तथा यह साबित कर दिया है कि चालाकी बुद्धि के आगे नहीं टिक सकती। कहानी में गति भी है और रोचकता भी बहुत है।

'तलाश जारी है' अलग ढंग से लिखी गई है जो अच्छी लग रही है। कहानी में दो बुज़ुर्गों को अपने कारस्तानी पर खुश होते हुए और स्वयं की पीठ होते हुए बताया गया है कि विदेश में

जाकर किस तरह वे अपनी चालाकियों से कदम-कदम पर लोगों को बेवकूफ़ बना रहे हैं, पर वास्तव में वे अपने देश के नाम पर धब्बा ही लगा रहे हैं। कहानी की शैली अच्छी है उनका उद्देश्य भी ठीक है। कई भारतीय विदेशों में जाकर इस तरह अपनी और देश की नाक कटवाते हैं।

'और आँसू टपकते रहे' बहुत ही मार्मिक कहानी है। कोमल एक अधेड़ कमज़ोर चरित्र का व्यक्ति है जो नैतिकता की सभी हदें पार कर चुका है। वह पर स्त्री गमन का आदी है। ऐसे ही एक दिन वह एक लड़की के पास जाता है और जब वह अपनी आपबीती सुनाती है तो वह द्रवित तो हो जाता है, फिर भी उसकी मदद न कर उठकर चला आता है और जब उसकी मदद करने का अपने मन में तय करता है तब तक वह आत्महत्या कर चुकी होती है। लेखिका ने लिखा है कि वह कर्त्तव्य व भावनाओं के बीच झूलता रहा और आँसू टपकाता रह गया। बस इन्हीं बातों से उसके कमज़ोर चरित्र का विश्लेषण हो जाता है। लड़की की व्यथा कथा दिल को दहलाने वाली है, जिस परिस्थिति में वह फँसी थी शायद उसका हल वही था। अंत निराशाजनक है तथा दिल को कचोटता है।

'बेघर सच' स्त्री के अपने घर की चाह पर लिखी कहानी है। स्त्री ज़िंदगी भर अपना घर तलाशती है पर पहला घर बाप का, फिर पति का, भाई का और फिर बेटे का ही रहता है। बचपन से ही उसे तुम्हारा अपना घर ..तुम्हारा घर ..का सपना दिखाया जाता है और इसी आस में उसकी ज़िंदगी कट जाती है। रंजना की भी यही स्थिति है। देश हो या विदेश स्त्री का अपना घर कहीं नहीं होता। लेखिका ने इसी बात को परिलक्षित करते हुए उसका घर तो बना दिया पर असल में सिर्फ कुछ ही महिलाएँ अपना घर बना पाती है पर फिर अकेली भी पड़ जाती है। भाषा सरल व सहज है। एक स्त्री की तड़प का अच्छा चित्रांकन है पर विषय काफी आम सा है इसमें कुछ नया नहीं है, सिर्फ परिवेश बदल गया है।

'सच कुछ और था' रहस्य से भरपूर और कुछ उलझी हुई सी कहानी है। पात्रों का बार-बार अतीत में जाना फिर वर्तमान में आना कहानी में अवरोध पैदा करता है। महेंद्र के चरित्र का चित्रण अच्छा बन पड़ा है कि वह विदेश में बसने के बाद भी अपने मूल स्वभाव को नहीं बदल पाता, असल में वह कुंठित प्रवृत्ति का लगता है जो अपनी कुंठा दूसरों पर निकालता है। उसी तरह लिंडा का व्यक्तित्व समझौतावादी है और वह अपने को हिंदुस्तानी परिवेश में ढालती है। महेंद्र भी मन से तो यही चाहता है पर वह उसे बर्दाश्त नहीं करना चाहता, उसे लगता है इससे तो भारतीय नारी ही होती। कहानी के अंत में निखिल व रिया का प्रलाप कहानी को मज़बूत बताता है।

'विष-बीज' एक बलात्कारी वहशी का अच्छा चित्रण है यह आत्मकथ्य है, कहानी का कथ्य काफी मज़बूत है तथा उसमें सहज रूप से कहानी का उद्देश्य स्पष्ट होता है तथा उसके कारण को भी सहज भाषा में आत्म चिंतन करते हुए बताया गया है कि किसी अपराधी के बचपन का भी विश्लेषण करना चाहिए कि आख़िर में वह अपराधी क्यों बना। पर यहाँ पात्र जानता है कि वह ग़लत कर रहा है फिर भी वह अपने साथ हुए अत्याचार का बदला मासूम लड़कियों से ही लेता है। वह अपने पिता से भी तो नाराज़ था। सबसे पहला हमला भी उस पर पुरुषों द्वारा ही किया गया था। फिर बदला मासूम स्त्री से क्यों ? यह एक अनुत्तरित प्रश्न है। कहानी के अंत में वह अपनी माँ को पहचान लेता है पर स्वीकारता नहीं क्योंकि वह कहीं ना कहीं शर्मिंदा भी है और स्वयं से नाराज़ भी।

'विकल्प' एक असमंजस भरी नैतिकता और अनैतिकता के बीच झूलती कहानी है। सम्पदा अपनी जेठानी व देवर को ग़लत करते हुए देख लेती है और एक अंतर्द्वंद्व में उलझ जाती है। यहाँ लेखिका ने बड़ी सहजता से सम्पदा के व्यक्तित्व का रेखांकन किया है तथा उसके भीतर के संस्कारों का सहज रूप से आपके सामने खड़ा किया है। उसकी जेठानी का कबूलनामा अनैतिकता का चरम है तथा महाभारत का उदाहरण देना आज के विज्ञान के युग में असंगत है। मीरा का तर्क नहीं कुतर्क है। अनैतिकता को मजबूरी का बाना पहनाना और फिर अंत में स्वयं को सही साबित करते हुए सम्पदा के भविष्य की भयावहता का उल्लेख झकझोर देता है। कहानी में आज के विज्ञान की तकनीक का उल्लेख करते हुए लेखिका ने बहुत से विकल्प दिए हैं, जो कि आधुनिक समाज का अच्छा चित्रण करते हैं।

'क्यों ब्याही परदेस' एक सीधी सी कहानी है एक कम उम्र की कमज़ोर लड़की जो अचानक विदेश में ब्याही जाती है जिसने माँ-बाप के घर पानी का गिलास भी न उठाया हो वह विदेश में पहुँचकर घर के कामों में उलझ जाती है। गुड़िया ने बड़ी सरलता से देश और विदेश के अंतर का आकलन किया है। भारत के रहन-सहन व पारिवारिक मूल्यों का चित्रण बड़े भोलेपन से किया है तथा कहीं न कहीं यह भी स्पष्ट किया है कि विदेश का आकर्षण तो बहुत है पर हक़ीक़त कुछ और ही है। विदेश का अकेलापन आस-पड़ोस का न होना भारतीय संस्कृति की पहचान को उजागर करता है। फिर उसका यह कहना दिल को छू जाता है कि अपने देश में तो हम अपने दादा परदादा के नाम से जाने जाते हैं पर विदेश में काम से। यहाँ जात-पात भाषा अस्मिता की कोई ज़रूरत नहीं है सिर्फ भारतीय होना ही काफी है। लेखिका ने देश और विदेश के अंतर को एक भोली-भाली अकेली मासूम लड़की के द्वारा बड़ी सहजता से करवाया है, जो अचानक अनजाने देश में, एक अजनबी जो कि उसका पति बन जाता है, के साथ जीवन की अनजान राहों पर चल पड़ती है। कहानी अच्छी व हृदय स्पर्शी है।

अंत में मैं यह कहना चाहूँगी कि सुधा जी ने अलग-अलग विषयों पर अपनी कलम चलाई है तथा चरित्रों का बहुत अच्छा चित्रण किया है। उनका हर पात्र ऐसा लगता है जैसे हमारे बीच का ही कोई हो। हर कहानी का कथानक उद्देश्यपूर्ण है। वह संदेश परक है। उन्होंने अमेरिका की आधुनिकता को अपने पर हावी हुए बिना भारतीय नारी और उससे जुड़े मुद्दों को बहुत बेहतर तरीक़े से अपनी कहानियों में उकेरा है। वे बधाई की पात्र हैं।

000

पुस्तक समीक्षा

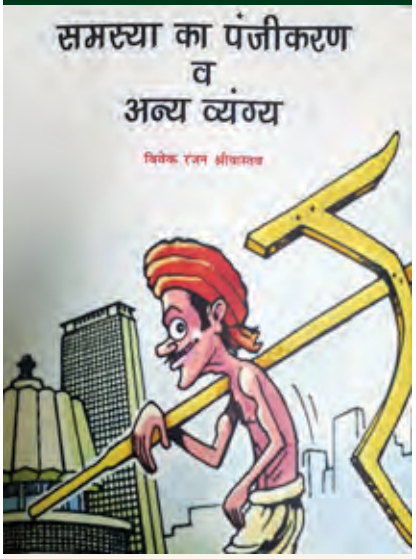

समस्या का पंजीकरण व अन्य व्यंग्य

(व्यंग्य संग्रह)

समीक्षक : कैलाश मंडलेकर

लेखक : विवेक रंजन श्रीवास्तव

प्रकाशक : इण्डिया नेट बुक्स, नई दिल्ली

कैलाश मंडलेकर
15-16, कृष्णपुरम कॉलोनी, जेल रोड,
माता चौक खंडवा मप्र 450001
मोबाइल– 9425085085,
9425086855
ईमेल– kailash.mandlekar@gmail.com

"समस्या का पंजीकरण व अन्य व्यंग्य" विवेक रंजन श्रीवास्तव का नया व्यंग्य संग्रह है। इस संग्रह में कुल जमा तैतींस व्यंग्य आलेख हैं जो उनकी व्यंग्यकारिता, भाषा और शिल्प का बेहतर मुजाहिरा करते हैं। विवेक जी सहज शैली के व्यंग्यकार हैं लेकिन इस सहजता को सादगी न माना जाए। यह सहजता ठीक वैसी ही है जैसे भोजन करने वाले को यह पता हो कि उसे जो दाल परोसी गई है उसमें कुछ न कुछ काला ज़रूर है, लेकिन फिर भी वह उसे ग्रहण कर रहा है तो सिर्फ इसलिए कि उसके आचरण और संस्कारों में एक कुदरती सहजता है। वरना जन्नत की हक़ीक़त वह अच्छी तरह जानता है। भाषा और विचार की इस शालीनता को विवेक रंजन बहुत कुशलता से साधते हैं। दरअसल वे इस बात की परवाह नहीं करते कि उनका व्यंग्य कितना तीखा और धारदार है, बल्कि उन्हें इस बात की फ़िक्र है कि जो दिखाई दे रहा है उसके नेपथ्य में क्या घटित हो रहा है। व्यंग्यकार की कोशिश है कि पाठक की नज़र नैपथ्य के सच तक पहुँचे और इस सच को वह उसी स्पष्टता के साथ देखे जिस साफ़गोई के साथ रचनाकार देख रहा है।

संग्रह के फ्लैप पर तथा भीतर बतौर भूमिका के डॉ. ज्ञान चतुर्वेदी, प्रेम जनमेजय, सूर्यबाला, आलोक पुराणिक, बी एल आच्छा तथा गिरीश पंकज जैसे वरिष्ठ व्यंग्यकारों की सम्मतियाँ भी शामिल है जो रचनाकार के व्यंग्य बोध का बारीकी से तथा विश्लेषण परक ढंग से खुलासा करती हैं। विवेक रंजन श्रीवास्तव का मानना है कि इस दौर में व्यंग्य तो खूब लिखा जा रहा है पर तकलीफ यह है कि वह उस तीव्रता के साथ पहुँच नहीं रहा है। कतिपय तकनीकी बौद्धिकता के चलते पाठक उस तंज को भी हँसी में उड़ा देना चाहता है जिसके निहितार्थ बहुत गहरे हैं। फिर भी रचनाकार यदि ज़िम्मेदारी और दायित्वबोध के साथ कलम उठाए हुए है तो यह उसकी रचनात्मक प्रतिबद्धता है, जो देर सबेर अवश्य फलीभूत होगी। उल्लेखनीय है कि इस संग्रह की रचनाओं में हम रचनाकार के इस वैचारिक उपक्रम को सार्थक होते देख सकते हैं।

विवेक रंजन की इस विचार निष्ठा की तरफ ज्ञान जी ने भी इशारा किया है। वे लिखते हैं कि "मुझे विवेक रंजन का विचार पक्ष बहुत अच्छा लगता है। वे बाकायदा एक विचार के साथ रंजना शुरू करते हैं और उस विचार को रचना के साथ यूँ गूथ देते हैं कि पाठक का ध्यान लगातार उस मूल विचार पर बना रहे। यह गुण उनकी अधिकांश रचनाओं की जान है।"

समस्या का पंजीकरण व अन्य व्यंग्य नामक इस संग्रह में आत्यन्तिक रूप से उन रचनाओं को शामिल किया गया है जो कोरोना काल में लिखी गई हैं। पहली ही रचना "मास्क के घूँघट और हेंड वाश की मेहंदी के साथ मेड की वापसी" में उस सामाजिक प्रवृत्ति पर व्यंग्य है जिसके चलते हम छोटी और घरेलू दैनंदिन के लिए भी परावलंबन से ग्रसित हैं। लॉक डाउन में घरेलू काम वाली बाई की अनुपस्थिति हमें विह्वल कर देती है फिर उसकी वापसी से हम प्रफुल्लित हो जाते हैं। व्यंग्य इस बात पर है कि हम सुखों और सुविधाओं के लिए किस कदर दूसरों पर निर्भर होते जा रहे हैं। जबकि सुख या आनन्द का स्रोत हमारे भीतर ही है। "शर्म तुम जहाँ कहीं भी हो लौट आओ" में भी एक तरह से खुशी की ही तलाश है। दरअसल इन दिनों हमारा समूचा राजनैतिक और सामाजिक परिदृश्य एक ऐसी बेशर्मी का शिकार है जो या तो बाज़ार से उपजी है या फिर हमारे लोभ लाभ के शर्मनाक गठजोड़ से। शर्म अथवा मर्यादा, जो एक तरह का मूल्य भी हुआ करती है वह व्यक्ति से लेकर समाज तक में नदारद है। ऐसे में उसकी गुमशुदगी की रिपोर्ट ही की जा सकती है। "माँगे सबकी खैर" में कबीर की प्रासंगिकता की फ़िक्र है। कबीर की कविता जो सूक्तियों की तरह हमारे जीवन में शामिल है और जिसे हम बार-बार स्मरण करते हैं, लेकिन वह आचरण में कहीं भी दिखाई नहीं देती। विवेक रंजन का ही एक वाक्य है "हम फ़कीर कबीर पर डॉक्टरेट कर के अमीर तो बनना चाहते हैं किन्तु महात्मा कबीर के सिद्धांतों से नहीं मिलना चाहते"। तात्पर्य यह कि सैद्धांतिक रूप से कबीर भले ही हमारे आदर्श हों पर व्यावहारिक जीवन में हम उनसे सुविधाजनक दूरी बनाए हुए हैं। यह आचरणगत दोमुहा पन ही आज के दौर का यथार्थ है। "समस्या का पंजीकरण" नामक रचना में दफ्तरों की कार्य प्रणाली के अंतर्विरोधों पर कटाक्ष है। हमने व्यवस्था को इतना जटिल बना दिया है कि एक आदमी अपनी समस्या को सही जगह पर दर्ज भी नहीं करा सकता, समाधान तो बहुत दूर की बात है। "किंकर्तव्य विमूढ़" वर्तमान राजनीतक परिदृश्य और राजनीति में मूल्यों की गिरावट को लेकर लिखी गई फैंटेसी है। हम जिस लोकतंत्र को संसार का सबसे बड़ा लोकतंत्र कहते हैं उसका यथार्थ किस कदर कटु और छद्म्पूर्ण होते जा रहा है इस पर विवेक जी ने गहरे आघात किये हैं। "ज़रूरी है आटा और डाटा" में लॉक डाउन के दौरान आम जन जीवन की दैनंदिन के ब्योरे हैं। यहाँ फुर्सत के क्षणों में लोगों ने किस तरह खुद को सोशल मीडीया में उलझाए रखा इस पर दिलचस्प टिप्पणी है। "इदं पादुका कथा" में जूतों के उपयोगिता वाद को लेकर बेहतर व्यंग्य किया गया है। जूते जब पाँवों की अपेक्षा हाथ से चलने लगें तो जिस तरह की जूतम पैज़ार होती है वह जूतों की उपयोगिता को बढ़ा देती है। इन दिनों जूते भी एक तरह का स्टेटस सिम्बल हो चुके हैं। अमीरों और ग़रीबों के जूतों में फ़र्क होता है। यहाँ भी वर्ग चरित्र है। संग्रह में शामिल रमेश बाबू की बैंकाक यात्रा, किताबों के मेले, रॉकेट युग की राजनीति, ख़ास बनने की पहचान थी गाड़ी की लाल बत्ती आदि व्यंग्य रचनाएँ नौकरशाही, साहित्य, व्यक्तिगत आचरण, सामाजिक दुराचार और आधुनिकतावाद पर पर गहराई से व्यंग्य करती हैं।

दरअसल विवेक रंजन श्रीवास्तव अपने अनुभवों को जिस कलात्मकता और भाषागत व्यंजना के साथ व्यंग्य में तब्दील करते हैं वह उनके व्यंग्य को न केवल पठनीय बनता है वरन् स्थितियों के तल में व्याप्त विद्रूप को भी उजागर करता है। उनकी इस कृति का अवश्य स्वागत होना चाहिए।

000

नई पुस्तक

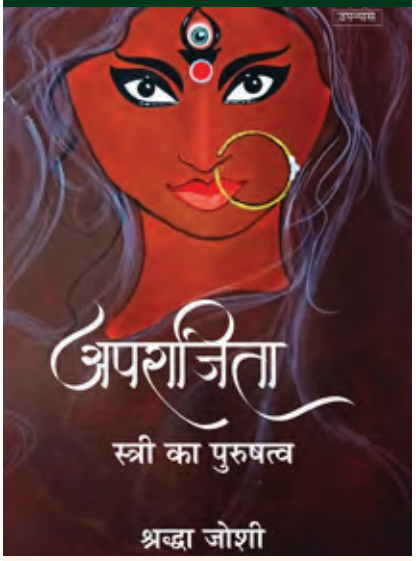

अपराजिता

(उपन्यास)

लेखक : श्रद्धा जोशी

प्रकाशक : शिवना प्रकाशन

यह कहानी कुछ प्रश्नों के रूप में एक ऐसी औरत को हमारे सम्मुख लाती है, जो समाज की उन अन्य औरतों के लिए एक रोशनी की तरह है, जिन्होंने किसी न किसी रूप में प्रताड़ना सही है लेकिन यह कहानी मात्र औरत तक ही सीमित नहीं है, बल्कि द्विपक्षीय पुरुष वर्ग को भी हमारे सामने लाती है, जिसमें एक पक्ष औरत को मान, सम्मान, प्यार का बराबर भागीदार मानता है, वहीं दूसरा पक्ष उस पुरुष को सामने लाता है, जो बाहरी औरतों के सामने नारीवाद का समर्थन देते हुए उनके साथ समय व्यतीत करना तो पसंद करते हैं, लेकिन खुद घर की औरतों के सक्षम होने के बाद भी उन्हें सौ परदों में रखते हैं। समाज के ऐसे ही अलग-अलग रूपों को सामने लाती, यह कहानी वास्तव में समाज के दोहरे चरित्र को अलग-अलग पात्रों के माध्यम से बतलाती है और यथार्थ में उस समाज पर एक कटाक्ष है जहाँ औरत की पूजा मूर्ति के रूप में तो होती है, पर आचार-व्यवहार में औरत की वास्तविक स्थिति कुछ और ही होती है।

000

प्रेम में पड़े रहना

(कविता संग्रह)

समीक्षक : डॉ. नीलोत्पल रमेश

लेखक : रंजीता सिंह फलक

प्रकाशक : संभावना प्रकाशन, हापुड़

डॉ. नीलोत्पल रमेश
पुराना शिव मंदिर, बुध बाज़ार
गिद्दी –ए, जिला – हज़ारीबाग
झारखंड – 829108
मोबाइल– 09931117537,
08709791120
ईमेल– neelotpalramesh@gmail.com

रंजीता सिंह फलक का पहला कविता-संग्रह है 'प्रेम में पड़े रहना', जो हाल ही में प्रकाशित हुआ है। इसमें इनकी चौवन कविताएँ संकलित हैं, जो राष्ट्रीय स्तर की विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित होकर प्रशंसित हो चुकी हैं। ये कविताएँ कवयित्री के मन की पीड़ा, बेचैनी, तड़प एवं एहसास को अभिव्यक्त करने में पूरी तरह से सफल हुई हैं।

कवयित्री प्रेम में पड़े रहकर बहुत सारी अनकही बातें भी कह जाती हैं, जो सामान्य स्थिति में कह पाना संभव नहीं होता। 'प्रेम' एक ऐसा शब्द है जिसकी व्यापकता अनंत है। इस शब्द में ही समस्त संसार समाहित है। यह प्रेम ही है, जो कवयित्री को मुश्किल दिनों में भी सहारा देने को तैयार मिलता है और आवश्यकता पड़ने पर संबल भी प्रदान करता है। कवयित्री रंजीता सिंह फलक ने लिखा है कि "जीवन की तमाम विसंगतियों के बीच प्रेम ही वह एक मात्र चीज़ रही, जिससे कभी मेरा मोहभंग नहीं हुआ, यहाँ तक कि प्रेम में टूटने के बाद भी प्रेम के प्रति मेरी आस्था और प्रेम में पड़े रहने की ज़िद ने मुझे इंसानियत के करीब रखा। मेरी पहली कविता 'किसी भी विमर्श से ज़्यादा ज़रूरी है हमारा प्रेम में पड़े रहना' शायद इसी भाव की आवृत्ति है, और पुस्तक का शीर्षक भी 'प्रेम में पड़े रहना'।"

प्रसिद्ध कवि दिविक रमेश ने रंजीता सिंह फलक की कविताओं के बारे में लिखा है कि "इस संग्रह की अधिकांश कविताएँ प्रेम पगी हैं। प्रेम का विश्वास भी है और प्रेम के विश्वास के विचलन के प्रति उलाहना भी। साक्षात् प्रेम भी है और स्वप्न तथा स्मृति में प्रेम भी है।"

लीलाधर जगूड़ी ने इस संग्रह की कविताओं के बारे में लिखा है कि "इस संग्रह की कविताओं में ज़िंदगी के कई पहलू करवटे बदलते नज़र आते हैं लेकिन एक बात जो न करवटें बदलती है, न पाला, वह इनकी मिली- जुली ज़ुबान में अपने मन की बात कह जाने की साफगोई।" 'प्रेम से ही उपजते हैं दुनिया के विमर्श' कविता के माध्यम से कवयित्री यह कहना चाहती हैं कि दुनिया के सारे विमर्श प्रेम से ही उपजते हैं। यही कारण है कि वह दुनिया को बचाए रखने के लिए प्रेम में पड़े रहना चाहती हैं। वह अगर कुछ लिखना भी चाहती हैं तो सिर्फ प्रेम ही,वह भी प्रेम में पड़े रहकर। वह आगे लिखती हैं - "एक खूबसूरत दुनिया को / बचाए रखने के लिए / बहुत ज़रूरी है / हमारा / प्रेम में पड़े रहना।"'

'बिसराई गई बहनें और भुलाई गई बेटियाँ' कविता के माध्यम से कवयित्री ने लोक संस्कृति को सँजोये जाने की वकालत की है। बहनें और बेटियाँ किसी-न-किसी रूप में अपने मायके को

भूल नहीं पाती हैं। पर्व-त्योहार हो या अन्य उत्सव, वह अपने को मायके में ही खोये रखना चाहती हैं। मायके से कुछ संदेश प्राप्त नहीं होने की स्थिति में भी, वह अपनी सखी-सहेली से मायके का हालचाल जान लेती हैं। घर से बाहर जब भी वे निकलती हैं तो उनकी नज़रें मायके के किसी व्यक्ति को ही ढूँढ़ती रहती हैं, ताकि साक्षात कुछ बात करके जान सकें - मायके का समाचार। ये बहनें और बेटियाँ अपने बच्चों को खूब सुनाना चाहती हैं - नाना-नानी, मामा- मौसी की कहानियाँ, लेकिन पुन: सँभल कर परियों और दैत्यों की कहानियाँ सुनाने लगती हैं, क्योंकि अब तक वह मायके के मायाजाल से मुक्त हो चुकी होती हैं।

कवयित्री ने लिखा है - "बिसराई गई बहनें / और भुलाई गई बेटियाँ / अपने बच्चों को / खूब सुनाना चाहती हैं / नाना-नानी, मामा-मौसी के क़िस्से / पर / फिर सँभलकर बदल देती हैं / बात और सुनाने लगती हैं / परियों और दैत्यों की / कहानियाँ।"

'होना अपने साथ' कविता के माध्यम से कवयित्री ने स्त्री-मन की पीड़ा को अभिव्यक्त किया है। स्त्रियों का मन अक्सर भटकते रहता है, इस उम्मीद में कि किसी न किसी रूप में सपने सच होंगे। इस सपने को सच होने की उम्मीद उसमें अंतिम समय तक बची रहती है। कवयित्री ने लिखा है -

"सच ही है / उम्मीदें बाँस नहीं होती / वे जनमती रहती हैं /सपने /उम्मीद ख़त्म होने की /आख़िरी मियाद तक /ठीक वैसे, /जिस तरह जनती है /कोई स्त्री /अपना पहला बच्चा /रजोवृति के अंतिम सोपान पर।"

'छोड़ी गई औरतें और भुलाई गई प्रेमकाएँ' कविता के माध्यम से कवयित्री ने औरतों और प्रेमकाओं के छोड़े जाने के बाद के संघर्ष को अभिव्यक्त करने में सफलता पायी है। वह स्पष्ट कर देना चाहती हैं कि ये औरतें और प्रेमिकाएँ ज़्यादा भाग्यशाली होती हैं क्योंकि इस समय उन्हें स्वयं को परखने का मौका मिल जाता है। वह अपने अंदर की वेदना को परे ढकेल देती हैं और अपने को नए सिरे से स्थापित करने का प्रयत्न करने लगती हैं जिसमें उन्हें सफलता भी मिल जाती है। कवयित्री ने लिखा है कि -

"छोड़ जाने और भुलाए जाने /के क्रम में ही उनकी /खुद से होती है मुलाकात /मिलती हैं खुद से /पहली बार सदेह /टटोलती हैं /अपना ही अस्तित्व /चौंकती हैं खुद से मिलकर /ठिठकती हैं /सत्य और भ्रम के बीच /झिझकती हैं स्वयं से /मिलने में"

'ऐसा एक विरह, एक जुदाई' कविता के माध्यम से कवयित्री ने प्रेम को जानने- समझने के लिए विरह या जुदाई का होना ज़रूरी है- इस भाव को अभिव्यक्त करने की कोशिश की है। कवयित्री का मानना है कि प्रेम में पड़कर ही प्रेम को ठीक-ठीक जाना- समझा जा सकता है। आज के युग में दूर बैठकर भी हम अपने प्रिय से आमने-सामने बात कर सकते/हैं। लेकिन पहले के प्रेमी पत्रों के द्वारा ही प्रेम की अनुभूति कर लेते थे। कवयित्री ने लिखा है-

"कभी-कभी प्रेम को ठीक-ठाक / जानने परखने के लिए / बहुत ज़रूरी है / ऐसा एक विरह / ऐसी एक जुदाई।"

'दुख में हँसती हुई औरत' कविता के माध्यम से कवयित्री ने यह कहने की कोशिश की है कि दुख में हँसती हुई औरत विकराल रूप धारण कर लेती है। वह इस समय किसी को भी भस्म करने की शक्ति रखती है। ये हँसी विध्वंस को धारण कर लेती है और एक खुशहाल जीवन का निर्माण करती है। कवयित्री ने लिखा है -

"दुख में हँसती हुई औरत / काली-सी विहँसती है /और /धर देती है पाँव / रिवाजों की छाती पर।"

'विमर्श और प्रेम' कविता के माध्यम से कवयित्री ने प्रेम की महत्ता को प्रतिपादित किया है। वह कहती हैं कि किसी भी विमर्श से ज़्यादा ज़रूरी है प्रेम में पड़े होना, क्योंकि प्रेम ही मनुष्य को निराशा और पतन के समय में बचाए रखता है। कवयित्री ने इसे इस प्रकार लिखा है -

"किसी भी / विमर्श से ज़्यादा ज़रूरी है / प्रेम में होना / क्योंकि प्रेम ही / बचाए रखता है / इंसान को निराशा / और पतन के अँधेरे / और विनाश के क्षणों में।"

'सबसे संगीन सियासत' कविता के माध्यम से कवयित्री ने साहित्य की राजनीति का पर्दाफाश किया है। साहित्य में साहित्यकारों के कई गुट हैं, दल हैं और विचारधाराएँ हैं। सभी किसी-न-किसी से जुड़े हुए हैं। इस दौर में भी कवयित्री साहित्य रचते हुए सिर्फ मनुष्य बने रहना चाहती है। वह यह नहीं चाहती है कि लोग मुझे किसी पंथ से जोड़कर देखें। वह लिखती हैं -

'मेरे लिखने से ज़्यादा / ज़रूरी था खुद को / वाम या दक्षिण का /साबित करना /और तब मैंने जाना कि / साहित्य की सत्ता सबसे /ज़्यादा खतरनाक है /और साहित्य की सियासत /सबसे संगीन।"

'सुनो प्रिय' सीरीज में कवयित्री की चार कविताएँ हैं। इन कविताओं के माध्यम से कवयित्री ने अपने प्रिय के प्रेम को विभिन्न रूपों में सँजोए रखना चाहती है। वह अपने प्रिय के साथ बीते सुखद क्षणों को हमेशा-हमेशा के लिए बचाए रखना चाहती है। वह अपने प्रिय से कहती है कि प्रेम में पड़ी औरत नदी से झील में तब्दील हो जाना चाहती है और अपने प्रिय के सीने पर सदियों तक सुनना चाहती है अपना ही देह-गीत। कवयित्री ने इस सीरीज की कविता-२ में लिखा है -

"सुनो प्रिय / प्रेम में पड़ी औरत /हो जाना चाहती है / नदी से झील /और टिकी रहना चाहती है /प्रेमी के सीने पर /सदियों सदियों /मुँह छिपाए /सुनना चाहती है / अपना ही देह-गीत"

"प्रेम में पड़े रहना' कविता-संग्रह के माध्यम से कवयित्री रंजीता सिंह फलक ने प्रेम को कई कोणों से देखने-परखने की कोशिश की है। ये कविताएँ पाठकों को बाँधे रहने में पूरी तरह समर्थ हैं। एक बार संग्रह की कविताएँ पढ़ना शुरू कर देने के बाद बिना पूरा संग्रह पढ़े चैन नहीं मिलता है। भाषा की सहजता और गँवई पृष्ठभूमि कविताओं को पठनीय बनाने में सहयोग करते हैं। पुस्तक की छपाई साफ-सुथरी है, पर प्रूफ की ग़लतियाँ कहीं-कहीं खटकती हैं।

000

पुस्तक समीक्षा

कविता का जनपक्ष

(आलोचना)

समीक्षक : रमेश खत्री

लेखक : शैलेंद्र चौहान

प्रकाशक : मोनिका प्रकाशन, जयपुर

रमेश खत्री
53/17,प्रतापनगर ,
जयपुर 302033, राजस्थान
मोबाइल- 9414373188
ईमेल- sahityadarshan@gmail.com

"कविता का जनपक्ष" शैलेंद्र चौहान की आलोचना की सद्य प्रकाशित किताब है जिसे मोनिका प्रकाशन जयपुर ने प्रकाशित किया है। इसमें कविता के जनपक्षीय तत्वों को बड़ी ही बारीकी से पकड़ने का प्रयास किया है। यह अलग बात है कि यह उनकी पहली ही आलोचना कृति है, इससे पहले उनकी कविताओं और गद्य की पुस्तकें प्रकाशित हुई है।

इस किताब में कुल जमा उन्नीस आलेख हैं जो समय-समय पर पत्र पत्रिकाओं में प्रकाशित होते रहे हैं। शैलेंद्र जी ने स्वयं किताब के प्राक्कथन में कहा है, "कविता का जनपक्ष" समकालीन कविता की जनपक्षधर प्रवृत्तियों को लेकर लिखे गए कुछ चुनिंदा निबंधों, लेखों और समीक्षात्मक टिप्पणियों का संग्रहण है....आचार्य रामचंद्र शुक्ल की व्यावहारिक आलोचना पद्धति के बरअक्स नंद दुलारे वाजपेयी, हजारी प्रसाद द्विवेदी, नगेन्द्र, परशुराम चतुर्वेदी आदि ने आलोचना को अकादमिक रूप देना आरंभ कर दिया था। ...इनके समानान्तर प्रगतिवादी आलोचना में शिवदान सिंह चौहान, प्रकाश चंद गुप्त, रामविलास शर्मा, रांगेय राघव और नामवर सिंह ने मार्क्सवादी सिद्धान्तों के परिप्रेक्ष्य में यथार्थवादी जनपक्षधर आलोचना को आगे बढ़ाया तो वहीं मुक्तिबोध ने साहित्य के संतरण को गहराई से देखा, परखा। रामविलास शर्मा ने आचार्य शुक्ल की परंपरा को आगे बढ़ाते हुए आलोचना को गझिन, वैचारिक, रुढ़िवादी कठमुल्लेपन से बाहर निकाला और हिन्दी साहित्य की पुर्नव्याख्या की। शैलेंद्र जी आगे कहते हैं, "आलोचना के इसी दौर में अनेक तरह के आग्रह, दुराग्रह, सम्मान-पुरस्कार, पद-प्रतिष्ठा जैसे व्यक्तिवादी उद्देश्य चरम पर पहुँचने लगते हैं। नई रचनाशीलता इस लोभ-लाभ की वृत्ति से प्रभावित होने लगती है। अवसरवाद पनपने लगता है। यहाँ एक नई रूढ़ी बनने लगती है, गढ़ और मठ बनने लगते हैं। मठाधीशों की अपनी सत्ता स्थापित होती है, जो राजनीतिक सत्ता के साथ वर्ग सहयोगवादी रुख अख्तियार करती है और अपने जनपक्षधर सामाजिक संस्सकारों से विरत होती नज़र आती है।"

इस पुस्तक में जो उन्नीस आलेख संग्रहित हैं उनमें कविता के जपपक्षधरता की बारीक पड़ताल करने का प्रयास किया है लेखक ने। नित्यानंद तिवारी की आलोचना दृष्टि को स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी आलोचना : एक अवलोकन में पकड़ते हुए कहते हैं, "आधुनिकता और आधुनिकता बोध के लिए संघर्ष करने वाले साहित्य आंदोलनों में शामिल होकर प्रो. तिवारी ने आधुनिक के वैचारिक एवं सैद्धाँतिक सूत्रों को खोलने में विशेष भूमिका निभाई है और जनपक्षधर समालोचना की नई राह प्रशस्त की।"

डॉ. राम विलास शर्मा का कहना है, "मूर्ति विधान वही सार्थक है जो भावों से अनुप्राणित हो, जिसमें सहज इन्द्रिय बोध का निखार हो। दूर की कौड़ी लाना काव्य रचना नहीं, बौनों का बौद्धिक व्यायाम है।" कविता के जनपक्षीय तत्वों की विवेचना करते हुए लेखक कहता है, "कविता में व्याप्त 'रूप' का मार्क्सवादी सौन्दर्य शास्त्रीय दृष्टि से भी हमें आकलन करना होगा कि दरअसल यह रूप का जंजाल क्या है और क्यों है ? लेकिन उससे पहले जनवादी कविता के विकास की बात पूरी करना आवश्यक है।" लेखक का यह भी मानना है कि "डॉ. राम विलास शर्मा का ज़िक्र इसलिए भी आवश्यक है कि 'निराला' और बाद में 'केदारनाथ अग्रवाल' की कविताओं का जो सम्यक विवेचन, व्याख्या उन्होंने की उसी के बाद जनवादी कविता के आलोचनात्मक औज़ार भी विकसित हुए। यद्यपि स्वयं रामविलास जी के कुछ पूर्वग्रह,

अंतर्विरोध और मान्यताएँ भी आरंभ में बहुत भारी रहे, पर इन सबके बावजूद उन्होंने आलोचना के क्षेत्र में मील के पत्थर की भूमिका निभाई।''

रजनी पामदत्त की पुस्तक 'इंडिया टू डे' में कहा गया है कि 'भारत के बड़े शहरों के मज़दूरों के बीच साम्यवादी विचारधारा इतनी तेज़ी से जड़ें जमा रही है कि सरकार को उससे बड़ी चिंता उत्पन्न हो गई है। इस प्रभाव को इस कदर बढ़ते हुए देखकर ब्रिटिश नौकरशाही इतनी अधिक चिंतित थी कि तत्कालीन वाइसरॉय लार्ड इर्विन ने लेजिस्लेटिव असेम्बली के अभिभाषण तक में इसका उल्लेख डाला कि 'हिन्द में साम्यवादी विचारों का बढ़ता हुआ प्रभाव चिंताजनक है। सरकार इसके विरुद्ध कार्यवाही करेगी।' 'सत्य का क्या रंग पूछो एक संग' में चौहान विरेचित करते हैं कि 'भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस का चरित्र दूसरे महायुद्ध के बाद न केवल बुरी तरह बदल गया था बल्कि १९३५ में अंग्रेज़ी पार्लियामेंट द्वारा भारत को स्वायत्तशासन(होम रूल) सौंपने के बाद, जब कांग्रेसी सरकारें बनीं तभी से उन्हें साम्राज्यवादी हितों की ट्रेनिंग दी जा रही थी जो १९४६-४७ की अंतरिम सरकार बनने तक पूरी तरह पुख्ता हो चुकी थी। उस दौरान भारत का तथा कथित बुद्धिजीवी वर्ग कांग्रेसी अंग्रेज़ी मिली भगत का पैरोकार और समर्थक बन चुका था।'

दरअस्ल, शैलेंद्र चौहान इन लेखों में वह तत्व तलाशते हुए नज़र आते हैं जिससे जनपक्षधरता की पुष्टि होती है, 'यहीं से शुरू होती है यथार्थ की वह भूमि जहाँ मूलाधार का सम्यक विश्लेषण ज्ञाम-संवेदन और संवेदन ज्ञान की कसौटी पर होता है। न रूढ़ि न अनर्गल अवांछित विद्रोह बस उर्ध्वगामी प्रगति। मात्र वैचारिक और बौद्धिक प्रगति नहीं, जीवन की बहुआयामी प्रगति। यही जनवादी कविता का मूलाधार है।'

लेखक इन लेखों में प्रगतिशील आंदोलन की भी पड़ताल करते हुए भी नज़र आते हैं, ''प्रगतिशील साहित्य अंग्रेज़ी के प्राग्रेसिव लिटरेचर का हिन्दी अनुवाद है। अंग्रेज़ी साहित्य में इस शब्द का प्रचार १९३५ ई. के आसपास विशेष रूप से हुआ जब ई.एम. फार्स्टर के सभापतित्व में पेरिस में 'प्रोग्रेसिव राइटर्स एसोसिएशन' नामक संस्था का प्रथम अन्तर्राष्ट्रीय संस्था का प्रथम अधिवेशन हुआ। हिन्दुस्तान में उसके दूसरे साल डॉ. मुल्कराज आनंद और सज्जाद ज़हीर के द्वारा जब उस संस्था की शाखा खुली और प्रेमचंद की अध्यक्षता में लखनऊ में उसका प्रथम अधिवेशन हुआ तब यहाँ प्रगतिशील साहित्य का प्रचार किया गया।' लेखक का मानना है कि इसके बाद समाज में कितना बदलाव हुआ यह कहना मुश्किल है पर 'समाज तो कितना बदला पता नहीं पर हाँ कविता ज़रूर बदल गई। कहीं क्रान्ति तो कहीं सर्वहारा की प्रतिष्ठा और कहीं समाजवाद के सपने कविताओं में आने लगे, भाषा भी बदली, कुछेक लोगों ने लोकभाषाओं के शब्दों, मुहावरों और शैली का उपयोग भी हिन्दी कविताओं में किया पर बात कुछ बनी नहीं। रहे वही ढाक के तीन पात। क्योंकि कई कवियों ने अपनी कविताओं को ग्राह्य बनाने की कोशिश की किन्तु एक बड़ा तंत्र सदैव पश्चिमी प्रभाव, आभिजात्य और अभिजनवादी संस्कृति का पैरोकार बना रहा। यह सब पहले आधुनिकता वाद को उत्तर आधुनिकता, भूमंडलीकरण, उदारीकरण, निजीकरण के नाम पर होता गया। यानी सार्वजनिक संपत्ति और श्रम को अंतत: व्यक्तिगत लाभ में परिवर्तित करने के इरादों के तहत यह सब सुनियोजित तरीकों से किया गया। तिस पर भी कहा यह गया, अब काव्य भाषा एक अन्तर्राष्ट्रीय भाषा हो गई है, आप लोकभाषा की क्या बात करते हो।'

हम देखते हैं कि आद्योगिक विकास और व्यावसायिक संबंधों के कारण जीवन की जटिताएँ बढ़ी हैं इसी अनुपात में साहित्य सृजन की समस्याएँ भी बढ़ी हैं। इन बदली हुई परिस्थितियों में काव्य सृजन बहुत ही पैचीदगियों से भरा हुआ कार्य हो गया है। यह कार्य जितना पेचीदा है उतना ही जोखिम भरा भी है। कबीर और निराला की परम्परा में हम शील, नागार्जुन, केदार और त्रिलोचन के नाम ले सकते है। परन्तु उसके बाद न तो परम्परा का वह स्वरूप और विकास हमें दिखाई देता है न ही उतनी प्रतिबद्धता।....कविता यदि गंदी आबादी के नाले को पाटती है तो यही हमारी लोक परम्परा है। इससे अलग जहाँ कविता दुर्गन्ध फैलाती है, मच्छर बढ़ाती है, गंदगी को उसी जगह छोड़कर मुँह फेर लेती है वह हमारी परम्परा हर्गिज नहीं हो सकती यदि ऐसी परम्पराएँ हमारे देश में है, हमारे साहित्य में है, राजनीति में है तो यह भव्य आयोजन, समाराह, जयन्तियाँ आख़िर किस लिए हैं। ऐसी स्थितियों का प्रतिकार कविता का लोकधर्म है।'

शैलेंद्र चौहान कविता के संदर्भ में अशोक वाजपेयी की जानिब से सवाल करते हैं कि ''कविता लिखना कवि के लिए विवेक विराम का घर है और शायद मानसिक आराम का भी। आराम से कुछ औचक कुछ अकबक शब्दों को वाक्यों में पिरो दिया जाए कुछ तत्सम पांडित्यपूर्ण शब्दों को सलमे सितारों की तरह टाँक दिया जाए, कुछ जुगुप्सा उसमें ठूँस दी जाए। फिर होगा जो ढाँचा तैयार क्या वही कविता है ?'' मुक्तिबोध की एक कविता ''चंबल की घाटी'' की कुछ पंक्तियाँ ध्यातव्य है -

मैं एक थमा हुआ मात्र आवेग
रुका हुआ एक ज़बर्दस्त कार्यक्रतम
मैं एक स्थगित हुआ अथवा अध्याय अनिवार्य
आगे ढकेली गई प्रतीक्षित महत्त्वपूर्ण तिथि
मैं एक शून्य में छटपटाता हुआ उद्देश्य
मुझे अफसोस है गहरा
बर्फ़ है दिल और स्याह है चेहरा
सदियों की खून रँगी भूलों के
क़िस्सों का क़िस्सा
मेरी अंतरआत्मा का अंश
मेरी ज़िंदगी का हिस्सा

निश्चित तौर पर कहा जा सकता है कि 'कविता का जनपक्ष' सही रूप में तभी हमारे सम्मुख आ पाएगा जब हम कविता को आमजन से जोड़ने का प्रयास करेंगे। इस राह में समीक्ष्य किताब पाठकों का साथ लंबे समय तक देगी।

000

पुस्तक समीक्षा

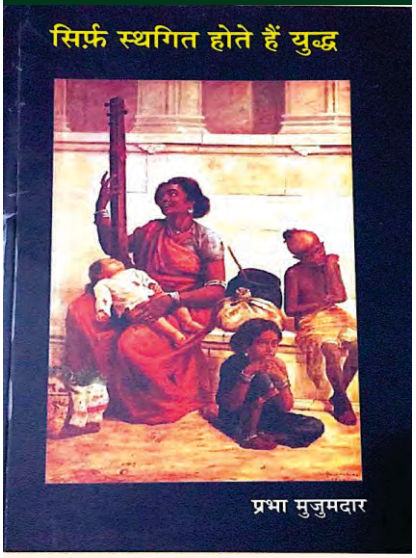

सिर्फ़ स्थगित होते हैं युद्ध

(कविता संग्रह)

समीक्षक : डॉ. शशिप्रभा

लेखक : प्रभा मुजुमदार

प्रकाशक : परिदृश्य प्रकाशन, मुम्बई

डॉ. शशिप्रभा
म. न. 2532, सेक्टर- 40–सी
चंडीगढ़ –160036
मोबाइल- 9855156426

मेरे पीएॅच. डी के शोध मार्गदर्शक डॉ. मैथिलीप्रसाद भारद्वाज का कथन कि साहित्येतर विषयों के अंग्रेज़ी माध्यम से शिक्षित विद्वान विशेषज्ञों के पास भावभिव्यक्ति के लिए सहज भाषा का न होना हिन्दी की विडंबना है- साहित्येतर विषयों पर अच्छे साहित्य से वंचित होना, परंतु इस निराशा भाव में आशा का संचार करती हैं प्रभा मुजुमदार जैसी गणित की विशेषज्ञ, तेल एवं प्रकृतिक गैस निगम में भू वैज्ञानिक के तौर पर कार्यरत रहीं, मध्य प्रदेश में जन्मीं और नौकरी के सिलसिले में देश के अलग अलग प्रदेशों में विचरण करती हुईं तथा अब मुंबई में निवास करती मराठी भाषी कवयित्री की सशक्त हिन्दी कविताएँ। आपका चतुर्थ काव्य-संग्रह "सिर्फ स्थगित होते हैं युद्ध" केवल काव्य-संग्रह ही नहीं है, इसका शीर्षक मानव सभ्यता के एक शाश्वत सत्य की उद्घोषणा करता है।

प्रभा जी के इस संग्रह में ४० शीर्षकों के अंतर्गत कुल ६५ कविताएँ १४४ पृष्ठों के कैनवास में समेटी गईं हैं। इन कविताओं में निजी महत्त्व को प्रतिपादित करने में प्रयासरत, दूसरों के अस्तित्व को रौंदने-मिटाने का अनवरत सिलसिला ज़ारी रखे रहने वाले मानव के प्रति प्रतिरोधात्मक अभिव्यक्तियों के साथ-साथ जीवन के रोज़मर्रा के सहज अनुभवों, मन के कोमल भावों, रिश्ते-नातों तथा समाज के प्रति सरोकारों का भी चित्रण किया गया है। जीवन, जगत् तथा आसपास की परिस्थितियों के प्रति आपकी चिंताएँ, बेबसी, व्याकुलता, उदासी, खुशी, छटपटाहट, संघर्ष की उत्कंठा, आत्मविश्वास आदि सब कुछ इनमें मिल जाता है। विषयों और भाव-सामग्री के आधार पर इन कविताओं को १९ वर्गों में बाँटा जा सकता है जो मानव समाज एवं परिस्थितियों का व्यापक परिदृश्य प्रस्तुत करता है। इस परिदृश्य को प्रस्तुत करने के लिए आपने शब्दों को "संबल" माना, लेखन को "शक्ति" माना और एक तरह से प्राण किया कि "लिखूँगी तो ज़रूर" (पृष्ठ ९)।

"मेरे पास सेनाएँ नहीं/ संबल है"

"एकांत में पन्नों पर उभरते/कुछ काले अक्षर हैं/अनबिके शब्द है/भयमुक्त स्वर हैं" (संबल पृ. १२)

आधुनिक युग की वैश्विक, बाज़ारीकृत व्यवस्थाओं तथा सुविधाभोगी आत्मकेंद्रित जीवन-शैली में, समाज तथा विश्व के उलझे ताने-बाने में पर्यावरण बहुत बड़ा मुद्दा है जिसके प्रति ज़्यादातर लोगों के निर्लिप्त रहने की स्थिति को कवयित्री कह उठती है "बहुत ज़रूरी है कि/

आग में हो/कम से कम इतनी आग/कि मशाल की तरह करे/अँधेरे कोनों को प्रदीप्त" अथवा "हवा में घुली रहे इतनी हवा/घुटन को चीर कर आ सके/सुगंध और शीतलता"

"और बचा रहे/सिर्फ इतना-सा जंगल/कि कंक्रीट की दुनिया में/दूर से तो झलके/हरियाली की छोटी सी परत"।

कवयित्री चाहती है कि "खुदगर्ज़ पलों के बीच/सिर्फ एक पल/आग, हवा और पानी/आकाश और धरती/धूप, बारिश

और हरियाली के नाम"। (सदी के महामार्ग पर पृ ७०)। अपनी भावना को व्यक्त करते हुए नदी के लिए कहती

हैं "आभारी हूँ मैं नदी/ बचाए रखी तुमने/मेरे भीतर/ प्रवाह और तरलता/ निश्छलता और निरंतरता"।

(आभारी हूँ मैं नदी पृ २३)।

पर्यावरण की तरह ही रिश्तों में भी संवेदनाओं का अभाव कवयित्री को विचलित करता है, वह महसूस करती हैं कि संबंधों के रेशमी धागों को उलझ कर गाँठ बन जाने में वक्त नहीं लगता, इसीलिए इन्हें बचाए रखने के लिए संतुलन साधना पड़ता है। अगर यह संतुलन न साध पाएँ तो जैसे इमारतों में जाले लग कर गंदगी का विस्तार होता है, वैसे ही व्यक्तित्व में भी जाले लग जाते हैं "अक्सर लगता है इन दिनों/ बाहर से कहीं ज़्यादा/ मेरे भीतर ही/बनते जा रहे हैं जाले" (जाले पृ ३६)। "रिश्तों की तरह ही उसे पुरानी यादें भी कचोटती हैं /हँसी और कहकहों में ही नहीं/कराहों और सिसकियों में भी/कुछ कहती है यादें। (यादें पृ ३१)

अनुभव करने और अभिव्यक्त न कर पाने कि स्थिति में व्यक्ति कई बार चुप्पी ओढ़ लेता है, लेकिन कवयित्री के शब्दों में चुप्पी की भी अपनी आवाज़ होती है "इतनी भी चुप नहीं होती हैं चुप्पियाँ/ कि सुनी ही न जा सकें/

उनकी आवाज़ें (चुप्पी पृ २३)।

अनभिव्यक्ति और आंतरिक छटपटाहट के चलते कभी-कभी निराशा और अवसाद मन को घेर लेते हैं, जिसकी अभिव्यक्ति "इन दिनों" शीर्षक की तीन कविताओं में की गई है "इन दिनों/ अक्सर पूछने लगी हूँ अपने से/ क्या ज़िंदा रहना ज़रूरी है/ इस तरह ? लेकिन इसी घुटन, अवसाद और निराशा से उबर सकने का रास्ता भी वह तलाशना चाहती है" (इन दिनों पृ २०)।

ऐसा लगता है कि कवयित्री के निराशा भाव और अवसाद के कारणों में कहीं अलग-अलग रूप में अतीत की यादें हैं "रीती दिखती हथेलियों में/ कितने रंगों, मिट्टियों, और मौसमों के/ आस्वाद, अनुभूतियाँ" (अर्थ पृ १५), तो कहीं कैंसर की भेंट चढ़ चुकी अंतरंग सखी का असमय चले जाना, जिसे वह "तुम्हारी याद में" की दो कविताओं में याद करती हैं "कैसे कहूँ कि तुम नहीं हो आज/ जबकि तुम्हारे हँसी से मिलती/ सूरज की सुनहरी उजास है", पृ ५२। इन्हीं संदर्भों में जीवन-यथार्थ को स्वीकारती, व्यक्ति के जन्म और मृत्यु के साथ रिश्तों को जोड़कर बहुत सुंदर व्याख्या करती दुखी हैं "अकेले ही नहीं/ जन्मता है कोई/ जन्म लेते हैं उसके साथ ही/कई-कई आँखों में स्वप्न।

"अकेले नहीं मरता है कोई/निशब्द खामोश/तिल तिल कर मरते हैं बहुत सारे/--- एक ही रिश्ता अतीत नहीं होता/ पुनर्परिभाषित होते हैं/ बाकी भी संबंध" (इस चक्र में पृ ५४)।

नकारात्मकता, निराशा, दु:ख, अवसाद की स्थितियों में जब आप महसूस करती हैं "दु:ख के न होने पर भी/ अभिशप्त हम/ दहशत में जीने के लिए" (दु:ख पृ ३०) तो यह भावना आपको सकारात्मकता की ओर अग्रसर करती है, आपको लगता है कि "अनगिनत विभीषिकाओं के बावजूद/ जीने की जिजीविषा/ रिश्तों की गरिमा/ भविष्य की अनंत संभावनाएँ"(इसी धरती पर पृ ५६) लेकिन इसके लिए (ज़रूरी है पृ ५९) "ज़रूरी है कुछ पर्व कुछ उत्सवों का आयोजन/ ताकि उल्लास और उमंग की किरणें/ निजात दिला सकें/उदासी और कुंठा की धुंध से.... /महक उठे यादों की बगिया/ रंगोलियों से सज उठे देहरी/ जगमगाएँ कुछ दीप/ .... और भी बहुत कुछ।"

व्यक्ति, प्रकृति, परिस्थितियों के प्रति निजी संवेदनाओं की अभिव्यक्ति के साथ-साथ आपने सामाजिक सरोकारों को भी अपने काव्य का विषय बनाया है, जिसमें प्रमुख है समाज में नारी की स्थिति और उस स्थिति के प्रति समाज एवं नारी की जवाबदेही। जहाँ तक नारी की स्थिति है, आप कहती हैं "हर दिन/ गहराते ज़ख्मों के साथ/ औरत/ रिसती है बूँद बूँद" तथा "नीव के पत्थर सी/ बरसों दशकों शतकों/ पड़ी रहती है/ निशब्द निश्चल सी"

और "वे जीती रहीं ताउम्र/ किसी पिंकी अथवा पप्पू की माँ बन कर/ फलां श्रीमती, बेगम अथवा बेवा बन कर"

(नीव के पत्थर सी पृ ६२)।

लेकिन प्रभा के शब्दों में, वे अधिक जागरूक होने लगी हैं–"समझ रहीं हैं वह, ये सारे षड्यंत्र ....." (परछाई पृ ६९)

तथा अपनी जवाबदेही भी उसने तय की है "दशा और दिशाओं को बदलना/ हालात का नहीं/ मेरे दायित्व था" (नकामयाबी के लिए पृ६६)। यूँ वह यह भी मानती हैं कि "उस पर पोती गई यह कालिख/ औरत के चेहरे पर नहीं../ एक संपूर्ण सदी के मुख पर है"।

व्यवस्था के जनता के प्रति विशेष रूप से औरत के प्रति पक्षपातपूर्ण व्यवहार के लिए वह शासन तन्त्र से पूछती हैं "सच कहो दशानन/ अपनी बहन नहीं हुई होती/ अगर वह अपमानित/ तो जंगलों मे घूमती/ किसी ऐरी-गेरी औरत का दर्द/ वही प्रतिशोध जगाता क्या तुममें?" (विजयपर्व पृ ९०)। कवयित्री ने औरत की बेबसी तथा पुरुषप्रधान समाज की दोगली नीतियों पर कटाक्ष करते हुए "विजयपर्व" शीर्षक की ५ कविताओं में प्रश्न उठाए हैं

"हर सीता को ही/ झेलना होता है/ अंतत: एक अनिवार्य निर्वासन", लेकिन ऐसे प्रश्नों संदर्भों का उत्तर "नकामयाबी के लिए" कविता में लिखा है।

औरत की सबसे बड़ी उपलब्धि है संतान को जन्म देना- जिसके अस्तित्व में, लालन-पालन में वह स्वयं के अस्तित्व को विलीन कर देती है "तुम्हारे नन्हें से अस्तित्व में/ खो गया था/ मेरे अपने होने का अहसास"। लेकिन वक्त के साथ अंतराल भी अपेक्षित ही होता है "आख़िर बढ़नी तो थीं ही/ हमारे बीच की दूरियाँ" फिर भी "फिर भी चाहती हूँ कि/ दे

सकूँ एक पुख्ता ज़मीन तुम्हें/ अपनी धरती के हिस्से से/ बचा सकूँ तेज़ धूप अंधड़ और बारिश में/ अनुभवों की छतरी ले कर" (तुम्हारे आकाश में पृ ४०)।

नौकरी के सिलसिले में स्थानांतरण सामान्य बात है, मगर यह कैसी स्थितियाँ पैदा करता है, क्या अहसास दिलाता है यह प्रभा जी के ही शब्दों में "चयन करती हूँ/कम से कम चीज़ों का/ ..../ मन-मन का पत्थर, सीने पर रख कर/ रद्दी के ढेर में डालती हूँ/अपनी पसंदीदा किताबें/ पत्रिकाएँ डायरियाँ" तथा "मन भारी हो जाता है/ बहुत कुछ छूटने के बाद/हर तबादले पर"। नई जगह जाने पर भी तो "उस अनपहचाने घर के/खाली कमरों/दीवारों दरवाज़ों को/ देना पड़ता है परिचय/ संवेदनाओं की नमी से/ सींचना होता है आँगन/ सुननी समझनी होती है/ वहाँ की हवा में घुली आवाज़ें" (स्थानांतरण पर पृ ४५)।

कवयित्री को लगता है कि जीवन भर परिस्थितियों के चक्रव्यूह में घिरा, अनेक प्रकार के दंगे-फ़सादों के बीच ज़िंदा मनुष्य संवेदनहीन हो जाता है, इसके बावजूद उसमें मशाल बनकर जलते रहने, समाज को प्रकाशित करने कि संभावना बनी रहती है (मरने के बावजूद पृ ७८) तथा (कुछ आग बाकी है पृ ७९)। इसी संभावना के चलते, उसकी जीवन यात्राएँ जारी रहती हैं- वह अंदर से बाहर और बाहर से अंदर कि तरफ अर्थात अंतरयात्राएँ करता रहता है

"कल की निर्धारित मंज़िल/ हासिल होने के ठीक उसी क्षण/ प्रस्थान बिन्दु बन जाती है/ नई यात्रा का"

"बेमानी नहीं होती कोई यात्रा/ इतिहास और आगत के बीच के/ हर कालखंड को/ अलग अलग पड़ावों में सहेज लेती हैं यात्राएँ" (जारी रहती हैं यात्राएँ पृ ८२), लेकिन इन यात्राओं को जारी रखने के लिए "बहुत ज़रूरी है कुछ पुलों का/ बचाए रखा जाना" (पुल पृ ८६)।

कवयित्री ने पौराणिक-ऐतिहासिक कथानकों पर प्रश्न-चिह्न लगाते हुए कहा है कि "इतिहास के गलियारों में" (पृ ९३) झाँके तो सदा सब कुछ सही तो नहीं होता।

विक्रम-बैताल की मिथक कथा का संदर्भ लेकर प्रभा जी ने मानव सभ्यता की विकास यात्रा में प्रकृति के साथ हो रही छेड़छाड़ और आदिवासियों की समस्याओं को उठाया है (बेताल के साथ पृ ९९)। संग्रह में "मी लार्ड" कविता, व्यवस्था की अदालती प्रक्रिया में एक गवाह की स्थिति का प्रभावशाली वर्णन करती है "रात दिन की धमकियों से डरा सहमा/ सपरिवार रोता हूँ मैं" (पृ १०५)।

व्यवस्था तंत्र में उलझे बुद्धिजीवी या फिर सामान्य जन स्थितियों से तटस्थ होकर आत्मकेंद्रित होने लगे हैं तो लगता है जैसे व्यक्ति एक उपनिवेश बन गया है (मैं एक उपनिवेश पृ १११)। कवयित्री को लगने लगा है "मुर्दों के शहर में/ ज़ाहिर है सब मुर्दे ही रहते हैं" (मुर्दों के शहर में पृ १०९) जीवन, जगत्, व्यवस्था पर हर तरह से दृष्टिपात करते-करते कवयित्री को अंतत: मान लेना पड़ता है कि इतिहास बदलने पर भी कुछ नहीं बदलता, बेशक पात्र बादल जाते हैं- "इतिहास की एक निर्णायक घड़ी/ पराजित और पस्त हो जाती है/ अपने ही अंतरद्वंद्वों और दुविधाओं की छाया में" (हर बार पृ १३४)।

इसीलिए युद्ध कभी ख़त्म नहीं होते "सिर्फ स्थगित होते हैं युद्ध" शीर्षक बिल्कुल सार्थक है- न कभी जीत अंतिम होती है न हार। "अंतिम नहीं होती/ कोई हार/ कोई भी जीत/ निर्विवाद नहीं होती"

"जारी ही रहेंगे युद्ध/ एक छोटी सी विश्रांति के बाद" (पृ १४१), इस सत्य को जानते हुए भी कवयित्री को लगता है "फिर भी ज़रूरी होती है/ युद्धविराम की संभावनाओं की तलाश"।

यह आवश्यक भी है- मानव सभ्यता को बचाए रखने के लिए। प्रभा और मुझमें वैचारिक मतभेदों के बावजूद, काफी कुछ वैचारिक समानताएँ भी हैं। मोहन राकेश रचित "आषाढ़ का एक दिन" नाटक के खलनायक विलोम के द्वारा, नायक कालिदास के प्रति कहे संवादों को दोहराऊँ तो "कहीं हम एक दूसरे के बहुत निकट हैं"। प्रभा के संग्रह का शीर्षक है "सिर्फ स्थगित होते हैं युद्ध" और २०१८ में प्रकाशित मैं कहती हूँ "अवश्यंभावी हैं युद्ध/ क्या करें/ अधिकार न मिलें तो/ लड़ना पड़ता है युद्ध"।

संग्रह की कविताओं की भाषा काफी प्रभावशाली है तथा वैचारिक अभिव्यक्ति, गहन, गंभीर चिंतन तथा प्रौढ़ता का परिचय देती है। अपने भाषिक अभिव्यक्ति में अलंकारों का खूब प्रयोग किया है- उदाहरणार्थ "डोफार सा तमतमाता मन" "अंधड़ की तरह उड़ रहे हैं विचार"। इन अलंकारों में उपमा, रूपक तथा पुनरुक्ति तथा पुनरुक्ति प्रकार जैसे "चिंदी-चिंदी", "शब्द-शब्द", अक्षर-अक्षर आदि प्रयुक्त हुए हैं। प्रतीकों ने आपकी अभिव्यक्ति को सशक्त बनाया है। बावजूद आलंकारित भाषा के, कविता सिर के ऊपर से नहीं गुज़रती अर्थात् सरलता से ग्रहणीय है।

इस संग्रह की कुछ कविताओं को मैंने इस समीक्षा में विश्लेषण के लिए नहीं उठाया, इसलिए, क्योंकि साहित्यिक परिप्रेक्ष्य में व्यक्तिपरक अथवा किसी पूर्वाग्रह पर आधारित रचना का विश्लेषण न करना ही सही रहता है।

000

लेखकों से अनुरोध

सभी सम्माननीय लेखकों से संपादक मंडल का विनम्र अनुरोध है कि पत्रिका में प्रकाशन हेतु केवल अपनी मौलिक एवं अप्रकाशित रचनाएँ ही भेजें। वह रचनाएँ जो सोशल मीडिया के किसी मंच जैसे फ़ेसबुक, व्हाट्सएप आदि पर प्रकाशित हो चुकी हैं, उन्हें पत्रिका में प्रकाशन हेतु नहीं भेजें। इस प्रकार की रचनाओं को हम प्रकाशित नहीं करेंगे। साथ ही यह भी देखा गया है कि कुछ रचनाकार अपनी पूर्व में अन्य किसी पत्रिका में प्रकाशित रचनाएँ भी शिवना सहित्यिकी में प्रकाशन के लिए भेज रहे हैं, इस प्रकार की रचनाएँ न भेजें। अपनी मौलिक तथा अप्रकाशित रचनाएँ ही पत्रिका में प्रकाशन के लिए भेजें। आपका सहयोग हमें पत्रिका को और बेहतर बनाने में मदद करेगा, धन्यवाद।

-सादर संपादक मंडल

केंद्र में पुस्तक

अटकन-चटकन

(उपन्यास)

समीक्षक : डॉ. ज्योतिष जोशी, राजीव तनेजा, सलिल वर्मा, डॉ. अभिलाषा द्विवेदी

लेखक : वंदना अवस्थी दुबे

प्रकाशक : शिवना प्रकाशन, सीहोर, मप्र

डॉ. ज्योतिष जोशी
डी 4 / 37, दूसरी मंजिल सेक्टर 15
नजदीक मानव चौक रोहिणी, दिल्ली
110089, मोबाइल- 9818603318

राजीव तनेजा
ए ई- 173, शालीमार बाग, नज़दीक
प्रभुदयाल पब्लिक स्कूल,
दिल्ली- 110088
मोबाइल- 8076109496

सलिल वर्मा
फ़्लैट नंबर बी-204, सुखन आर्किड, दून ब्लॉसम एकेडमी के पास, न्यू सी जी रोड,
चाँदखेड़ा, अहमदाबाद, गुजरात 382424

अपने मूल्यों की चिंता का मानीखेज उपन्यास

डॉ. ज्योतिष जोशी

'बातों वाली गली' कहानी संग्रह से चर्चा में आईं चर्चित कथाकार वंदना अवस्थी दुबे का नवीनतम उपन्यास - 'अटकन चटकन' अपने विन्यास में बेहद रोचक और पठनीय है। इसमें कथा नई नहीं है पर वह इतने रोचक ढंग से सामने आती है कि रचना अनेक अर्थ स्तरों को छूती चली जाती है। उपन्यास में स्पष्ट शब्दों में टूटते घर परिवार की चिंता है और उसमें स्त्री अधिकार और स्वतंत्रता की अपेक्षित जगह भी, पर वह किसी ऐसे विमर्श को हवा नहीं देता जो हमारी मूल्य व्यवस्था को तहस नहस कर दे।

तहसीलदार केदारनाथ पांडेय की तीन बेटियों में बड़ी सुमित्रा और मझली कुंती की यह कथा छोटी सत्यभामा को बिसरा देती है, ऐसा नहीं है। पर वह इस कथा के केंद्र में नहीं रहती, क्योंकि उसके विकास में उसकी कोई विशेष भूमिका नहीं है। भूमिका तो बड़े भाई, दादा और तिवारी जी की भी नहीं है, क्योंकि वे दोनों बहनों - सुमित्रा और कुंती के आपसी तनाव के प्रत्यक्षदर्शी ही रहते हैं जैसे इनकी दोनों की माँ रहती हैं। सुमित्रा जितनी सुंदर है, कुंती उतनी ही भद्दी और बेशऊर। सुमित्रा सुन्दर होने के साथ साथ शालीन भी है और बेहद शिष्ट और मृदु। पर कुंती जैसी कुरूप है वैसी ही खल प्रवृत्ति की, जिसके कारण वह विद्यालय से लेकर घर तक में वह सुमित्रा को परेशान करती है और उसकी प्रशंसा से जलती रहती है। यह स्वाभाविक जलन और चिढ़ का भाव उसमें इतना अधिक भर जाता है कि उसके सभी मानवीय गुण लुप्त हो जाते हैं। सुमित्रा की शादी होती है। वह अच्छे परिवार की ब्याहता होती है, पर दुर्भाग्य से उसके ज्येष्ठ

की पत्नी गुजर जाती हैं। सुमित्रा कुंती के सभी अवगुणों और ज्यादतियों को भूलकर कोशिश करती है कि उसके ज्येष्ठ से उसकी शादी हो जाए और यह हो जाता है। सुमित्रा की इस सदाशयता को भी कुंती अपने प्रति उसकी कुटिलता समझती है और लगातार उसे नीचा दिखाने की चाल चलकर उसे अपमानित करती रहती है। घर को उसने अपनी हरकतों से नरक बना डाला है। इससे ऊबकर और दादा जी के फ़ैसले के अनुसार वह अपने पति के पास ग्वालियर जाती है जहाँ कुछ और पढ़कर और बुनियादी शिक्षा का प्रशिक्षण लेकर वह अध्यापिका बन जाती है। इसकी चिढ़ में कुंती में पढ़ती है और प्रशिक्षण लेकर अध्यापकी पाती है पर उसकी प्रवृत्ति नहीं बदलती। उस्की आदतों से ही दादा यानी उसके पति असमय काल कवलित हो जाते हैं।

वह एक बार बड़े भाई के घर सुमित्रा को साथ लेकर जाती है अपनी ही भौजाई लक्ष्मी की एक सुंदर साड़ी का आँचल काटकर उसका दोष सुमित्रा पर लगाकर उसे नीचा दिखाती है। इस तरह उसका यह दुराचरण उसके सभी सहजात मानवीय गुणों को सोख लेता है और वह मानसिक रूप से इतनी जलनखोर और आक्रामक हो जाती है कि किसी की खुशी उसे बर्दाश्त नहीं होती। रमा सहित घर में काम करनेवाले नौकरों के साथ भी वह इसी तरह अभद्र व्यवहार करती है और आसपास के लोगों से भी। पर सुमित्रा के जाने के बाद स्थाई तौर पर शासन चलाने की गरज से बारी-बारी अपने दोनों बेटों के ब्याह कर वह पहले अपनी बड़ी बहू जानकी को प्रताड़ित करती है, फिर छोटी बहू छाया को। लेकिन उसका स्वभाव खुद उसके लिए मुसीबत बन जाता है जब अपमानित होकर उसे जीने पर विवश होना पड़ता है।

अंत में प्रदेश जा विराजे दोनों बेटों को वह हिस्से की ज़मीन देकर आसपास के बच्चों को पढ़ाने की सेवा कर प्रायश्चित करती है, पर कुछ भी शेष नहीं रहता।

उपन्यास पुरानी क़िस्सागोई में ढला है और रोचक आख्यान में विन्यस्त होकर अपने कथारस में बाँधे रखता है। इसमें दो चीज़ें एक साथ साधी गई हैं- पहला यह कि टूटते परिवार को बचाने के लिए सुमित्रा जैसी पात्रता की ज़रूरत की पैरोकारी तो दूसरा यह कि स्त्री मुक्ति या स्वातन्त्र्य की जगह को परिवार में पा सकने की सम्भावना की खोज। दोनों ही स्तरों पर उपन्यास सफल दिखता है। यह भी गौरतलब है कि कुंती की अस्वाभाविक मनोदशा को दिखाकर वह यह भी सिद्ध करने में सफल हुई हैं कि सहजात वैमनस्य और ईर्ष्या हमें अमानवीय बना देता है और हम दूसरों को दु:ख देकर ही खुश हो जाया करते हैं। यह एक मानसिक रोग है जिसका निदान न होने पर हम कहीं के भी नहीं रहते। इस रूप में यह रचना एक भुक्त अनुभव को जीवन के बड़े कैनवस पर जी सकने का बड़ा प्रयत्न है जिसकी सराहना की जानी चाहिए। सधे हुए शिल्प, क़िस्सागोई में ढली कथा, हमारे ही जीवन के देखे भाले चरित्र और साधारण सी लगनेवाली स्त्रियों के माध्यम से एक नई दृष्टि को रखने में समर्थ वंदना अवस्थी दुबे एक तरह से उस कथा को वापस लाने में सक्षम दिख रही हैं जो अपठनीय शिल्प और असहज विमर्श में भूल बिसर सा गया है।

इस कृति के प्रकाशन के लिए शिवना प्रकाशन को भी बधाई देना बनता है।

000

शिक्षा, और महिला सशक्तिकरण
राजीव तनेजा

क़ुदरती तौर पर कुछ चीज़ें..कुछ बातें...कुछ रिश्ते केवल और केवल ऊपरवाले की मर्ज़ी से ही संतुलित एवं नियंत्रित होते हैं। उनमें चाह कर भी अपनी मर्ज़ी से हम कुछ भी फेरबदल नहीं कर सकते जैसे...जन्म के साथ ही किसी भी परिवार के सभी सदस्यों के बीच, आपस का रिश्ता। हम चाह कर भी अपने माता-पिता या भाई बहनों को बदल नहीं सकते कि...

"हे!...मेरे परवरदिगार...हे!...मेरे मौला, ये पिता या माँ अथवा भाई या बहन हमें पसंद नहीं। इन्हें बदल कर आप हमें दूसरे अभिभावक या भाई-बहन दे दीजिए।"

साथ ही हर व्यक्ति की पैदाइश के साथ ही ऊपरवाले द्वारा उसका स्वभाव...उसकी आदतें वगैरह भी सब तयशुदा मंज़िल की तरफ बढ़ने के लिए भेज दी जाती हैं कि वह मीठा...मिलनसार..दूसरों की मदद को तत्पर रहने वाला निकल कर सबका जीवन खुशमय करेगा अथवा कड़वा...कसैला...शंकालु एवं झगड़ालू बन के सबका जीवन नर्क बनाता हुआ हराम करेगा। इस बार ऐसे ही अटकते-चटकते रिश्ते और एकदम विपरीत स्वभाव की दो बहनों की दास्तान पढ़ने को मिली मुझे प्रसिद्ध साहित्यकार वंदना अवस्थी जी के उपन्यास "अटकन चटकन" में।

जी!...हाँ...आपने सही सुना "अटकन चटकन"। अभी हाल-फिलहाल ही एक फ़िल्म आई है इसी...यानी के "अटकन चकटन" के ही नाम से जिसे बनाया है प्रसिद्ध संगीत निर्देशक ए आर रहमान ने। वो कहते हैं ना कि...दुनिया गोल है। क्या ग़ज़ब का संयोग बनाया है ऊपरवाले ने? और मज़े की बात यह देखिए कि फ़िल्म की शुरूआत में ही एक किताब दिखाई देती है जिसका नाम भी हमारी वाली किताब की ही भाँति "अटकन चटकन" है। यकीन मानिए कि बस नाम के अलावा कुछ भी समान नहीं है...सब का सब अलग है।

चलिए!...अब बात करते हैं इसकी कहानी की तो कहानी कुछ यूँ है कि एक ही परिवार में जन्मी दो बहनों की शक्ल सूरत और स्वभाव एक दूसरे से एकदम भिन्न है। एक को जहाँ ऊपरवाले ने दुनिया जहाँ की खूबसूरती की नेमत बक्शी है तो वहीं दूसरी तरफ दूसरी बहन शक्ल औ सूरत क्या...सीरत के मामले में भी उससे एकदम भिन्न।

ऐसे में तो भय्या...आप कुछ भी कह लो...थोड़ी बहुत ईर्ष्या..जलन तो बनती ही है...इसमें कोई शक नहीं लेकिन हद दर्ज़े की नफ़रत? ना बाबा ना...इसे तो भय्या हम किसी भी कीमत पर जायज़ नहीं ठहरा सकते।

चलो!...माना कि बचपन बड़ा भोला होता है। ग़ुस्से के मारे हो जाता है कि एक ने शरारत की और दूसरे की उसी वक्त...उसी के सामने...ढंके की चोट पर धड़ाधड़ बोलते हुए

चुगली कर शिकायत लगा दी कि...इस बाबत मैंने तो जो करना था..कर दिया। अब तू देख तमाशा। तमाशे तो भय्या उस छुटकी ने इतने किए...इतने किए कि बस पूछो मत। आए दिन घर के कभी बड़ों से तो कभी स्कूल में अध्यापकों से खामख्वाह में कानाफूसी करते इधर उधर की इतनी चुगलियाँ कि बड़की बेचारी कभी इहाँ डाँट खाएँ तो कभी उहाँ आँसू बहा..रो..रो आँख सुजाए।

आँखें सुजाने में तो छुटकी का भी भय्या बस पूछो मत। क्या ग़ज़ब रो-रो के अपनी आँखें सुजाती कि सब उसको सच्चा और बड़की को झूठा मान..बड़की को ही गरियाते रहते और बड़की बेचारी..ना चूँ...ना चाँ...ना हूँ हाँ, बस छुप-छुप के अकेले में सुबक-सुबक रोती रहती।

कहते हैं कि बढ़ती उम्र के साथ सब में समझ आ जाती है। अब अगर सच में आ जाती तो क्या बात थी। छुटकी का अब भी वही रोना धोना...वही नौटंकी..वही लटके-झटके। हद तो इस बात की कि बड़की के उसके प्रति किए गए हर अच्छे काम में उसको कोई ना कोई साजिश नज़र..कोई ना कोई खोट नज़र आता। अब कोई उससे साजिश कर साफ़ बच के निकल जाए, ऐसा भला कैसे हो सकता था? बदले में वो अपनी कुंठाओं के चलते साजिशों..चालों का अंबार लगा देती।

पढ़ते वक्त सोचा कि चलो...ब्याह के जब दोनों अपने अपने घर चली जाएँगी तो उनके साथ-साथ हमें भी चैन आ जाएगा। मगर चैन कहाँ भला अपनी किस्मत में लिखा था? बड़की की मति फिर गयी जो उसी को अपनी जेठानी बना अपनी ही ससुराल में..अपनी ही छाती पे मूँग दलने को ला बैठी कि... चलो!...बचपन तो इसका जैसे-तैसे बीता...बाकी की जून ही कम से कम सुधर जाए। उसका कुछ सुधर या सँवर जाए? वो भी बड़की के हाथों? ये भला छुटकी को कैसे मंज़ूर होता? हो गया नए सिरे से शुरू फिर वही नौटंकी..वही साजिशों का दौर।

कहानी...यूँ समझ लो कि शुरू से अंत तक बस मज़ेदार ही मज़ेदार है। अब सारी क़िस्सागोई अगर मैंने यहीं कर दी तो भय्या इतनी बढ़िया किताब फिर पढ़ेगा कौन? शिक्षा...रोज़गार और महिला सशक्तिकरण जैसे कई मुद्दों को अपने में समेटे इस लघु उपन्यास में बस इतना समझ लो कि एकदम से समय और पैसे..दोनों की फुल्ल बटा फुल्ल वसूली है।

अब आप कहेंगे कि डायबिटीज़ के ज़माने में यहाँ तो सब मीठा ही मीठा हो गया। बैलेंस के लिए कम से कम थोड़ा बहुत नमकीन तो हो। अब वैसे तो कुछ खास नमकीन है नहीं मेरे झोले में मगर अब जब इतने प्यार से आप ज़िद कर ही रहे हैं तो वह भी लीजिए।

पूरे उपन्यास में स्थानीयता के पुट के चलते बुंदेलखंडी भाषा का खूब धड़ल्ले से इस्तेमाल हुआ है और यही इस्तेमाल शुरू में थोड़ा मेरी दुविधा का कारण भी बना। ये तो शुक्र मनाओ मेरे स्टाफ और बॉलीवुड की उन तमाम फिल्मों का जिनमें बुंदेलखंडी या फिर उससे मिलती जुलती भाषाओं का प्रयोग किया गया। मेरा तो चलो.. जैसे-तैसे गुज़ारा करते हुए काम चल गया मगर ये सोचो कि बुंदेलखंडी या ऐसी ही अन्य किसी भाषा को बिल्कुल भी ना जानने वाले हिन्दी किताबों के शौकीन पाठकों का क्या होगा? कैसे वो किसी कहानी या उपन्यास के असली मर्म याने के भीतरी तहों तक पहुँच पाएँगे?

वैसे..एक सुझाव है तो सही कि या तो ऐसे संवादों को हिन्दी मिश्रित स्थानीय भाषा में लिखा जाए। या फिर दो किरदारों में से कम से कम एक किरदार स्थानीय भाषा के बजाए हिंदी में बात करे। एक अन्य तरीका यह भी हो सकता है कि स्थानीय भाषा के सभी संवादों के हिंदी अनुवाद भी साथ साथ दिए जाएँ।

संग्रहणीय क्वालिटी के इस ८८ पृष्ठीय लघु उपन्यास के पेपरबैक संस्करण को छापा है शिवना पेपरबैक्स ने और इसका मूल्य महज़ १२५/- रखा गया है जो कि किताब की क्वालिटी एवं कंटैंट को देखते हुए बहुत ही कम है। आने वाले सुखद भविष्य के लिए लेखिका तथा प्रकाशक को अनेकों अनेक शुभकामनाएँ।

000

छोड़ आये हम वो गलियाँ

सलिल वर्मा

'"अटकन चटकन" उपन्यास लिखा है वंदना अवस्थी दुबे ने और इसके प्रकाशक हैं शिवना प्रकाशन। कुल जमा ८८ पृष्ठों का यह उपन्यास मेरी नज़र से देखें तो एक रोशनदान है जिससे झाँकते हुए मैं उन गलियों का सफ़र तय कर पाता हूँ जिसके बारे में गुलज़ार साहब ने अपनी एक नज़्म में कहा था – छोड़ आए हम, वो गलियाँ!

उपन्यास का ताना-बाना वह शहर या गाँव है जिसका नाम वंदना जी ने ग्वालियर या झाँसी भले लिखा हो, लेकिन वह आज से मात्र चार पाँच दशक पहले का कोई भी गाँव या शहर हो सकता है और स्थान उस गाँव या शहर के एक सम्पन्न खेतिहर परिवार की हवेली। एक ऐसी हवेली जिसमें दालान है, आँगन है, रसोई है, छत है, कई कमरे हैं और बहुत सारे लोग बसते हैं। इस उपन्यास की कहानी दालान को छोड़कर (ज़रूरत के समय थोड़ा बहुत इण्टरफ़ेरेंस को छोड़कर) बाक़ी तमाम जगहों की है, इसलिए इसके किरदार औरतें और बच्चे हैं। उपन्यास को पढ़ते हुए हमारी उम्र के सभी लोगों को ऐसा लगता है कि वे अपनी दादी, बुआ, मौसी, चाची, काकी और शायद अपनी माँ से मिल रहे हैं।

उपन्यास की केंद्रीय पात्र सुमित्रा जी और कुंती हैं, जिन्हें वंदना जी ने अपने पिता जी के साथ यह उपन्यास समर्पित भी किया है। सुमित्रा के साथ 'जी' का और कुंती के साथ सिर्फ नाम का सम्बोधन क्यों किया गया है यह बात उन्होंने स्पष्ट नहीं की। लेकिन हमारे जीवन में कुछ लोग होते ही इतने सीधे-सादे हैं कि उनको जी कहकर सम्बोधित किये बिना नहीं रहा जा सकता। सुमित्रा जी भी शायद उसी मिट्टी की बनी हुई थीं। दो सगी बहनें, लेकिन एक दूसरे की कार्बन कॉपी यानि शक्ल सूरत से लेकर सीरत तक में एक कार्बन की तरह काली और दूसरी बिल्कुल सफ़ेद। संयोग से दोनों बहनें एक ही घर में ब्याही जाती हैं और फिर शुरू होती है महाभारत की एक श्रृंखला... घटना दर घटना जो मायके से लेकर ससुराल तक और एक पीढ़ी से दूसरी

पीढ़ी तक चलती जाती है। यह महाभारत वास्तव में संयुक्त पारिवार के बीच फलते फूलते कलह का एक ऐसा उदाहरण है, जिसके साक्षी हम सब रहे होंगे अपने बचपन में और यदि हम कहें कि हमने ऐसा कभी देखा सुना नहीं, तब या तो हम झूठ बोल रहे हैं या फिर हमने बचपन जिया ही नहीं। ख़ैर उपन्यास का अंत, जैसा कि हम सब देखना चाहते हैं, उसी तरह हुआ – और सब सुख-शांति से रहने लगे!

उपन्यास में वर्णित सारी घटनाएँ कुंती के इर्द-गिर्द घूमती हैं और उसी से जुड़े सभी किरदार सामने आते जाते हैं। इसलिये इस उपन्यास की हीरो कुंती ही है, क्योंकि इसके चरित्र के बहुत सारे शेड्स हैं, बल्कि जो भी किरदार उसके सामने आता है उसे एक नया रंग देकर जाता है और आख़िर में उन सभी रंगों को ख़ुद में आत्मसात् कर, कुंती का किरदार पूरी तरह काला हो जाता है। उपन्यास की शुरूआत से ही मेरे मन में कुंती की जो छवि बनती जाती है वह है शेक्सपियर के मशहूर नाटक ऑथेलो के पात्र इयागो की, जिसे साहित्यकार निरुद्देश्य खलनायक की संज्ञा देते हैं। कुंती भी जितने प्रपंच रचती है, उसका उद्देश्य न तो स्वयम का वर्चस्व सिद्ध करना होता है, न किसी को नीचा दिखाना, किंतु उसका परिणाम अवश्य यह होता है कि कोई भी कुंती से उलझना नहीं चाहता। इसे कम से कम मेरे विचार में न तो कुंती के झगड़ने का उद्देश्य माना जा सकता है, न उपलब्धि। और जैसे जैसे कहानी आगे बढ़ती है, लगता है कि आगे चलकर कुंती विश्वम्भर नाथ शर्मा "कौशिक" की कहानी 'ताई' की रामेश्वरी सी होगी। लेकिन कुंती का अनोखापन उसे कुंती के रूप में ही निखारता है जो वंदना अवस्थी जी की शानदार क़िस्सागोई की कला का प्रमाण है।

पूरे उपन्यास में कुंती के प्रपंच और षड्यंत्रों की बहुतायत है, लेकिन ग़ौर से देखा जाए तो संयुक्त परिवार के मध्य इस प्रकार चार बर्तनों के बीच ख़ड़कने की आवाज़ें होती रहने से अधिक नहीं... हाँ कभी-कभी इन बर्तनों का टकराना कुछ ज़्यादा ही तेज़ हो जाता है जो काँच के टूटकर बिखरने और चुभने सा लगने लगता है और खड़कना शोर की तरह तीखा और कर्कश भी लगने लगता है। लेकिन यही तो संयुक्त परिवार के बीच की मिर्ची और शक्कर का संगम है।

"अटकन चटकन" की भाषा में बुंदेलखण्ड की चाशनी घुली हुई है, इसलिये कुंती के संवाद भी कानों में मिश्री घोलते हैं। हर किरदार अपनी ज़ुबान में बात करता है, जिस पर उपन्यासकार की भाषा का कोई भी प्रभाव नहीं दिखाई पड़ता। लेखन शैली में एक ऐसा बहाव है कि पढ़ना शुरू करते ही पाठक उपन्यास के साथ बहता चला जाता है और बिना अंत तक पहुँचे थमता नहीं। वर्णन इतना जीवंत है कि घटनाएँ काग़ज़ पर लिखे हरफों में नहीं, आँखों के सामने घटती हुई "दिखाई" पड़ती हैं... कोई व्यर्थ का वर्णन नहीं और कोई बनावटी घटनाक्रम नहीं।

"अटकन चटकन" उपन्यास वंदना अवस्थी दुबे के लेखन कौशल का अद्भुत नमूना है। वे अपने परिचय में कहती हैं कि उन्हें विषय के रूप में विज्ञान ही पढ़ना अच्छा लगता था, सो विज्ञान की छात्रा रहीं, स्नातक तक। एक हवेली के अंदर की दुनिया का इतना सूक्ष्म निरीक्षण इसी बात का प्रमाण है। एक विज्ञान की छात्रा का एक सामाजिक दस्तावेज़ जो परिवार के हर मनोवैज्ञानिक पहलू को उजागर करता है और जिसका नाम है – अटकन चटकन!

000

आरंभ से अंत तक बांधे रखता है

डॉ. अभिलाषा द्विवेदी

अटकन-चटकन यह शब्द युग्म पढ़ने और सुनने में बहुत सहज और जाना पहचाना सा लगता है। वंदना जी की यह रचना पढ़ते हुए भी भाषा और भाव के दृष्टिकोण से बहुत सहज और कथानक की पृष्ठभूमि परिचित सी ही लगती है।

मेरे विचार से प्रत्येक व्यक्ति के साथ जीवन में बहुत सारी कठिनाइयों और अप्रिय परिस्थितियों या रुक्ष संबंधों के कारण मन में कुछ दरारों सी उभरती हैं जो मन की चटकन होती है। बावजूद इसके वहाँ कुछ ऐसे तत्व तत्व होते हैं जो व्यक्ति को उन सबसे पूरी तरह दूर नहीं होने देते। यानी कि उसे रोके या कहें तो अटका के रखने वाली अटकन होती हैं।

यह पूरी कहानी ऐसी अटकन-चटकन के मनोभावों से सराबोर है। जो इस गद्य रचना को सरस भावनात्मक लय प्रदान करती है।

रचनाकार के रूप में वंदना जी ने मानवीय मनोविज्ञान के सभी आयामों के साथ पूरा न्याय किया है। साथ ही प्रत्येक चरित्र के व्यक्तित्व का विश्लेषण इतना सुस्पष्ट है कि पाठक उसे बड़ी सहजता से समझ कर उस चरित्र से जुड़ाव अनुभव करने में सक्षम होंगे।

जीवन की विभिन्न घटनाओं, व्यक्ति के गुण-दोषों के सामाजिक ही नहीं बल्कि मानसिक और उसका व्यक्तित्व विकास पर बड़ा प्रभाव पड़ता है। लेखिका ने उस विज्ञान को सहजता से साहित्य में ढाला है।

मेरे लिए अक्सर रचनाओं की समालोचना साफ़गोई से बता पाना बहुत कठिन होता है। क्योंकि कहानी, कविता, उपन्यास आदि साहित्य के क्षेत्र में लेखन को मैं मौलिक शोध कार्य से कम नहीं आँकती। और एक अच्छे कथा साहित्य में एक के बाद एक दृश्यों को प्रवाहित होना चाहिए। प्रत्येक दृश्य का प्रयोजन स्पष्ट होना चाहिए और अगला दृश्य उसका तर्कपूर्ण परिणाम। साहित्य में दृश्यों और रसों की प्रवाहशीलता ही उसके समालोचना का प्रतिमान है। अटकन-चटकन के बारे में मेरे मन में कोई हिचकिचाहट नहीं कि यह उस मानक पर सफल है।

कहानी का लक्ष्य या यूँ कहें कि उसके मुख्य चरित्र प्रतिक्रियावादी होने की अपेक्षा सक्रिय हो तो पाठक उससे अधिक जुड़ पाते हैं। और अटकन-चटकन की सबसे बड़ी विशेषता ये है कि इसमें दोनों ही रंग साथ-साथ दोनों बहनों के किरदार में दिखाई पड़ते हैं। जो इसे और भी रोचक बना देता है।

लक्ष्यों के साथ टकराव, पात्रों की प्रतिद्वंद्विता और उस प्रतिद्वंद्व में उतरने की शक्तिशाली अभिप्रेरणा को आरंभ में ही बड़ी सुंदरता से स्थापित किया गया है। मुख्य पात्र के लक्ष्य के साथ किसी दूसरे पात्र, या अवरोध

को जोड़ते हुए कथानक अपने दृश्य में संघर्ष और द्वंद्व की ओर जाता है। जो पढ़ते हुए दृश्यों की सहज अनुभूति होती है।

पुस्तक को पढ़ते हुए दृश्यों की त्रासदी, पात्रों की सफ़लता - असफ़लता, विवेक, विचारशीलता और उन सबके पूर्वानुमान के बीच लयबद्धता ऐसी है कि मानों पाठक के लिए प्रतिक्रिया के कुछ पल दे रही हो। यह किसी भी पाठक के लिए अत्यंत रोचक व अद्‌भुत अनुभव होता है।

अटकन-चटकन पाठकों को चिंतन की ओर भी अग्रसारित करती है। कहानी के दृश्य और पात्र सहज पथ से न जाकर अंत तक जिज्ञासा के लयात्मक प्रवाह को बनाए रखते हैं। यह रचनाकार की बड़ी सफ़लता है।

मेरे विचार में लेखन एक उल्लास वाली परिपूरक (complimentary) प्रक्रिया है। जहाँ संपादन की अत्यंत महत्वपूर्ण भूमिका है। इस मोर्चे पर भी अटकन-चटकन सफल है।

मैं साहित्यकार नहीं! हमारे शोध के मापदंडों बड़े नपे-तुले होते हैं, ऐसा मुझे लगता है। वहाँ प्रेक्षण, विश्लेषण, परिणाम और सिद्धांत के टूल हैं। इसलिए साहित्य की समालोचना के इन प्रतिमानों से मेरा लेखन मुक्त है। तो एक साहित्यिक रचना के बारे में बिना किसी दुविधा के पाठक के रूप में साफ-साफ अपनी बात कह सकती हूँ।

यह आपको आरंभ से अंत तक बाँधे रखती है। इसकी कहानी अत्यंत सहजता से जटिल मानवीय मनोभावों का विश्लेषण करते हुए हमारे मन में चिंतन पैदा करती है। सही-ग़लत का विश्लेषण करने को प्रेरित करती है और कहानी के पात्रों के प्रति अंतत: सहानुभूति का बोध होता है। और कहीं भी बीच में नीरसता या आशाहीनता का भाव नहीं आता।

कथानक के बारे में लिखने से बाद में पुस्तक पढ़ने वालों की उत्सुकता कम हो जाती है।

अंत में यह कहूँगी कि उपरोक्त का सार यह है कि अटकन-चटकन एक ऐसी पुस्तक है, जो कोई भी पढ़ कर आनंदित ही होगा।

000

नई पुस्तक

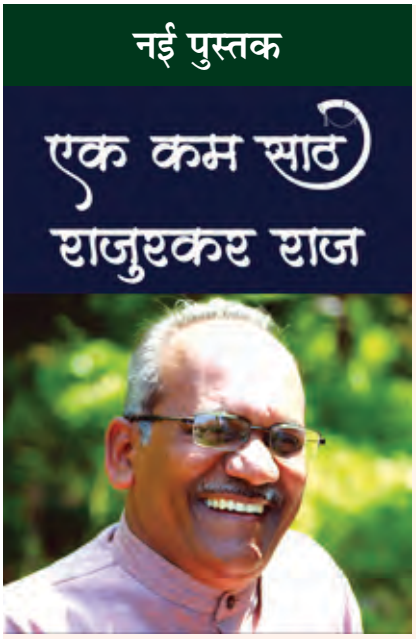

एक कम साठ राजुरकर राज

(जीवनी)

लेखक : रामराव वामनकर

प्रकाशक : शिवना प्रकाशन, सीहोर, मप्र

वरिष्ठ साहित्यकार राजुरकर राज की जीवनी साहित्यकार रामराव वामनकर द्वारा लिखी गई है तथा शिवना प्रकाशन से पिछले दिनों प्रकाशित होकर आई है। दुष्यंत पांडुलिपि संग्रहालय के निदेशक के रूप में राजुरकर राज ने जो महती कार्य किया है उसकी झांकी इस पुस्तक में नज़र आती है। साहित्कारों के हितार्थ, साहित्यकारों के साथ और साहित्यकारों के बाद राजुरकर राज की यह गाथा उनके व्यक्तित्व और जीवन का ऐसा विहंगम चित्रण है जो बरबस ही सबको अपनी ओर आकर्षित करता है। जो वांङमय तथा साहित्य के उपासकों के लिए जी रहे हैं। और उनकी स्मृतियों को अक्षुण्ण बनाए रखने के लिए प्रत्येक परिस्थिति में, सतत् संघर्षरत हैं। वह अनेक बाधाओं के होते हुए भी धीरता का परिचय देते हुए निरंतर आगे बढ़ते जाते हैं। मार्ग में अवरोधों के आने पर भी वह तत्क्षण आशाओं के दीप जलाकर कर्ममथ पर गतिमान बने रहते हैं। बेगानी शादी में दीवाने इस अबदुल्ला के साथ उनका परिवार भी कर्मक्षेत्र में सन्नद्ध खड़ा नज़र आता है। वह आकाशवाणी में कार्यरत हैं। उल्लेखनीय तथ्य तो यह है कि साहित्य के लिए इतना सब करते हुए भी अनेक व्यस्तताओं और हज़ार दुश्वारियों के होते हुए भी वह अपने कर्त्तव्यों के साथ कोई कोताही नहीं बरतते हैं।

साहित्य एवं साहित्य-सृजकों के लिए समर्पित, इस व्यक्ति के जीवन के विविधवर्णी पृष्ठ, जो साहित्य से यत्किंचित संबंध रखने वाले प्रत्येक व्यक्ति के लिए प्रेरणास्पद एवं पठनीय है। इस पुस्तक में लेखक ने एक साहित्यसेवी का सहज भाषा में रोचक, मर्मस्पर्शी और मनोरम चित्रण प्रस्तुत किया है। जिसे पढ़ कर साहित्य सेवा के नए स्वरूप का उद्‌घाटन होता है।

जीवनी लेखक रामराव वामनकर पुस्तक के संबंध में कहते हैं- "किसी भी व्यक्ति के जीवन पर केन्द्रित लेखन तब तक सम्भव नहीं है जब तक वह अपने संबंध में, स्वयं न लिखे अथवा लिखने वाले को विस्तृत जानकारी उपलब्ध न करा दे। बहुत से तथ्य उसके नजदीकी व्यक्तियों से प्राप्त करना पड़ता है। इस पुस्तक के लेखन के लिए भी ऐसा ही किया गया है। मैंने जो भी लिखा वह राजुरकर राज उनके पिता श्री भैयालाल राजुरकर अथवा करुणा जी और कुछ अन्य महानुभावों द्वारा प्रदत्त जानकारी के अनुसार लिपिबद्ध किया गया है, अन्यथा कोई, व्यक्ति अपनी आत्मकथा जितनी अच्छी तरह स्वयं लिख सकता है, वह सब कोई दूसरा व्यक्ति नहीं लिख सकता। मुझे इस बात की प्रसन्नता है और संतोष भी कि राजुरकर राज ने इस कृति का आद्योपान्त पठन-पाठन किया है। साथ ही कतिपय संशोधन भी किये हैं, इस प्रकार परिमार्जन होने से इस पुस्तक की उपादेयता और विश्वसनीयता में अभिवृद्धि सुनिश्चित हो चुकी है।"

000

केंद्र में पुस्तक

प्रेम

(कहानी संग्रह)

समीक्षक : दीपक गिरकर, डॉ. सीमा शर्मा, मीरा गोयल

लेखक : पंकज सुबीर

प्रकाशक : शिवना प्रकाशन, सीहोर

दीपक गिरकर
28-सी, वैभव नगर, कनाडिया रोड,
इंदौर- 452016
मोबाइल- 9425067036
ईमेल- deepakgirkar2016@gmail.com

डॉ. सीमा शर्मा
शास्त्रीनगर, मेरठ (उत्तर प्रदेश)
पिन–250004
मोबाइल- 9457034271
ईमेल- sseema561@gmail.com

मीरा गोयल
211 Landreth Ct., Durham, NC-27713, USA
मोबाइल- 919-452-3831
ईमेल- madeera.goyal@gmail.com

निश्छल और सहज प्रेम की कहानियाँ

दीपक गिरकर

हिन्दी के सुपरिचित कथाकार और प्रसिद्ध उपन्यास "अकाल में उत्सव" और "जिन्हें जुर्म-ए-इश्क़ पे नाज़ था" के लेखक पंकज सुबीर एक संवेदनशील लेखक होने के साथ एक संपादक भी हैं। हाल ही में इनका नया कहानी संग्रह "प्रेम" प्रकाशित होकर आया है। पंकज जी के लेखन का सफ़र बहुत लंबा है। पंकज जी की प्रमुख रचनाओं में "ये वो सहर तो नहीं", "अकाल में उत्सव", "जिन्हें जुर्म-ए-इश्क़ पे नाज़ था" (उपन्यास), "ईस्ट इंडिया कम्पनी", "कसाब.गांधी एट यरवदा.इन", "महुआ घटवारिन और अन्य कहानियाँ", "चौपड़े की चुड़ैलें", "होली" (कहानी संग्रह), "अभी तुम इश्क़ में हो" (ग़ज़ल संग्रह), यायावर हैं, आवारा हैं, बंजारे हैं (यात्रा संस्मरण), "बारह चर्चित कहानियाँ","विमर्श दृष्टि", "विमर्श - नक्काशीदार केबिनेट", "विभोम – स्वर", "शिवना साहित्यिकी" त्रैमासिक साहित्यिक पत्रिकाएँ (संपादन) शामिल हैं। कई पुरस्कारों और सम्मानों से सम्मानित पंकज जी की कहानियाँ प्रमुख साहित्यिक पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित होती रही हैं। पंकज जी जीवन के छोटे-छोटे प्रसंगों को लेकर कुशलता से कहानियाँ रचकर अपनी सर्जनात्मक शक्ति का परिचय देते हैं। ये अपने अनुभवों को बड़ी सहजता से कहानी में ढाल लेते हैं। कहानी में पात्रों का चरित्र चित्रण इस प्रकार करते हैं जैसे कि वे उन पात्रों के साथ रहे हो। इन कहानियों में अनुभूतिजन्य यथार्थ है। कथाकार पंकज सुबीर ने अपने आत्मकथ्य में लिखा है "असल में यह सारी कहानियाँ बिल्कुल प्रारम्भिक दौर की कहानियाँ हैं। उस समय की कहानियाँ जब मैं शायद कॉलेज में पढ़ता था और कुछ तब की हैं, जब कॉलेज बस अभी छूटा ही था। इसीलिए यह बहुत कच्ची कहानियाँ हैं।" मुझे इस संग्रह की अधिकांश कहानियाँ सशक्त लगी। इस कहानी संग्रह में २३ कहानियाँ हैं। इन प्रेम कहानियों में त्याग और बलिदान के आदर्श मिलते हैं। ये कहानियाँ स्वार्थरहित निश्छल प्रेम की सघनता, गहरी संवेदना और आत्मीय प्रेम की जीवंतता को उजागर करती हैं। ये कहानियाँ पाठक को प्रेम की अनुभूति के सागर में गोते लगाने के लिए मजबूर करती हैं। लेखक इन कहानियों में स्मृति के पन्नों में पहुँचकर वहाँ के दृश्य साकार कर देते हैं। प्रेम के विभिन्न रंगों में लिपटी इन कहानियों में प्रेम के निश्छल, सरल, सहज रूप की अभिव्यक्ति है। इस संग्रह की हर कहानी अपने अनूठेपन से पाठक के मन को छू लेती है।

"रंगून क्रीपर", "मुट्ठी भर उजास", "खंडित ताजमहल" बचपन में अंकुरित निश्छल प्रेम की अनुभूतियों की कहानियाँ हैं। "रंगून क्रीपर" फ्लैश बैक शैली में लिखी निर्मल और पूजा के आत्मीय प्रेम की उत्कृष्ट कोटि की अनूठी कहानी है जो कथ्य और अभिव्यक्ति दोनों ही दृष्टियों से पाठकीय चेतना पर अमिट प्रभाव छोड़ती है।

इस कहानी में मधुमालती के फूलों को प्रतीक के रूप में प्रयोग किया गया है। कथाकार ने पूजा की संवेदनाओं, बचपन की स्मृतियों और निश्छल प्रेम को स्वाभाविक रूप से निरूपित किया है। "नसीम-ए-सुब्ह" सुधाकर और नसीम के अमर प्रेम की मर्मस्पर्शी कहानी है। कथाकार ने कथानायिका नसीम के कथन को बड़े ही स्पष्ट तरीके से शब्दबद्ध किया है – "मैं आपको छोड़कर जा ही नहीं सकती, अगर चली भी गई तो नसीमे-सुबह बनकर रोज़ आपसे मिलने आया करूँगी। वहीं, उसी जगह जहाँ आपसे पहली बार मिली थी उसी झील के किनारे। आप रोज़ सुबह वहीं आया कीजिएगा। मैं भी नसीमे-सुबह बनकर रोज़ आऊँगी और आपको छूकर एहसास दिलाऊँगी की मैं कहीं नहीं गई आपके साथ ही हूँ।" "गुलमोहर" में राजेश और सुजाता के सात्विक प्रेम का प्रतिबिंबन है। गुलमोहर के चटख़ लाल–सिंदूरी फूल सुजाता के जीवन में विश्वास और उमंग को जगाते हैं। इस कहानी में कथाकार ने राजेश के माध्यम से प्रेम संबंधी बौद्धिक चिंतन अभिव्यक्त किया है - "कोई होता है जिसको कड़ी धूप में खड़े देखकर हमें लगता है कि हम गुलमोहर बनकर उस पर छा जाएँ, बस वही प्रेम होता है। जब जीवन में कड़ी धूप खिली हो, तब आप किसी के लिए गुलमोहर बन सकें तभी आपको उससे प्रेम है। वह भावना प्रेम नहीं होती जो खुशनुमा मौसम में तो गुलाब की तरह खिले, पर धूप के चटख होते ही झुलस जाए, ख़त्म हो जाए।" "दुनिया की सबसे सुन्दर स्त्री" दिनेश और उसकी पत्नी रमा के निश्छल प्रेम की कहानी है। "मैं बेला ही हूँ मास्साब" में पंकज जी ने बेला और सुभाष के माध्यम से आंतरिक प्रेमानुभूति को चित्रित किया है। कथानायक सुभाष की प्रेमानुभूति को लेखक ने इस प्रकार उजागर किया है - "बेला तुम्हारे पास तो मेरे दिए हुए गजरे थे भी लेकिन मेरे पास तो तुम्हारी स्मृतियों के अलावा कुछ भी नहीं था, मैं उन्हीं के सहारे जीना चाहता था। और वैसे भी मैं उन स्मृतियों को, उन अनुभूतियों को अपने अंदर हमेशा महसूस करना चाहता था, इसीलिए एकाकी हो गया, मैंने तुम्हें छोड़ा नहीं है बेला, तुम आज भी मेरे साथ हो। कामकाज की आपाधापी के बीच रिश्तों में बची हुई ताज़गी का चित्र प्रस्तुत करती है इस संग्रह की कहानी "अतीत के पन्ने"। डाक बंगले के पीछे झील के किनारे पर बैठकर प्रिया को अपने बचपन के दिनों की स्मृतियाँ ताज़ा हो जाती हैं। लेखक ने "काश!" में पात्रों का बारीक मनोविश्लेषण कर के कहानी को भावपूर्ण और जीवंत रूप में प्रस्तुत किया है। इस कहानी का कथानायक विन्नी को अपने प्यार का इज़हार तब करता है जब बहुत देर हो चुकी होती है। विन्नी कहती है "नोट्स तो तुमने मुझसे पाँच-छ: साल पहले भी माँगे थे, जो कुछ अब लिखा है, वो तब क्यों नहीं लिखा था। मैं पाँच साल से अपने नोट्स पर यही शब्द तलाशती रही, पर अब तो बहुत देर हो गई।" "राहों पे नज़र रखना" की नायिका मंजरी को अकेले ही जीवन बिताना पड़ता है। वह अपने प्रेमी संभव की प्रतीक्षा करती रहती है। "चाँद की खिड़कियाँ" अपने प्रेम पर अटूट विश्वास को दर्शाती रोचक प्रेम कहानी है जो पाठकों को काफी प्रभावित करती है। इस कहानी के अंत में कथानायिका प्रतिमा अपने प्रेमी सुधांशु के लिए अपने दिल की खिड़कियाँ खोल देती है। कथाकार ने सुधांशु के आत्मीय प्रेम को प्रतीकात्मकता के साथ रेखांकित किया है - सुधांशु ने प्रतिमा से कहा "प्रतिमा चाँद तो अपनी खिड़कियाँ हमेशा खुली रखता है। अगर आप चाहते हो कि चाँदनी आपके घर में आए, तो आपको अपने घर की खिड़कियाँ खोलनी पड़ेंगी, नहीं तो हारकर चाँद आपके घर के तरफ़ वाली खिड़कियाँ खोलना बंद कर देगा।" "क्षितिज की राह पर कहीं वो नीड़" देबू सर और विभा के निश्छल प्रेम और त्याग की एक रोमांचक कहानी है। "खंडित ताजमहल" सीमा और वारुणी की एक रोचक, अद्‌भुत प्रेम कहानी है। लेखक ने सीमा और वारुणी के सहज प्रेम को चित्रित किया है। निश्छल प्रेम किसी भी सामाजिक बंधन एवं विधान से परे है। प्रेम का उम्र, जाति और ऊँच–नीच से कोई संबंध नहीं है। "मेरा गीत अमर कर दो" कहानी का कैनवास बेहतरीन है। कथानायक साहिल की लिखी कविता गरिमा के मीठे स्पर्श पाकर जीवंत हो जाती है। कथाकार ने प्रेम होने के प्रमाण और प्रेम की आवश्यकता को बखूबी रेखांकित किया है इस संग्रह की कहानी "सुनो माँडव" में। "युद्ध के हर दौर में प्रेम अपनी जगह तलाश लेता है। बल्कि युद्ध के ही दौर में प्रेम पूरी शिद्‌दत के साथ अपने होने के प्रमाण देता है। प्रेम की आवश्यकता ही युद्ध के दौर में होती है, शांति के दौर में नहीं"। (पृष्ठ १५६)

इस संग्रह की कहानियों के शीर्षक कथानक के अनुसार है और शीर्षक कलात्मक भी है। इन कहानियों में कुछ ऐसे चरित्र हैं जो अपनी संवेदनशीलता, निश्छल आत्मीय प्रेम और त्याग की भावना के कारण सदैव याद किए जाते रहेंगे। इनमें प्रमुख है "रंगून क्रीपर" कहानी का निर्मल, "नसीम-ए-सुब्ह" कहानी के सुधाकर और नसीम, "गुलमोहर" कहानी का राजेश, "मेरा गीत अमर कर दो" कहानी का साहिल, "मैं बेला ही हूँ मास्साब" कहानी का सुभाष, "क्षितिज की राह पर कहीं वो नीड़" कहानी के देबू सर और विभा, "मुट्ठी भर उजास" कहानी की बिन्नी, "मनी प्लाण्ट" कहानी की अदिति, "खंडित ताजमहल" कहानी की सीमा, "कागा सब तन खाइयो" कहानी के पंडित मिश्रीलाल। इन प्रेम कहानियों में तमाम विरोधी परिस्थितियों के बावजूद देह से परे निश्छल प्रेम की अनुभूतियों का गहरा पुट दिखाई देता है। इस संग्रह की अन्य प्रेम कहानियाँ "एक रात", "मुट्ठी भर उजास" "उदास शाम", "प्रेम क्या होता है?", "मैंने कहा था", "दिशाएँ", "लौट आओ समीर", "खिड़की" मन को छूकर उसके मर्म से पहचान करा जाती हैं।

पंकज जी की कहानियों में सिर्फ पात्र ही नहीं समूचा परिवेश पाठक से मुखरित होता है। स्थान और प्रकृति को बहुत ही निकट से परिचित होकर कथाकार इनका वर्णन रोचकता से करते हैं, इसी वजह से कहानियाँ पाठक को बहुत अधिक प्रभावित करती हैं। पंकज जी ने इस संग्रह की कहानियों में जितना महत्त्व इंसानी भावनाओं को दिया है, उतनी ही

मुस्तैदी से पेड़-पौधे, फूल, पक्षी, सूरज, चाँद, चाँदनी, धूप, नदी, झील, आकाश, आदि भी इन कथाओं में अपनी सहज उपस्थिति दर्ज कराते हैं। इन कहानियों को पढ़कर प्रेम को महसूस किया जा सकता है। प्रेम फूलों, नदियों, झरनों, झीलों, आकाश, पंछियों, चाँद, चाँदनी और खुशनुमा मौसम के समान है। कथाकार ने कहानियों के चरित्रों को परिवेश और परिस्थितियों के अनुसार ही प्रस्तुत किया है। लेखक सामाजिक और परिवेशगत प्रवृत्तियों के प्रति बेहद सजग और जागरूक है। लेखक इन कहानियों में आदर्श और यथार्थ का समावेश करके पात्रों की भीतरी हलचल सामने लाते हैं। तमाम तरह की प्रेमानुभूतियों से युक्त ये कहानियाँ प्रेम को नए दृष्टिकोण से कलात्मकता के साथ अभिव्यक्त करती हैं। प्रेम बिना किसी अपेक्षा के होता है जो किसी रिश्ते की माँग नहीं करता है। विवाह प्रेम को कसने की कसौटी भी नहीं है। मिलन ही प्रेम का अंतिम उद्देश्य नहीं है। प्रेम पूजा है, तपस्या है। प्रेम के विविध आयामों को इन कहानियों के पात्रों ने बहुत गहराई से समझा है।

पंकज जी के लेखन में भाषा का सौंदर्य, शब्दों का रख-रखाव और गुफ़्तार की शैली भी अति सुंदर निखार भरी है। संवेदनशील व उम्दा कथाकार पंकज सुबीर अपनी कहानियों में अपने पात्रों को पूरी आज़ादी देते हैं। कहानियों के पात्र अपने प्रेमी की ख़ुशियों में ही अपनी ख़ुशी तलाशते हैं। कहानियों के कथ्यों में विविधता है। सहज और स्पष्ट संवाद, घटनाओं, पात्रों और परिवेश का सजीव चित्रण इस संग्रह की कहानियों में दिखाई देता है। भाषा में चित्रात्मकता है। इस संग्रह की कहानियाँ पाठक के ज़ेहन में अविस्मरणीय छाप छोड़ जाती हैं। लेखक ने परिवेश के अनुरूप भाषा और दृश्यों के साथ कथा को कुछ इस तरह बुना है कि कथा खुद आँखों के आगे साकार होते चली जाती है। इनकी कहानियों के पात्र जेहन में हमेशा के लिए बस जाते हैं। बेशक "प्रेम" (कहानी संग्रह) एक पठनीय और संग्रहणीय कृति है।

000

समर्पण की कहानियाँ

डॉ. सीमा शर्मा

पंकज सुबीर वर्तमान साहित्य जगत् में एक सुपरिचित नाम हैं और अपनी किसी-न-किसी रचना, कभी उपन्यास तो कभी कहानी के कारण चर्चा में बने रहते हैं। इन दिनों 'हंस' नवम्बर २०२० अंक में प्रकाशित अपनी कहानी 'इलोई! इलोई! लामा सबाख़्तानी ?' को लेकर चर्चा में हैं। लेकिन मैं यहाँ बात कर रही हूँ आपके कहानी संग्रह 'प्रेम' की। समीक्ष्य संग्रह में पंकज सुबीर की प्रेम विषयक आरंभिक कहानियाँ संकलित हैं। प्रस्तुत संग्रह में कुल तेईस कहानियाँ हैं जो क्रमशः प्रकार हैं - रंगून क्रीपर, एक रात, नसीमे-ए - सुब्ह, गुलमोहर, दुनिया की सबसे सुंदर स्त्री, अतीत के पन्ने, काश..... !, राहों पे नज़र रखना, चाँद की खिड़कियाँ, मेरा गीत अमर कर दो, मैं बेला ही हूँ मास्साब, क्षितिज की राह पर कहीं वो नीड़, मुट्ठी भर उजास, उदास शाम, प्रेम क्या होता है....., मैंने कहा था, दिशाएँ, मनी प्लांट, खंडित ताजमहल, लौट आओ समीर, खिड़की, सुनो माँडव, कागा सब तन खाइयो..... !

इनमें से कई कहानियाँ विभिन्न प्रमुख पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित हो चुकी हैं लेकिन इन्हें एक साथ पढ़ने और इनके अस्तित्त्व को बचाए रखने के लिए एक संग्रह के रूप में लाना आवश्यक था। इन कहानियों के सन्दर्भ में पुस्तक की भूमिका के रूप में लिखा गया लेखक का यह कथन उल्लेखनीय है- "असल में यह सारी कहानियाँ बिलकुल प्रारंभिक दौर की हैं। उस समय की कहानियाँ जब मैं शायद कॉलेज में पढ़ता था और कुछ तब की हैं, जब कॉलेज बस अभी छूटा ही था इसलिए यह बहुत कच्ची कहानियाँ हैं। यह शुरूआत की कहानियाँ है। इनका किताब के रूप में पाठकों के सामने लाने के अपने ख़तरे हैं।" लेखक की बात अपनी जगह ठीक है कुछ और लोगों को भी ऐसा लग सकता है किन्तु मेरी यहाँ लेखक से सहमति नहीं है। मेरे लिए ये कहानियाँ इसलिए पठनीय हैं क्योंकि आकार में छोटी और सरल सी इन कहानियों में प्रेम, समर्पण और त्याग जैसे उदात्त भाव हैं। मेरे लिए प्रेम व स्नेह जैसे उदात्त भाव ही जीवन को आकर्षक बनाने वाले तत्व हैं।

एक युवा लेखक द्वारा लिखी गईं ये कहानियाँ, यूँ तो हर वर्ग के लिए पठनीय हैं। सरल सी शैली में लिखी गईं मधुर सी कहानियाँ हर वर्ग को अपनी और आकर्षित करती हैं पर मुझे लगता है कि इस संग्रह की कहानियाँ युवावस्था की और बढ़ रहे आज किशोरों के लिए बहुत उपयोगी हो सकती हैं। ये उनके मन का परिष्कार कर सकती हैं। वर्तमान में 'प्रेम' के नाम पर कई तरह की विकृतियाँ देखने को मिल रही हैं। उदाहरण के रूप में अम्लघात जैसी भयावह घटनाओं को देख सकते हैं। इन दिनों संचार माध्यमों पर सूचनाओं का अंबार है तथा सब कुछ किशोरों की पहुँच में है। पर वे इसमें से क्या और कितना ग्रहण कर रहे हैं कहना कठिन है? किंतु यह तो स्पष्ट है कि किशोरों और युवाओं का बहुत बड़ा वर्ग उचित मार्ग से भटका हुआ है और इसका प्रभाव भी समाज में स्पष्ट दिखाई दे रहा है। ऐसे में कुछ तो ऐसा हो जो उन्हें दूसरे विकल्प दे या उनकी सोच को एक नई दिशा दे। यह कहानी संग्रह यही करता हुआ जान पड़ता है। यहाँ मेरे कहने का तात्पर्य यह नहीं है कि ये कहानियाँ उपदेशात्मक हैं किन्तु इनकी संरचना ऐसी है कि पाठक के मन में उदात्त भाव उतपन्न करती हैं।

संग्रह की कई कहानियों में जैसे प्रेम को परिभाषित करने का प्रयास किया गया है और प्रेम को जिस तरह से परिभाषित किया है वह महत्त्वपूर्ण है। यहाँ 'गुलमोहर' कहानी के नायक का यह कथन विचारणीय जान पड़ता है- "ये पेड़ देख रही हो? यही है प्रेम, जब गर्मी की तपन ने सब को झुलसा दिया है, जला दिया है, तब उस गर्मी को चुनौती देता हुआ खिला है गुलमोहर। गर्मी जितनी ज़्यादा प्रचंड होगी उतनी ही ज़ोर से खिलेगा। यही तो प्रेम है जब ज़िंदगी में कड़ी धूप हो, तब जो गुलमोहर आप के लिए खिल उठे वही आपका प्रेम है, सर्दियों के खुशगवार मौसम में खिलने वाला गुलाब प्रेम नहीं होता।" (पृ.४४)

'कागा सब तन खाइयो' कहानी का नायक 'पंडित मिश्रीलाल उपाध्याय' प्रेम की इस

परिभाषा को चरितार्थ करता हुआ दिखाई देता है। इस कहानी की अंतिम पंक्तियाँ दृष्टव्य हैं- "मैं पंडित मिश्रीलाल उपाध्याय पुत्र स्वर्गीय श्री पंडित गिरजा शंकर उपाध्याय निवासी ग्राम दौलतपुर पूरे होशो-हवास में वसीयत करता हूँ कि मेरी मृत्यु के पश्चात् मेरी दोनों आँखों को तुरंत निकलवा कर गाँव के श्री मणिराम की बेटी उर्मिला के पति से चंद्रशेखर को लगवा दिया जाए। इसे ही अंतिम इच्छा माना जाए।"(पृ.१६८) 'पंडित मिश्रीलाल उपाध्याय' के चारित्रिक क्रमिक विकास को देखें तो यह एक शीर्ष को प्राप्त करता है। एक अति साधारण पात्र जो कहानी का अंत आते-आते असाधारण बन जाता है। कदाचित यही प्रेम की विशेषता है जो साधारण मनुष्य को असाधारण बनाने की सामर्थ्य रखती है।

लेखक ने इन प्रेम कहानियों को भावुक और कमज़ोर कहानियों के रूप में संबोधित किया है लेकिन मेरी इस बात से कोई सहमति नहीं है। प्रेम कोई व्यवसाय नहीं है जिसके लिए बहुत समझदार होने की आवश्यकता है। यहाँ हानि-लाभ और हार-जीत जैसा भी कुछ नहीं। प्रेम में भावुकता कम और समझदारी अधिक या कहें स्वहित का भाव अधिक हो तो क्या ये सही होगा? कम-से-कम मैं तो ऐसा नहीं मानती।

इन कहानियों में आकर्षण है विकर्षण नहीं। इस संग्रह की सभी कहानियों के पात्रों को देखें तो इनमें एक भी पात्र ऐसा नहीं जिसमें छीनने का भाव दिखाई दे, बल्कि इन सभी में समर्पण का भाव ही दिखाई देता है। समीक्ष्य संग्रह की कहानियों के सभी पात्र भिन्न-भिन्न पृष्ठभूमि से आए हैं लेकिन इनके प्रेम का उदात्त रूप इन्हें एक ही स्तर पर ला खड़ा करता है। इन सभी के प्रेम के मूल में बस समर्पण है। धनी-निर्धन, शहरी-ग्रामीण, किशोर, युवा या बड़ी आयु के, स्त्री हों या पुरुष सभी पात्र एक जैसे दिखाई देते हैं - अपने प्रिय का हित चाहने वाले न कि अपना। ये कहानियाँ प्रेम के सच्चे स्वरूप को दर्शाती हैं। सिखाती हैं सच्चा प्रेम छीनने का नहीं त्यागने का भाव जागृत करता है। प्रेम अनुभूति है कोई भौतिक वस्तु नहीं। सर्वस्व निछावर कर देने वाले; 'कागा सब तन खाइयो..... ' के पंडित मिश्रीलाल उपाध्याय जैसे अति साधारण से दिखने वाले लोग इस दुनिया में बने रहेंगे एवं 'दुनिया की सबसे सुन्दर स्त्री' कहानी के नायक दिनेश जैसी दृष्टि जब तक बची रहेगी; प्रेम का सच्चा स्वरूप भी बचा रहेगा और यह पृथ्वी सुंदर लगती रहेगी। यहाँ पंकज सुबीर की ग़ज़ल की पंक्तियाँ उद्धृत कर रही हूँ- " घटा, सितारे, धनक, फूल, चाँद सब में वही / उसी के नूर की फैली हुई शुआएँ हैं।"

000

प्रेम के विभिन्न पक्षों की कहानयाँ

मीरा गोयल

प्रेम के रंग में सराबोर लाल गुलाबों वाली डलिया हाथ में लिया पंकज सुबीर अपनी बगिया में टहलने और विभिन्न पुष्पों का आनंद लेने के लिये आमंत्रित कर रहे हैं। इस संग्रह में प्राय: सभी कहानियाँ युवावस्था के प्रथम प्रेम की हैं, संभवत: लेखक भी इन प्रेमियों के हमउम्र रहे होंगे। पंकज जी ने जाने किस संकोचवश पाठकों को आगाह करना आवश्यक समझा कि ये प्रारंभिक कहानियाँ है, वैसी कोई अपरिपक्वता मुझे तो खोजे नहीं मिली।

पहली कहानी "रंगून क्रीपर" की नायिका पूजा महत्त्वाकांक्षी है, पड़ोसी मित्र निर्मल पढ़ाई में बहुत होशियार न होते हुए भी बहुत परिपक्व और समझदार युवक निकला। वह जीवन की वास्तविकता और सफलता का सुख किस निर्णय में होगा, समझता था और भावुक पूजा को भी समझाया। अगर अपनी लगन और मेहनत से पूजा निर्मल को भी डॉक्टर बना देती तो उसके प्रेम के लिये तो योग्य पात्र बन जाता पर कहानी बेहद कमज़ोर हो जाती। यह सत्य पंकज जानते थे, लेखन के अपने शुरूआती दिनों में भी। रंगून क्रीपर के बदलते रंगों की उपमा जीवन से करना कलात्मक लगा। बधाई! "एक रात" कहानी में पूर्व प्रेमिका के लिये कुछ कर सकने के सुख की भावना है, बगैर कुछ पाने की कामना के। "नसीम -ए- सुब्ह" सुधाकर और नसीम की प्रेम कहानी है, जो सुधाकर के जीवन में अपने नाम की तरह शीतल बयार सी आई और मात्र मधुर स्मृति और पीड़ा छोड़ कर प्रभु को प्यारी हो गई। "गुलमोहर", गर्मी की कड़ी धूप में खिलने वाला फूल। शीर्षक में कहानी का सार निहित है। "जब आप किसी के लिये गुलमोहर बन सकें, तभी आपको उससे प्रेम है।" "प्रेम प्रश्न नहीं पूछता सुजाता, वह तो केवल समर्पण करता है"। "अब त्याग की तुम्हारी बारी है।" "दुनिया की सबसे सुंदर स्त्री" में वस्तु नहीं, भावना की महत्ता की चर्चा है। "अतीत के पन्ने" राघव और प्रिया की प्रेम कहानी। सुंदर प्रकृति वर्णन पाठक को प्रेममय कर देता है। पर इच्छित वस्तु पा जाने के बाद उसकी चाहत कम हो जाती है। "काश!" "प्रथम दृष्टि का प्यार केवल किताबी या फ़िल्मी बातें नहीं हैं, ऐसा सचमुच भी होता है।" पर मौका चूक जाए तो वह दुबारा नहीं आता। "राहों पे नज़र रखना" गुलमोहर, झील, झिलमिलाती चाँदनी – प्रेम की प्रतीक्षा, पर मरीज़ों के प्रति कर्त्तव्य की प्रधानता की कहानी। "चाँद की खिड़कियाँ" कैरियर वुमन की भाग दौड़, स्वतंत्रता और शोहरत! जीवन का सरल आनंद पीछे रह जाता है। देर बहुत हो चुकी है पर प्रतिमा ने अपने हिस्से की आख़िरी चाँदनी को जी लेने का निश्चय किया। "मेरा गीत अमर कर दो" प्रेमी का कैंसर से निधन, प्रेमिका पीड़ित। "मैं बेला ही हूँ मास्साब", क्षण भर पूर्व आप जिसे जानते भी नहीं थे, वही आपके लिये सब कुछ हो जाता है। इसी शाश्वत सत्य को महसूस किया था ...सुभाष ने।

कहानियाँ पुराने समय की हैं तो पंकज अपने पाठकों को उस समय का वातावरण और सामाजिक स्थितियाँ भी समझाते चलते हैं। "मर्यादाओं की दहलीज़ें पार करना आज की तरह आसान नहीं था।" "चमेली की झूमती लतर और आसमान के सितारों ने मौन साक्षी हो कर यह दृश्य देखा था।" अत्यंत कोमल अभिव्यक्ति! पुरुष के लिये प्रेम एक घटना है, स्त्री के लिये उसके जीवन का पूरा इतिहास! "स्वर कंठ से न फूटा, आँखों से बह निकला।" स्त्री स्वभाव का सटीक विवरण! गहराते हुए अंधकार को चीर कर दौड़ती जा रही थी रेल, समय की तरह .... कहानी का

अंत अत्यंत प्रभावशाली है। चुने हुए कुछ शब्द सम्पूर्ण चित्र प्रस्तुत करते हैं।

"क्षितिज की राह पर कहीं वो नीड़" में सिद्धान्तवादी विभा की दुविधा और अंत में भावना के जीत की कहानी बड़े मनुहार से प्रस्तुत की गई है। रसायन शास्त्र की प्रोफ़ेसर प्रयोग से डर रही है। शिक्षक और शिष्य को प्रेम संबंध, के अपराध बोध से निकलने के लिये प्रो. सान्याल समझाते है - "भावनाओं, सिद्धान्तों से परे यथार्थ जीवन है। प्रयोग से ही नई उपलब्धि प्राप्त होती है।"

"मुट्ठी भर उजास", बिन्नी और अखिलेश, दो पड़ोसी बच्चों की अबोध प्रेम कहानी है। इस असफल प्रेम कहानी के शब्दों के चयन में कुछ तो ऐसा है, जिसे.... ...पढ़ते-पढ़ते कम्पन और दर्द महसूस हुआ, तो समझ में आया कि ये मेरे हृदय में हो रहा है। जब पढ़ने में मुश्किल होने लगी तो समझ में आया कि मेरी आँखें भर आईं हैं। यह लेखन शक्ति का प्रमाण है। "उदास शाम" में निराशावादी विचार की प्रधानता है। "आख़िरी सच अँधेरा ही है।" "अपराध से ज़्यादा पीड़ादायक होता है अपराध बोध।" गुरु पुत्री नेहा से छात्र तरुण का प्रेम करना, गुरु के विश्वास भंग का अपराध बोध- यह विरोधी स्थिति तरुण को विह्वल कर देती है। "बहुत ज़्यादा पीड़ा, वेदना से मन टूट जाता है, तो आँखें नहीं रोतीं, क्योंकि मन तो मर चुका होता है।" इस कहानी में बालक जब पूछता है, "सोनू भईया, "प्रेम क्या होता है?" "प्रेम वो होता है, जो किसी को दूसरे से जोड़ता है।"

कर्त्तव्य परायण, केयरिंग सोनू इस बीमार बालक की देख-भाल के लिये तैनात है, कम शब्दों में उतना ही बताता है जिससे उसकी जिज्ञासा शान्त हो जाए। स्नेह और विश्वास का संबल दे संवेदनशील सोनू लड़के को जीवन की आख़िरी कामना पूर्ण होने का एहसास करता है। सोनू के बालक के प्रति व्यवहार को प्रकृति वर्णन के माध्यम से प्रस्तुत किया है, जो हृदयस्पर्शी है। "रातरानी की मादक गन्ध परदे से अठखेलियाँ करती कमरे के अंदर आ रही हैं ...गर्मी से झुलसे पेड़ों को शाम की ठंडी हवा सहला रही है।.....पत्तियाँ कृतज्ञता वश झुकी जा रही हैं।"

"मैंने कहा था" कहानी पंकज सुबीर की कल्पना की ऊँची उड़ान की गाथा लगती है। समीर और राजीव की मित्रता को जिस ऊँचाई तक ले गए हैं और संगीता का अपने पति समीर के प्रति प्रेम और आत्म विश्वास, आज के ज़माने में हास्यास्पद सा लगता है। संगीता – "प्रेम का तो दूसरा नाम ही बेवकूफी है।" "उनकी खुशी से ज़्यादा ज़रूरी कुछ नहीं है।" "मैं ये लड़ाई जीतने के लिये ही लड़ रही हूँ।" इतना विश्वास किस बूते पर? ताली दोनों हाथों से बजती है! फिर दूसरे ही क्षण एक खयाल कौंधा- दैवीय चमत्कार भी तो हो सकता है! जीवन तो एक अनबूझ पहेली है ही। आगम का अज्ञान ईश का परम अनुग्रह! यही आशा और अज्ञान हमें हर सुबह नई ऊर्जा देता है। कर्मण्येवाधिकारस्ते ....राजीव और संगीता को अपनी आत्मा की पुकार सुनने का संतोष तो होगा। "दिशाएँ" में द्वंद्व है। दो प्रेमियों की चाहत की दिशा अलग-अलग, आधुनिक जीवन की समस्याओं में से एक है। कुछ पाना, कुछ खोना! "सिन्दूरी लाल फूलों से लदे गुलमोहर के वृक्ष, जैसे नव ब्याहता नदी के दोनों किनारों पर खड़ी हों। गुलमोहर और पगडंडी की प्रणय क्रीड़ा देख दिशाएँ स्तब्ध हैं।" प्रभावशाली विवरण – पास रह कर भी साथ नहीं!

"मनी प्लांट" में स्त्री के पितृसत्तात्मक जीवन की विवशता की करुण झाँकी है। पुत्री अदिति समाज में सफ़ल है पर सुखी नहीं, जैसे मनी प्लांट की बेल दूर तक फैलती है, पर फूल कभी नहीं निकलता। शीर्षक! "खण्डित ताजमहल" कहानी जिस में दीदी से प्रेमिका बनना मर्यादा के विरुद्ध है, अत: विवाद प्रस्तुत कर सकता है। यों समीर ने दलील दी है - "केवल संबोधन से रिश्ता नहीं बनता, जो अन्दर से उपजता है वही सच्ची अभिव्यक्ति है।" अपनी बनाई चीज़ के प्रति विशेष लगाव होता है, अत: सीमा वारुणी को टूटने से बचाना चाहती है। "लौट आओ समीर" युवा समीर अपने से पाँच साल बड़ी लड़की के आकर्षण का पात्र बन आत्म विभोर हो उठता है। नवीनता का आकर्षण जल्दी ही समाप्त हो जाता है जब समीर की दुनिया का विस्तार होता है। "कच्ची उम्र का प्रेम धूप की पहली किरण पड़ने से ही मुरझा जाता है।" रिश्ते दो तरफ़ा होते हैं तभी चलते हैं। इस रिश्ते की नियति यही थी, लाख चाहने पर भी अब समीर नहीं लौटने वाला है।

"खिड़की" किशोरी विकलांग सुधा, पैरों से लाचार और आँखों में रुपहले सपने सँजोए, मौत के बाद भी भटकती आत्मा की करुण कहानी है। "सुनो माँडव" ऐतिहासिक स्थानों पर जब भीड़ कम होती है, अक्सर भटकती आत्माओं की झलक और वार्ता की बात सुनी गई है। जिनका साक्षात्कार होता है वे पूर्ण विश्वास करते हैं, जिन्होंने केवल सुना है, वे निश्चय नहीं कर पाते कि विश्वास करूँ या न करूँ। "कागा सब तन खाइयो ....." यह प्रेम की पराकाष्ठा की कहानी है, जिस में प्रेमिका की खुशी के लिये क्षण भर में सर्वस्व न्योछावर करने को तत्पर प्रेमी। मिश्री लाल पण्डित, मणिलाल पटेल की पुत्री उर्मिला को देख कर खुश होते थे, शायद प्रेम करते थे। एक बार उर्मिला ने कहा भी - "छोटे पण्डित, इतना ज़्यादा सीधा होना अच्छा नहीं।" उर्मिला शादी कर के गाँव से विदा हो गई और मिश्री लाल ने मुँह न खोला। ज़रूरत पड़ने पर अपना प्राण त्याग दिया और अपनी आँखें उर्मिला के पति को दान कर दीं। आधुनिक पाठक यह पढ़ कर आँखें बन्द कर के, सिर हिला के अविश्वास से कह उठेगा - असंभव! भला ऐसा भी कभी हो सकता है? कभी किसी ने सुना है? देखा है ऐसा प्रेम?!!

पंकज सुबीर इतिहास लिखने नहीं बैठे हैं। यह कहानी है, जिस में भावना प्रधान है, उसी का चित्रण करना इनका निर्दिष्ट है। छोटे पण्डित मिश्री लाल ने उर्मिला के प्रति अपने प्रेम पर शक करने की कोई गुंजाइश नहीं छोड़ी है, अत: पाठकों को उनके कथन पर विश्वास करना ही पड़ेगा। लेखक की बड़ी सफलता इसमें मानी जाती है कि पाठक जब पढ़ना आरम्भ करे तो अंत तक रुचि बनी रहे और पढ़ता जाए। इस दृष्टि से भी पंकज जी का यह "प्रेम" संग्रह सफ़ल है। बधाई!!

000

पुस्तक चर्चा

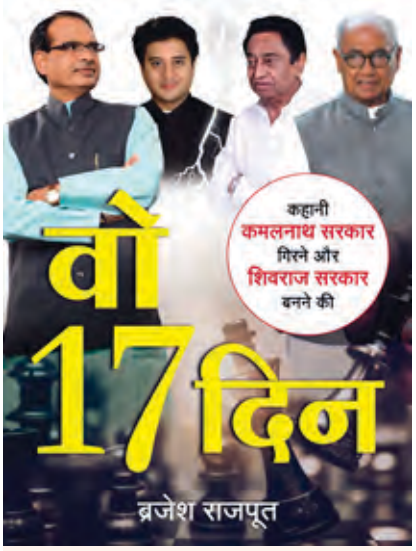

वो 17 दिन

(पत्रकारिता)

समीक्षक : राजेश बादल

लेखक : ब्रजेश राजपूत

प्रकाशक : शिवना प्रकाशन, सीहोर, मप्र

राजेश बादल
ई 2 / 141, अरेरा कॉलोनी, भोपाल,
मध्यप्रदेश 462016
मोबाइल - 9910068399
ईमेल- rstv.rajeshbadal@gmail.com

बृजेश राजपूत की नई किताब वो सत्रह दिन में मध्यप्रदेश में कांग्रेस की कमलनाथ सरकार के गिरने और फिर एक बार शिवराज सिंह के नेतृत्व में बीजेपी सरकार बनने की अंदरूनी कहानी है। कवर पर ही बृजेश ने लिखा है - जाना कमलनाथ सरकार का और आना शिवराज सरकार का। वैसे तो बेंगलुरु, जयपुर, गुड़गाँव, दिल्ली और भोपाल के सियासी गलियारों से छन छन कर आ रहीं कथाओं ने चैनलों के परदे पर तापमान बढ़ा रखा था। ऐसा लगता था, मानों सत्ता परिवर्तन की पटकथा इन्हीं चैनल वालों से पूछ कर लिखी जा रही हो। मगर प्रकाशित दस्तावेज़ में आप आधी हक़ीक़त, आधा फ़साना बयान नहीं कर सकते। बृजेश ने समूचे घटनाक्रम का आँखों देखा हाल अपनी कलम के ज़रिए सुना दिया है। हालाँकि पूरी पुस्तक पढ़ने के बाद लगता है कि कुछ समाचार कथाएँ बृजेश राजपूत ने जान बूझ कर अपनी काँख में दबा ली हैं। शायद उन्होंने पाठकों पर छोड़ दिया है कि वे अपने विवेक से उन कथाओं का अनुमान लगा लें। इस तरह का एक टुकड़ा आपके लिए यहाँ प्रस्तुत है -"एक पूर्व मंत्री ने बताया कि कभी-कभी तो रिसॉर्ट के कर्मचारी ही हमसे पूछ लेते थे कि आप यह क्यों कर रहे हो ? आज आप सरकार में मंत्री हो। कल अपनी यह सरकार गिराकर भी मंत्री ही बनोगे। मुख्यमंत्री तो बन नहीं जाओगे ? यह मशक़्क़त फिर मंत्री बनने के लिए क्यों कर रहे हो ? तो हम लोग भी एक बार यह सोचने पर मजबूर हो जाते थे कि ऐसा क्यों कर रहे हैं। मगर बाद में ख़ुद को समझाते थे कि लड़ाई पद की नहीं, अपने नेता के आत्म सम्मान की है। इसलिए लड़ रहे हैं। अंजाम चाहे कुछ भी हो "। अब इस पैराग्राफ़ के साथ-साथ भी एक कहानी समानांतर चल रही है। बृजेश तो इसे छिपा गए, पर पढ़ने वाले ने अंदाज़ लगा लिया। समीक्षक के नाते मुझे यह कहने में हिचक नहीं कि कहानी में आत्म सम्मान के बहाने और भी कुछ छिपा था। देर - सबेर इतिहास इस स्याह पन्ने को भी उजागर कर देगा। पर निवेदन है कि बृजेश को इस मामले में तनिक दुस्साहस करना था और प्याज़ के छिलके की तरह छिपी कुछ अन्य उप कथाएँ भी सामने लानी चाहिए थीं। वे मेरे पुराने सहयोगी रहे हैं। इसलिए इस अवांछित सलाह का हक़ रखता हूँ। फिर भी उन्होंने सत्रह दिनों की गाथा एक सौ चालीस पन्नों में समेट कर हमारे सामने सूबे का एक नायाब दस्तावेज़ पेश किया है। इसके लिए वे यक़ीनन साधुवाद के पात्र हैं। किताब की शैली अदभुत है। पढ़ते समय कहीं-कहीं मेरे एक और पुराने साथी, मित्र और छोटे भाई डॉक्टर मुकेश कुमार की पुस्तक फेक एनकाउंटर की याद आती रही। वह भी एक अनूठी पत्रकारिता का शानदार नमूना थी।

भारतीय हिन्दी पत्रकारिता के महानतम संपादक राजेंद्र माथुर कहते थे कि हिन्दी पत्रकारिता के साथ एक समस्या है। यह गहराई से किसी विषय का विश्लेषण पत्रकारों को नहीं करने देती। मैं इससे सौ फ़ीसदी सहमत हूँ। आज के टीवी युग में पत्रकार भट्टी के ईंधन बन गए हैं। चौबीस घंटे वे जलते रहते हैं। अपने को फूँक देते हैं। भट्टी का पेट नहीं भरता। लेकिन टीवी पत्रकार इस भट्टी में अपना सब कुछ स्वाहा कर देते हैं। वे ऐसी-ऐसी कहानियों के सुबूत होते हैं, पर उन्हें दस्तावेज़ में नहीं बदल पाते। बृजेश इस मायने में अपवाद हैं। बीते सात बरस में चार किताबें उनकी कलम से निकली हैं। दो भाई पंकज सुबीर के शिवना प्रकाशन के सौजन्य से हैं। शिवना प्रकाशन से पहली किताब थी - चुनाव, राजनीति और रिपोर्टिंग। दो मंजुल प्रकाशन से छपी हैं - चुनाव है बदलाव का और ऑफ़ द स्क्रीन। दोनों प्रकाशन राष्ट्रीय प्रकाशन उद्योग के क्षितिज पर अपनी रश्मियाँ बिखेर रहे हैं। एक सूबे में अंत:पुर की अंतर्कथाओं पर पुस्तक छापना भी हौसला भरा फ़ैसला है। वो सत्रह दिन - मध्यप्रदेश में दल बदल की दुकान का शटर गिरते ही पाठकों के सामने आ चुकी थी। इसके बाद भयावह कोरोना - काल ने जैसे सब कुछ सुन्न कर दिया। इसके बावजूद बृजेश की यह पुस्तक चाही और सराही गई है। हाँ - यह ज़रूर है कि शीघ्र प्रकाशन के प्रयास में कुछ प्रूफ़ और डिज़ाइन पर ध्यान नहीं दिया जा सका। इसके बाद भी किताब आपके पुस्तकालय की शोभा बढ़ाने का अधिकार रखती है। छोटे भाइयों जैसे बृजेश राजपूत और पंकज सुबीर को अनेकानेक शुभकामनाएँ।

000

पुस्तक चर्चा

शब्द गूँज

(कविता संग्रह)

समीक्षक : रमाकांत नीलकंठ

लेखक : अरुण सातले

प्रकाशक : शिवना प्रकाशन, सीहोर, मप्र

रमाकांत नीलकंठ
A/E 21 साईं कुंज अपार्टमेंट पाण्डेपुर
वाराणसी 221002 उप्र
मोबाइल- 6392256505

फेसबुक के नामचीन कवि-मित्र श्री अरुण सातले जी का कविता संग्रह 'शब्द-गूँज' मेरे हाथ लगा, तो मुझे चिन्ता-मिश्रित खुशी हुई। कारण यह है कि साहित्य की बेरहम दुनिया में जिसने बड़े नाम वाले लेखकों-कवियों-सम्पादकों के घरों-मुहल्लों-दफ्तरों-शहरों तक घूमघाम कर, उनके साथ उठ-बैठ कर, नमस्ते-प्रणाम कर कुछ पूर्व परिचय की पीठिका तैयार नहीं की है, उसका निबाह होना कठिन है। सम्भवत:, जहाँ तक मैं अनुमान कर सकता हूँ सातले जी से यह गणेश या कार्तिकेय परिक्रमा सधी न होगी। फिर भी उनके बुलंद हौसले को मैं फेसबुक पर पिछले तीन सालों से देख रहा हूँ, वह कविता के उदय गिरि मंच पर उदित अवस्था में ही दिखाई पड़ते रहे हैं। इससे उनकी अदम्य काव्य-ऊर्जा का पता चलता है। फेसबुक का यह करिश्मा रहा है कि इस मंच से उभर कर कितने ही लोग भारी लेखक-कवि हो गए हैं, जो पत्र-पत्रिकाओं के बल पर कभी सम्भव न होता। पत्र-पत्रिकाओं में छप-छप कर तिरोहित हो गए लोगों की व्यथा-कथा कहने का यह अवसर नहीं है। साहित्य के जगत् में निरन्तर उपस्थिति दर्ज कराए बिना काम नहीं चलता। भूलने के लिए ही जैसे बाकी दुनिया इन्तज़ार में बैठी रहती है। कब कोई ठंडा पड़े, कब कोई थके, कब कोई अलसाए कि उसे भुलाया जाए, जैसे इस दुनिया का यही धर्म है।

जबकि धर्म के बारे में अरुण सातले अपने इस संग्रह की एक कविता 'धर्म' मे लिखते हैं -

हवा दिखती नहीं / फिरभी सहलाती है हमें
गति देती है साँसों को / ज़िंदा रखती है हमें
अदृश्य रहकर भी / ऐसे ही निभाया जा सकता है
अपना-अपना धर्म
हम क्यों नहीं
निभाते अपना धर्म
हवा की तरह ?

सातले जी की धर्म-निष्ठा कितनी अविज्ञापनीय है ! चुपचाप बिना जनाए भी अपने होने का धर्म जनहित के प्रति निभाया जा सकता है। लेकिन भुलाने का धर्म भी साहित्य लोक में पाया जाता है। सातले जी इससे सावधान जान पड़ते हैं। सम्भवत: यही कारण है कि उन्होंने अपने गीतों-गज़लों को संगृहीत करने के पहले गद्यप्रवण कविताओं को सहेजना ज़रूरी समझा। क्योंकि बुद्धिविलासी कवियों ने गद्य को ही कविता में प्रसिद्ध कर दिया है। इसलिए नवागत कवि गद्य-गंगा की बहती धारा में हाथ धोने से अब चूकता नहीं क्योंकि चूके लोगों का हश्र वह जानता है। समय बलवान होता है, यह रहस्य नहीं, इतिहास का प्रत्यक्ष सत्य है। तुर्कों का समय आया तो तुर्क, मुगलों का समय आया तो मुगल, अंग्रेज़ों का समय आया तो मात्र नाव के बल पर अंग्रेज़ बड़ी आसानी से सभी लड़ाइयाँ एकतरफ़ा जीतते चले गए, जैसे आज़ादी के बाद कांग्रेस चुनाव पर चुनाव जीतती चली गई। आज फिर समय दूसरों के साथ है। समय पर किसका ज़ोर चला है ! उसी तरह आज गद्य कविता का समय है।

सातले जी के इस संग्रह में सतहत्तर कविताएँ हैं। हिन्दी समाज को इस संग्रह को खरीद कर मन लगाकर पढ़ना चाहिए। कविताएँ घर से लेकर समाज और प्रकृति तक के विविध इलाकों को स्पर्श करती हुई बड़ा ही संवेदनशील और रसात्मक वातावरण रचती हैं। उनमें मातृ भाव से लेकर प्रिया भाव तक का कवि द्वारा तय किया गया सफ़र दिखाई पड़ता है। गद्यात्मक होते हुए भी कविताएँ गीतात्मक लय की ओर झुकी पड़ती हैं। सातले की कविताओं से यह भी लगता है कि पाठक को नाम पर नहीं जाना चाहिए, कवि का काम देखना चाहिए। सातले की कविताएँ अपने लघुपन में भी तमाम स्थापित समकालीन कवियों के तख्त उछालने का सामर्थ्य रखती हैं। यह उनका धैर्य है कि बाइस साल बाद अपना यह दूसरा संग्रह लाना उन्होंने उचित समझा। उनकी कवि-कीर्ति दूर तक फैलेगी, देर तक टिकेगी, इसकी उम्मीद इस संग्रह की कविताओं से होती है।

000

पुस्तक चर्चा

मैं किन सपनों की बात करूँ

(नवगीत संग्रह)

समीक्षक : श्रीराम परिहार

लेखक : श्याम सुन्दर तिवारी

प्रकाशक : शिवना प्रकाशन, सीहोर, मप्र

श्रीराम परिहार
आजाद नगर, खण्डवा, मप्र
450001
मोबाइल- 9425342748

श्याम सुंदर तिवारी की पुस्तक "मैं किन सपनों की बात करूँ" गीत, नवगीत की सुन्दर कृति है। इन गीतों को पढ़ते हुए हम अपने भीतर और बाहर से पुनः-पुनः सामना करते हैं। यह रचनाकार की सफलता है कि उसकी निजी अनुभूतियाँ और भोगे हुए सत्य समष्टि की देहरी पर खड़े होकर पाठक को भीतर बाहर देखने का अवसर प्रदान करे। ये गीत वास्तव में निष्कलुष मन की उपज हैं। किन्तु वह मन अपने और अपने युग के गहन अंधकार और पिघलते हुए घाम को वाणी देने हेतु व्याकुल भी है। यह इसलिए कि गीतकार अपने जीवन और अपने समय-समाज के प्रति अखण्ड संवेदनशील है। बिना संवेदना के आँखें रोती नहीं, और हृदय विस्तार नहीं पाता है। इसी संवेदना की भूमि पर अटल बैठकर वह मनुहार करता है। "बैठें साथ बनाएँ कोई नई जीवन की रीत। सुनाऊँगा जीवन के गीत।"

गीतों से जीवन का रिश्ता आदिम युग से है। मन मस्तिष्क की धधक से भी है। पाँवों की गति और कलाओं के लालित्य से भी बहुत गहरा और अटूट है। गीत ही कह और समझ तथा गा सका है। "जीवन है अनमोल, समझ लेना है कैसे जीना है" जीवन का मोल असल में माँ और रचनाकार ही जान समझ सका है। इसीलिए वह बीहड़ों के पार जाकर भोर के आँगन से जीवन को साबुत बचा लेना चाहता है। जीवन है तो सब कुछ है। यह धरती आकाश सब कुछ। अपना पराया सब कुछ। जाग्रति-सुसुप्ति सब कुछ। जीवन है तो सपने हैं ! कल्पनाएँ हैं ! आशाएँ हैं! आकांक्षाएँ हैं ! पर्वतों के पार का हरा हरा भूभाग है। निर्मल नीर वाली नदियाँ ! उनमें तैरते असंख्य दीप हैं ! वे दीप अनन्त आकाश गंगाओं को धरती पर आने हेतु आमंत्रण देते हैं; ताकि यह सुन्दर धरती दूधिया स्नान करती रहे। जीवन के होंठों पर दूधिया हँसी छिटकती रहे। इसीलिए गीतकार तिवारी जी प्रायः प्रत्येक गीत में "सपना" शब्द के अनुष्ठान में जीवन के विहँसते रहने का ही यज्ञ पूरा करते हैं। सपने आते-जाते हैं, लेकिन जीवन-"लेकिन आशाएँ कहाँ रुकीं, ये किसी मोड़ पर नहीं झुकीं" की बान के साथ अनवरत-अटूट चलता रहता है। जीवन और गीत दोनों ही अपनी सार्थकता इसी "शक्ति पर्व से उर्जित हो मन" के साथ तलाशते रहते हैं।

रचनाकार के सामाजिक सरोकार ही रचना में शब्द अर्थ पाते हैं। यदि यह प्राप्ति "रमणीयार्थ प्रदीपादकः शब्दःकाव्य" हो जाए तो वह काव्य उत्तमकोटि का माना जाता है। रचना अपने क्रोड़ में अपने समय-समाज-राष्ट्र-विश्व-मानव को न केवल पोषित करती है, बल्कि उसे वाणी भी देती है। उसकी सार्थकता भी इसी में है। यह वाणी यदि सर्वभूत हित का भाव समाहित किए हो तो वह युगजीवऔर कालजयी हो जाती है। रचना न केवल अपने युग के विद्रूप को व्यक्त करती है, बल्कि वह शुभ या अपेक्षित को भी पूरी निष्ठा से स्थापित करती है।

रचना के भीतर यह सब ऐसे धरा रहता है जैसे कोई नदी रेत के, नीचे बहती हो! इस जग में केवल रातें ही नहीं हैं। केवल अंधकार का अट्टहास ही नहीं है। गीतकार अपने सरोकारों में एकदम स्पष्ट है। तभी तो वह देख सका है !, गा सका है- "भोर उतरकर अमराई में, पहने स्वर्ण कड़े। श्वेत मुंडेरों पर कागा ने सपने रखे बड़े।" बड़े सपने देखने वाला रचनाकार ही बड़ी रचना करता है। सँग्रह के सभी गीतों में जीवन अपनी समग्रता में सूरज से आँख मिलाता प्रतीत होता है। जीवन अपने अच्छे-बुरे, हास-रुदन, आशा-निराशा, हर्ष-शोक, सुख-दुःख, के साथ इन गीतों - नवगीतों में धड़क रहा है। यद्यपि दुःख के पाँव बड़े लम्बे हैं, सुख के छोटे छोटे। फिर भी यात्राएँ तो छोटे पाँवों से भी सम्पन्न हुआ करती हैं। यह जीवन माणिक मोती सा है। इसकी महत्ता संघर्ष में ही है। बिना संघर्ष जीवन की पूर्णता नहीं। यह इतिहास-पुराण-जीवन तीनों का अटल सत्य है। संघर्ष का सम्बल आत्मिक बल है। वह सबसे अधिक प्रेम के बटुए में से प्राप्त होता है। इसीलिए सँग्रह के प्रेम गीतों में एक अपरिमित शान्त चित्त का प्रसार सब कहीं हम पाते हैं। प्रेम असल में भौतिक दृष्टि से नहीं, भीतर की दृष्टि से अपना पथ प्रशस्त करता चलता है। भीतर की दृष्टि मिली तो देखा, तुम पराग हो, मधुरस हो। जीवन के मधुरस से भरे गीतों-नवगीतों को पढ़ना-गुनगुनाना बहुत सूखकर लगता है। ये गीत-नवगीत सांस्कृतिक शब्द अनुष्ठान हैं।

000

पुस्तक चर्चा

काग भुसण्ड

(व्यंग्य उपन्यास)

समीक्षक : अंजू शर्मा

लेखक : राजीव तनेजा

प्रकाशक : शिवना प्रकाशन, सीहोर, मप्र

अंजू शर्मा
41 ए, आनंद नगर,
इंद्रलोक मेट्रो स्टेशन के सामने
नई दिल्ली-110035
मोबाइल- 8851751628

जो पीढ़ी ऑरकुट और ब्लॉग जगत् से हिन्दी लेखन की शुरूआत करके फेसबुक पर सक्रिय हुई वह व्यंग्य लेखक कथाकार राजीव तनेजा के ब्लॉग 'हँसते रहो' से भली भाँति वाकिफ़ है। साथ ही उन दिनों एक छद्म प्रकाशकनुमा प्राणी के साथ हुए उनके शाब्दिक विवाद और उसकी परिणीति से भी उनका खूब परिचय है। बस उसी रोचक घटनाक्रम को आधार बनाकर लिखा गया है उनका हालिया व्यंग्य उपन्यास 'काग भुसण्ड' जो कि इसी वर्ष शिवना प्रकाशन सीहोर, मध्यप्रदेश से प्रकाशित हुआ है।

इन्टरनेट की दुनिया में हिन्दी फॉण्ट का प्रादुर्भाव एक ऐसी परिघटना थी जिसने ब्लॉग जगत् के हिन्दी वर्शन को एक क्रांतिकारी शुरुआत दी। ब्लॉग यानी चिट्ठे पर अपने मन की बात लिखकर लोगों से जुड़ने की आकांक्षा ने बहुत सारे साहित्य प्रेमियों के लिये स्वलेखन का एक ऐसा प्लेटफॉर्म सुलभ कराने में मदद की जो इससे पहले उन्होंने कभी नहीं सोचा था।

ब्लॉगिंग के माध्यम से लेखन की दुनिया से जुड़े इन लोगों के संयोग से एक ऐसा साहित्य समाज विकसित हुआ जो आभासी दुनिया के साथ-साथ वास्तविक दुनिया में प्रेम, दोस्ती, रिश्तों और छल जैसे भावों को जीते हुए अलग-अलग रिश्तों में बँध गए। इन्ही लोगों ने जब छपने के सपना देखना शुरू किया तो कुछ और लोग सामने आए पर किसी ने सपनों को पंख दिये तो कुछ सपनों की एवज में धोखाधड़ी को हथियार बनाकर अपना उल्लू सीधा करने से भी नहीं चूके।

ब्लॉग लेखन की उसी दुनिया, उसके साथी, साहिबे-किताब बनने के उनके सपने और उन सपनों में घुसपैठ कर उन्ही के माध्यम से उनकी भावनाओं से खेलकर, उन्हें लूटने का मंसूबा बाँधते छद्म ठग्गू प्रकाशक, इन सबकी हास्य मनोरंजन से भरपूर झाँकी प्रस्तुत करता है यह छोटा-सा उपन्यास। एक फ़ोन कॉल से शुरू हुई कहानी फ्लेशबैक तकनीक के माध्यम से एक पार्क में लेखक और उससे मिले एक तथाकथित प्रकाशक की मुलाकात से गति पकड़ती है। सिल्वर, गोल्डन और डायमण्ड पैकेज के माध्यम से व लेखन प्रकाशन जगत् की अंदरूनी सच्चाइयों पर से एक-एक परत को अनावृत करती है उन दोनों की बातचीत। इस उपन्यास में कुछ पात्र अपने असली नाम के साथ हैं, कुछ संकेतों के साथ, तो कुछ पात्र महज काल्पनिक भी हैं पर इन पात्रों के माध्यम से जो ताना-बाना लेखक ने रचा है वह खासा रोचक है। जैसा कि राजीव जी के पाठक परिचित हैं, वे इस बार भी संवाद शैली के माध्यम से ही अपनी बात रखते हुए घटनाक्रम को चुस्त और कसे हुए अंदाज़ में प्रस्तुत करते हैं। यह चुटीले संवाद बातचीत के अंदाज़ में लगातार गुदगुदाते हुए भरपूर मनोरंजन करते हैं। यह वार्तालाप इतना मज़ेदार है कि आप हँसे बिना नहीं रह सकते।

ब्लॉग जगत् से जुड़े लोग इन्हें पढ़ते हुए पात्रों और घटनाओं की शिनाख़्त बड़ी आसानी से कर सकते हैं, पर जो लोग घटनाक्रम से परिचित नहीं उनके लिये तो यह उपन्यास और भी अधिक रोचक है क्योंकि अंत इस कदर अप्रत्याशित है कि जब पाठक लेखक को एक जालसाज़ के जाल में फँसते हुए पाकर उससे सहानुभूति महसूस कर रहा होता है। कहानी एक ऐसे मुकाम पर पहुँचती है कि शिकारी खुद शिकार बन जाता है। पर कहानी यहीं ख़त्म नहीं होती। सबसे बड़ा ट्विस्ट तो अभी बाकी है पर यह मैं भला क्यों बताने लगी, तो शेष आप खुद उपन्यास पढ़कर जान सकते हैं।

यदि आप भी लेखन की दुनिया से जुड़ी ऐसी जालसाज़ियों की कहानी के हर एक पहलू से वाकिफ़ होना चाहते हैं तो यह उपन्यास ज़रूर पढ़िए। ताकी पढ़ने का पढ़ना हो जाए और यदि आप पठन पाठन की दुनिया से आगे बढ़कर खुद अपनी किताब लाने के इच्छुक हैं तो इस दुनिया को करीब से जानकर प्रकाशन के नाम पर ठगने वाले किसी जालसाज़ से बचने के लिये तैयार भी हो जाएँ। बहुत ही वाज़िब कीमत पर उपलब्ध यह उपन्यास जल्द ऑर्डर करें। दो व्यंग्य कहानी संग्रहों के बाद व्यंग्य उपन्यास लेखन में इस पहले किंतु सुचिंतित कदम के लिये राजीव तनेजा जी को हार्दिक बधाई और शुभकामनाएँ कि यह रचनात्मक यात्रा अनवरत जारी रहे।

000

पुस्तक चर्चा

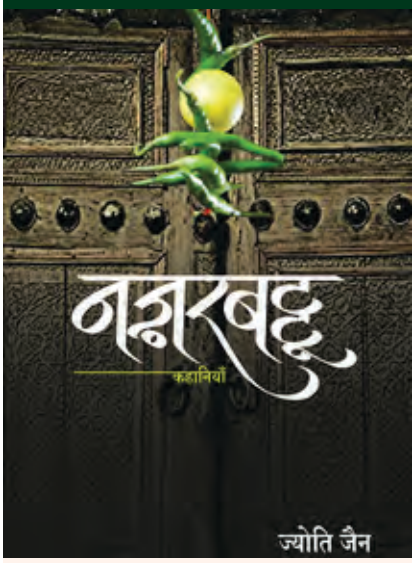

नज़रबट्टू

(कहानी संग्रह)

समीक्षक : निधि प्रीतेश जैन

लेखक : ज्योति जैन

प्रकाशक : शिवना प्रकाशन, सीहोर, मप्र

निधि प्रीतेश जैन
130 बैकुंठधाम कॉलोनी
आनंद बाज़ार के पीछे
इंदौर -452018 मप्र

एक बार अंग्रेज़ी शब्दों के महारथी के रूप में पहचाने जाने वाले शशि थरूर श्रीमती सुधा मूर्ति का इंटर्व्यू ले रहे थे -उनके एक सवाल के जवाब में सुधा जी ने कहा -कहानी की भाषा में ऐसे भारी भरकम शब्द न हों जिसके लिए डिक्शनरी ढूँढ़ने जाना पड़े, आम लोगों की भाषा में कही गई कहानी आम जन तक पहुँचती भी है। ज्योति जी जैन द्वारा लिखी कहानियों की नई पुस्तक नज़रबट्टू पढ़ते ही मुझे यह वाक़या याद आया। कहानी किशोरों की मस्ती भरी सुबह से शुरू होती है शहर के बीच फ़ूड सेंटर पर नाश्ता करते हुए ठिलवाई (हँसी -मज़ाक़) करते हैं तो गरीब बच्चों को भूखा देख अन्नदान स्वरूप उन्हें भी नाश्ता कराते हैं। सामान्य कहानी होती तो इस नैतिक पाठ के साथ ख़त्म हो जाती किंतु जिस शीर्षक के नाम पर किताब का नाम रखा गया है, वह कहानी इतनी साधारण कैसे हो सकती है ? नज़रबट्टू ही नहीं अन्य कहानियों में भी जगह -जगह आम भाषा में प्रचलित शब्द, जुमलों का प्रयोग देख ऐसा लगा जैसा कोई अपना बड़े दिनों बाद मिला हो ... जैसे ससुराल में मायके के स्वाद की महक उठ आई हो।

पात्रों के नाम को लेकर लेखिका सदैव सचेत रहती है .. कहानी 'उजाला' इसका सशक्त उदाहरण है। पात्रों के नामों को लेकर को लेकर सजग रहनी वाली लेखिका की कहानी "एक शब्द औषधि करें" से एक बानगी देखिए -उषा ...एकदम गोरी ,कुछ गुलाबी रंगत लिए ,मानों सचमुच उषाकाल की लालिमा लिए हो ....बेहद खूबसूरत चेहरा .....और संध्या दबे रंग की (हमारे सभ्य समाज में सीधे -सीधे काली न कहना हो तो दबे रंग की या श्याम वर्णी या साँवली भी कह लेते है)।

ढूँढ़ते हुए आप को कहीं-कहीं निर्जीव वस्तुएँ और भाव भी मुखर नज़र आएँगे, मानों हक़ जता रहे हों कि कहानी में हमारी भी इतनी ही अहमियत है जितनी दूसरे शब्दों की। संवाद शैली की प्रचुरता से कहानियाँ सरस बन पड़ी है। अपनी बात कहने के लिए लेखिका अंग्रेज़ी शब्दों का भी सहजता से उपयोग करती है। पुस्तक में युवा वर्ग पर विशेष रूप से लिखा गया है। आम जीवन के छोटे-छोटे पलों को जीवंत करते हुए कहानी विधा के माध्यम से अपनी बात पाठकों तक पहुँचाती हैं। कोरोना कॉल में लिखी गई पुस्तक में लॉकडाउन के दौरान लिखी गई एक कहानी युवा पीढ़ी की ज़िंदगी की उलझनों को अनलॉक करती है और कहती है कि 'नैराश्य से उबरने के लिए पुरुषार्थ कर लिया जाए तो क़िस्मत भी दरवाज़ा खटखटा देती है।' कहानी अनलॉक ज़िंदगी -जिसमें युवा सोहम पुरुषार्थ और संयोग (क़िस्मत) से नया रोज़गार प्राप्त करता है। तो कहानी 'लॉकडाउन' में रिटायरमेंट किसी ३५-४० साल के व्यक्ति को करना पड़ जाए तब क्या .....इस मनोभाव के साथ बुज़ुर्गों के प्रति सोच बदलते हुए मुख्य पात्र 'केशव' अपने लॉकडाउन को सकारात्मक लेते हुए ज़िंदगी को काटना नहीं जीना शुरू किया जैसे उसके बाबूजी जी रहे थे।

चाहे एक सूत्र वाक्य को कहानी बनाना हो या घटना को कहानी में समेटना हो, दोनों ही कार्य बखूबी किए गए है। हर कहानी के पात्र ज़िंदादिल और कुछ करने को तत्पर..... चाहे लघुकथा हो या कहानी, नई राह पर चलते हुए अपने कदम संस्कारों से जुड़े रखने की हिमायती ज्योति जी हर बार अपनी कल्पना को शब्दों में उकेर हमें चमत्कृत कर जाती हैं। कहानियाँ शब्दों के शृंगार से नहीं सादगी भरे शब्दों से पाठकों को बाँधे रखती हैं। आस- पास की घटनाओं और ख़ासकर युवाओं को ले कर लिखी गई कहानियाँ पढ़ते समय लगता है जैसे हमारे आस -पास ही यह सब घटित हुआ है। सुखांत कहानियाँ हमें असीम ऊर्जा से भर देती है। पंकज सुबीर ने सही कहा है- कहानी लेखन क्षेत्र में बाढ़ सी आई हुई है, ऐसे में ज्योति जी ने अपनी शैली से अलग पहचान क़ायम की है। कल्पना को यथार्थ के समकक्ष ला कर खड़ा करना ज्योति जी जैसी साधिका ही कर सकती हैं। वैसे तो जो लिखा गया है उसकी समीक्षा की जानी चाहिए, जिसने लिखा उसकी चर्चा नहीं लेकिन जब लेखिका स्वयं अपने रचनाकर्म के हर हर्फ़ से झाँकने लगे तब क्या कीजिएगा ?

000

पुस्तक चर्चा

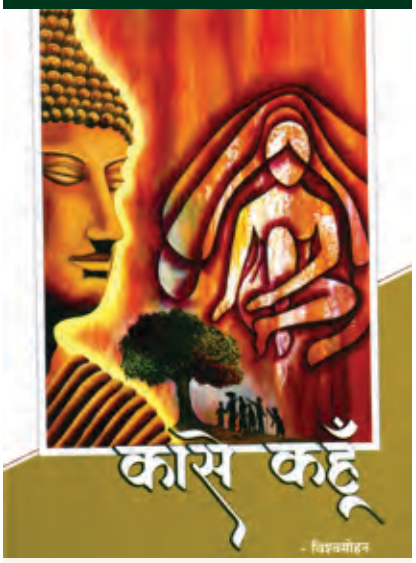

कासे कहूँ

(कविता संग्रह)

समीक्षक : पंकज त्रिवेदी

लेखक : विश्व मोहन

प्रकाशक : विश्वगाथा प्रकाशन, गुजरात

पंकज त्रिवेदी
गोकुलपार्क सोसायटी, 80 फूट रोड,
सुरेन्द्रनगर – 363001 गुजरात
मोबाइल- 9662514007
ईमेल- vishwagatha@gmail.com

धरती और आसमान के बीच जो जीवन है वो भी प्रकृति का अंश है। श्री विश्व मोहन कवि हैं यही पर्याप्त इसलिए है कि उन्हें प्रकृति के बहुत करीब उनके शब्दों के द्वारा महसूस कर सकते हैं। समझ के साथ थोड़ी नादानी कवि में होती है और विश्व मोहन में वो है, इसलिए कवि हैं। उनका दूसरा कविता संग्रह 'कासे कहूँ' की कविताएँ साहित्यिक मूल्य का बोध देती है। यही वजह है कि हम उनकी कलम पर भरोसा कर सकते हैं।

इस धरती पर प्रत्येक जीव ईश्वर का वरदान है मगर उसमें इंसान का रूप ईश्वर की प्रतिकृति से कम नहीं हैं। विपुल रचनाशीलता के युग में और पत्रिकाओं के साथ अंतर्जाल के पाश से ग्रसित रचनाकारों में साहित्यिक मूल्य सँजोकर या बचाकर कुछ हद तक सफ़ल होना भी कम तो नहीं है।

वर्त्तमान जीवन दो हिस्सों में बँट गया है। गाँव की प्राकृतिक परंपरा और आधुनिक शहरों की चकाचौंध के बीच तकनीकी संसाधनों से खिलौना बना हुआ इंसान भी बँट गया है। गाँव भी अब गाँव नहीं रहा। परंपराएँ टूट रही हैं। भाषाओं में अब अंग्रेज़ीपन का प्रभाव कभी-कभी विकृति के भी दर्शन कराने लगा है। ऐसे में किसी भी रचनाकार के लिए शुद्ध साहित्यिक एवं मूल्यवान् साहित्यिक सृजन करना कठिन है और ऐसे में नई पीढ़ी को मूल भाषा से परिचय करवाने में सफल होना अति दुष्कर भी है।

कवि के पास समृद्ध शब्द, अनुभव, कल्पना की उड़ान एवं प्रकृति का आत्मसात् किया हुआ रूप ही उनकी समृद्धि बन उभर आता है। धरती के प्रत्येक जीव मात्र का जीवट से निरीक्षण करते हुए अपनी कविताओं में नए रंग भरना सौन्दर्य बढ़ाता है। कवि यहाँ कहीं निज आध्यात्मिकता का परिचय भी करवाते हैं। आशावादी कवि का शब्द-संयोजन नैराश्य से हटाकर जीता है। उसे लिखता है और पाठकों को सकारात्मक जीवन के लिए प्रेरित भी करता है। विश्व मोहन ख़ुद कल्पनाशील व्यक्ति हैं इसलिए उनकी कविताओं में वास्तविकता के आगे का जीवन दर्शन भी है। मिट्टी से जुड़ा कवि ही अपने रचना कर्म में सम-संवेदना का पुट दे पाता है। ऐसे में उनकी कविता बड़ी सहजता से पाठकों की अपनी बन जाती है। यह संधान ही उनकी कविता को ऊँचाई प्रदान करती है और भाषा की सरलता जन-जन के मन-हृदय को आंदोलित भी करती है।

'बेटी बिदा' के समय भी – 'सत्य-संजीवन चिर-चिरंतन / वेदांत उपनिषद् गाते / भयी आत्मा बहरहम की / अब छूटे रिश्ते-नाते' – के द्वारा मिथ्या रिश्तों का गान किया है।

विश्व मोहन की प्रत्येक कविता में नैराश्य के सिर पर वैराग्य का ध्वज लहराता नज़र आता है। 'जलकमलवत' की व्याख्या को जीवन में अपनाना दुष्कर ज़रूर है। फिर भी कवि वो साहस अपनी सरल बानी में कहीं-कहीं कर लेते हैं, तब चमत्कृति पाठकों को आकर्षित भी करती हैं। 'मृग-मरीचिका' में – 'तपोभूमि में तप-तप माँ ने / ममता का बीज बोया' – लिखते हुए न जाने अनगिनत संघर्ष, सृजन एवं ममता के पावन रिश्ते को कैसे अभिव्यक्त कर दिया है, यह देखते ही बनता है। सरल, कम एवं सशक्त शब्दों में जीवन के प्रत्येक आयाम की चर्चा को गहराई से पेश करते हुए उनमें कहीं लयात्मकता का सायुज्य पाठकों के अंतर्मन को छू लेता है। यही कुशलता विश्व मोहन में छुपे एक अगम्य व्यक्तित्व को प्रस्तुत करता है।

समसामयिक विषय की स्तरीय रचनाओं में धार है। ऐसी रचनाएँ समयातीत होती हैं, काल की मुट्ठी में बंद। 'चटक-चुनरिया, सजी-धजी मैं / सुधि बिसरे, दिन रात / सिंहा-सिंगरा, गूँजे गगन में / अब लाएँ, बलम बरिआत / कासे कहूँ, हिया की बात' – आँचलिकता की चुनर को पकड़कर कवि ने ग्राम्य जीवन, हृदय की उर्मि, रिश्तों के तानेबाने जोड़कर अपने हिया (हृदय) की बात को प्रश्नार्थ के साथ कही है और पाठकों के लिए इस शीर्षक का कौतूहल के साथ नाता जोड़कर उन्हें अपनी कविता की सरिता में स्नान करवाया है। कवि विश्व मोहन को उनके दूसरे कविता संग्रह 'कासे कहूँ' के लिए अशेष बधाई।

000

पुस्तक चर्चा

पंचामृत

(संस्मरण)

समीक्षक : अमिताभ मिश्र

लेखक : अश्विनी कुमार दुबे

प्रकाशक : राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली

अमिताभ मिश्र
B17 महालक्ष्मी सोसाइटी,
भोपाल 462039 मप्र
मोबाइल- 9425375311

आमुख में अशोक वाजपेयी लिखते हैं 'यह संगीत में डूबे एक रसिक की पुस्तक है और इसे पढ़कर आपकी शास्त्रीय संगीत में रसिकता उद्दीप्त हो सकती है।' और प्राक्कथन में अश्विनी भी लिखते हैं कि 'मेरा बचपन मैहर में बीता। मेरा स्कूल बाबा (अलाउद्दीन ख़ाँ साहब) के बंगले के ठीक सामने पर।' स्कूल के दिनों से जिसे संगीत कला के नामचीन कलाकारों को सुनने और बातचीत करने का मौका मिले तो शास्त्रीय संगीत का पारंगत भले न हो, पर रसिक तो हो ही सकता है। यह अच्छा हुआ कि वे समय के साथ चलते हुए इंजीनियर बन गए और फिर हमें यह पंचामृत चखने का मौका मिला, वरना यदि वे संगीतकारों की संगति में संगीत में पारंगत होते तो हम उनका गायन सुन रहे होते। बहरहाल फिर जिन दिनों नौकरी के अंतिम सालों में वे देवास में थे, जो रजब अली ख़ाँ और कुमार गंधर्व की नगरी है, उन्हीं दिनों संयोगवश मैं भी देवास में ही था और हम लोग एक ही विभाग में रहे, सो अश्विनी दुबे से मेरी मेल-मुलाकात, बातचीत होती रही। फिर यह पंचामृत बन रहा है इसकी भनक भी न लगने दी अश्विनी ने। मैं उन्हें अच्छा-भला व्यंग्यकार, व्यंग्य उपन्यासकार मानता रहा और इन्हीं मुद्दों पर अक्सर बात भी होती रही। मेरे लिये यह नईम, प्रकाशकांत, बहादुर पटेल की नगरी रही और शहर तो कुमार गंधर्व और रजब अली ख़ाँ साहब का भी है और जिनका जिकर हर जगह होता रहा है वहाँ। क्योंकि ये दोनों शहर की रग-रग में बसे हुए हैं। बावजूद तमाम औद्योगीकरण के नई-नई दुकानों में। देवास में अभी भी संगीत बजता है। कबीर को कहीं भी कुमार गंधर्व के अंदाज़ में सुना जा सकता है। तो अश्विनी ने इन्हीं आवाज़ों को पकड़ा जो उनके कानों में मैहर से बज रही थीं और हमारे सामने पंचामृत रख दिया।

पंचामृत को पढ़ना इन संगीतज्ञों की साधना को न सिर्फ जानना है, बल्कि वे किन-किन कठिन हालात से गुज़रे यह ब्यौरा भी इस किताब में दर्ज है। जो इसे एक अलग दर्जा देता है।

रजब अली ख़ाँ साहब के बारे में जानना देवास के बारे में उस समय के बारे में और आसपास को भी जानना है, किस तरह संगीत के लिये और एक-एक राग के लिये मेहनत करना यह इस किताब में बहुत तफ़्सील से बताया है। देवास के बारे में कुमार गंधर्व के बारे में भी विवरण है जो अश्विनी दुबे की मेहनत और उनके खुद के संगीत में ज्ञान को भी प्रकाश में लाता है।

एक और बात जो इस किताब को खास बनाती है, वह इन संगीतकारों के संघर्ष, उनके जीने और संगीत को उच्चतम स्तर पर ले जाने की जद्दोजहद को रेखांकित करना है। कुमार गंधर्व की जीने की ज़िद और संगीत में नए-नए प्रयोग की तड़प लोक संगीत को शास्त्रीय संगीत से जोड़ने का संघर्ष जिसमें उनकी शास्त्रीय संगीत की बिरादरी ने आलोचना भी की, पर कुमार गंधर्व तो संगीत के कबीर थे, जिन्हें सुनते हुए लगता था कि हम कबीर को सुन रहे हैं।

इसी तरह रजब अली ख़ाँ का जीवन यापन के लिये भटकना और संगीत साधना का जो ब्यौरा दिया है वह अद्भुत है। ऐसे प्रसंग भी कि जिनमें आत्मसम्मान के लिये नवाबों को भी कुछ न गिनना रजब अली ख़ाँ साहब की शख्सियत को हमसे रू-ब-रू कराते हैं अश्विनी दुबे। साक्षात् बीन के अवतार रजब अली ख़ाँ साहब ने बीन को भी सही जगह दिलवाई। अमीर ख़ाँ साहब ने जो संगीत में अलख जगाने का काम किया था उसे करीने से इस किताब में बताया है। अमीर ख़ाँ ने संगीत के क्षेत्र में जो मुकाम हासिल किया, उसके पीछे के संघर्ष को आवाज़ देती है यह किताब। श्रीकृष्णराव मजूमदार का इंजीनियरिंग और संगीत में तुक-तान बनाने का दिलचस्प विवरण भी है यहाँ। आचार्य गोकुलदास महाराज की संगीत साधना का बहुत कायदे से ब्यौरा रखा गया है। यह किताब दर असल हमें इन संगीतज्ञों के बारे में जानकारी तो देती ही है साथ ही हमें भी उस संगीत की जानकारी से लैस करती है, जो इन पाँच महान् संगीतकारों ने अर्पित किया है। इस शानदार किताब के लिये अश्विनी को बधाई और आगे भी इस क्षेत्र और भी काम करेंगे यह उम्मीत है।

000

पुस्तक चर्चा

नक्कारख़ाने की उम्मीदें

(कविता संग्रह)

समीक्षक : पुरुषोत्तम दुबे

लेखक : संतोष सुपेकर

प्रकाशक : राघव प्रकाशन, इन्दौर

डॉ. पुरुषोत्तम दुबे
शशीपुष्प
74 जे /ए, स्कीम नम्बर 71
इंदौर मध्यप्रदेश
मोबाइल- 9329581414

संतोष सुपेकर की कविताएँ जटिल शब्दों की बानगी लेकर शीर्षासन नहीं करतीं, प्रत्युत सरल शब्दों का सीधा मार्ग लेकर आज के समाज में व्याप्त सामाजिक 'भदेस' को बुहारती मिलती हैं और वैचारिक समरसता की मंज़िल का पता देती हैं। काव्य-सृजन के क्षेत्र में अपने सुदीर्घ अनुभव को ज्ञापित कर चुके कवि सुपेकर ने हाल ही 2020 में अपना तीसरा काव्य - संग्रह 'नक्कारखाने की उम्मीदें' आधुनिक काव्य संसार को प्रदान किया है। संतोष सुपेकर का नवीन काव्य - संग्रह 'नक्कारखाने की उम्मीदें' कविताओं के जिन मुहावरों को पकड़कर सम्पन्न हुआ है वे सब के सब मुहावरे यथार्थ की ज़मीन को तोड़ने वाले, समाज में प्रचलित जड़ परम्पराओं की गर्दनें मरोड़ने वाले, संवेदना के बूते क्रूर मनुष्यों के पत्थर दिलों को फोड़ने वाले तथा समाज में स्थान-स्थान में व्याप्त अप्रीतिकर रूप को श्री और सौन्दर्य से जोड़ने वाले, उस नुकीली सुई के मानिन्द हैं जो अपनी तीखी नोंक से समाज में व्याप्त अमानवीय व्यवहारों के फफोलों में छेद कर उसमें पनपती ज़हरीली पीब को निकाल बहा देती है।

सुपेकर का कवि जब समाज की पड़ताल करने निकलता है तो पाता है कि समाज का वर्तमान रूप संवेदना शून्य हो गया है। संवेदना का वह सघन भाव जिसमें मानवीय रिश्तों को जोड़े रखने की ताक़त रही है, समाज के धरातल से वह आज तिरोहित हो गया है। आँखों में आँसू हैं, मगर समाज में आज हर चेहरा इतना क्रूर नज़र आने लगा है कि उससे लिपटकर उसके दर्द को घटाने का उपक्रम कोई सहृदय करने को आगे ही नहीं आता है। कवि कहता है, "आँसुओं का स्टॉक तो बहुत था, बहुत है, खर्च न हुए ज़्यादा, बह न सके ज़्यादा।" इसी प्रकार 'भीड़ भरी दुनिया में' शीर्षक कविता में कवि सुपेकर ने 'परछाई' का मानवीकरण 'भीड़' से करते हुए लिखा है कि, "परछाई, छीनती है उजाला, दूसरे के हक़ का।" ऐसे ही अमानवीय रूपों की सघनता से दु:खी होकर सुपेकर लिखते हैं, "पर हाँ, छ: माह के बच्चे की दृष्टि में, नफ़रत भी नहीं होती, काश सारी दुनिया, छ: माह का बच्चा होती!"

कवि सुपेकर शहरों के अंधाधुंध विकास पर भी उँगली उठाते हैं। गगनचुंबी वृक्षों को धराशाई कर चारों ओर सीमेंट के जंगल खड़े हो गए हैं। दूर-दूर तक प्राकृतिक सुषमा दिखाई नहीं देती। इस आशय को निखारने में कवि लिखता है कि, "ताजमहल देख लिया क्या ? आओ अब दिखाऊँ तुम्हें, छत, मेरे घर की। इस छत से, बरसों पहले, दिखता था ताजमहल!"

ढाई आखर प्रेम ही समाज की तस्वीर में सामाजिक सहिष्णुता का रंग भर देता है। लेकिन हर आदमी में जीवित निहित स्वार्थ के सुरसा मुँह ने मानों मानव-मानव के मध्य पारस्परिक प्रेम को निगल ही लिया है। कवि समाज में नफ़रत का व्यापार चलाने वालों से प्रश्न करता है, "नफ़रत की सीरियल चलाने वालों, कोई उँगली खाली है तुम्हारी, प्रेम टाइप करने के लिये।"

संतोष सुपेकर की कविताओं का अभिव्यक्ति पक्ष बड़ा मज़बूत है। हर कविता अच्छी भाषा की दरकार रखती है। सुपेकर की काव्य-भाषा उनकी कविता में प्रयुक्त होने वाले शब्दों की अर्थसम्पन्न गाँठें खोलने में समर्थ है। कवि के भाषा ज्ञान का एक परिपक्व उदाहरण यहाँ दृष्टव्य है - "पसीने से भीगे हाथ, भीगे, चिपचिपाते हाथ, चिपचिपाता चेहरा, भीगा चश्मा, भीगी कलम, बार-बार काग़ज़ पर टपकता पसीना।" भाषा की बात शिल्प की चर्चा साथ लेकर आती है। सुपेकर की कविता में शिल्प सायास नहीं प्रत्युत अनायास ही अवतरित हुए नज़र आते हैं, "सर्दियों में, सबको अच्छी लगती है धूप बहुत, सर्दियों में, धूप और विटामिन 'डी' की बातें भी होती हैं बहुत।"

कवि-कर्म विषयक सुपेकर का दो दशक का गहन अनुभव ही एक तरह से अब उनकी सर्जनात्मक शक्ति बन चुका है। काव्य रचने की तहज़ीब से उनका कवि विभूषित हो चुका है। अतिशीघ्र ही संतोष सुपेकर का कवि अग्रिम पंक्ति के कवियों की जमात में उपस्थित हुआ मिलेगा, विश्वास के यही स्वर उनके कवि-कर्म का मार्ग प्रशस्त करेंगे। इसी सुखद आशा के साथ संतोष सुपेकर को उनके तीसरे काव्य - संग्रह 'नक्कारखाने की उम्मीदें' के लिए बधाई।

000

पुस्तक चर्चा

जाएँ तो जाएँ कहाँ

(कहानी संग्रह)

समीक्षक : डॉ. श्रद्धा श्रीवास्तव

लेखक : सागर सियालकोटी

प्रकाशक : निखिल प्रकाशन, आगरा

डॉ. श्रद्धा श्रीवास्तव
भोपाल
मध्यप्रदेश
मोबाइल- 9425424802

सागर सियालकोटी का कहानी संग्रह 'जाएँ तो जाएँ कहाँ' प्रेम के विविध रंग समेटे हुए है जो उनकी 22 कहानियों का संकलन है। कहानी 'पहला ख़त' वर्ग चेतना की कहानी है जिसमें सुनील चौबे चपरासी का बेटा है और सुनीता सान्याल अफसर की बेटी है दोनों के बीच जो प्यार पनपता है। आज के दौर में प्यार करने वालों के पास धैर्य नहीं है जिसके कारण वो प्रेम की थाह तक नहीं पहुँच पाते हैं। ऐसे समय में इस कहानी का पाठ मन को भा जाता है।

उनकी कहानियों में अनीता जैसी दर्द आशना स्त्रियाँ है जो इंसानियत की मिसाल हैं। जो दूसरों के बच्चे को अपना दूध पिलाने को संकल्पित हैं। गुलज़ार जैसे दिलदार पुरुष पात्र हैं, जो हादसे मे अपना एक पैर गवाँ चुकी शहनाज़ से निक़ाह कर सहारा देता है। जिसे समाज मनहूस कह कर नकार देता है। (कहानी फिर मिलेंगे)। 'देखा प्यार तुम्हारा' का डेनियल मीरा नाम की तलाकशुदा औरत से शादी करता है जो बैंक में उसके साथ की काम करती है। इस कहानी में चित्रित होता है कि प्यार उम्र, रंग, रूप, जात, पात के बन्धनों से कहीं ऊपर होता है। कैथी विल्सन का चरित्र उदात्त और महान् है। वह अपने पति को फटकारती है कि उसने दिलमाया राय से अपनी हवस मिटाने के लिए शादी की। 'घर की छत' की नायिका सकीना अपने दिल का हाल, अपना दुख, अपनी तकलीफ़ अपने कोठे में नेक दिल प्रेमसागर से ज़रूर करती है। पर प्रेम सागर के निकाह को कबूल नहीं करती और साफ़ शब्दों में कहती है तवायफ़ अपना धंधा करती है ख़ैरात नहीं माँगती।

'घर वापसी' की एक किरदार अदिति सीकरी है जो बेहद महत्वाकांक्षी है और स्वभाव से ज़िद्दी है। इस प्रकार स्त्रियों के व्यक्तित्व पक्ष का भी उन्होंने अच्छा निर्वाह किया है। समलैंगिक संबंधों पर एक कहानी है 'जब इश्क़ कहीं हो जाता' इसमें समान अधिकार की बात की गई है। जिनके रहने जीने के लिए माक़ूल माहौल नहीं बन पाया है। इस कहानी के पात्र मोना और मंजरी अपने शरीर और दिमाग़ की बात समझते हुए एक दूसरे के जीवन साथी बनते हैं। 'मेरे घर के सामने' थर्ड जेंडर पर कहानी है। कहानीकार कहता है- ख़्वाजा-सराह यानि हिजड़ा, परमात्मा ने इन्हें पैदा किया है। समाज का हिस्सा हैं। तारो हिजड़ा गुमनामी का जीवन जीती है। और अंत में नेल्सन को पता चलता है तारो उनके परिवार का हिस्सा है।

सागर जी ने इस संग्रह के समाज की पितृसत्तात्मक मनोरचना वाले संवाद दिल को झकझोर कर रख देते हैं। उनकी कई कहानियाँ सियासत और धर्म को भी लक्ष्य करती हैं। पर सागर सियालकोटी के यहाँ धर्म अपनी कट्टरता में नहीं सौम्यता में आया है। 'सरहद के दरमियाँ' साम्प्रादिक सौहार्द की कहानी है, जिसमें साम्प्रदायिक विभाजन की चेतना को स्थान दिया है। सियासत व विभाजन ने भले ही सीमाएँ खींची हों पर इंसानियत को किसी संकीर्ण दायरे में नहीं बाँटा जा सकता। 'सरहद के दरमियाँ' कहानी में पूजा अपने परिवार से बिछुड़ जाती है। पर नूरां शिरानी उसे सुरक्षित उसके घर पहुँचाती है। उसके मन में मुसलमान कौम के प्रति जो दुर्भावना थी, वो सद्भाव में बदल जाती है। पूजा के पिता ताराचंद अन्त में कहते हैं- हिन्दू या मुसलमान बुरा हो सकता है मगर इन्सान कभी बुरा नहीं हो सकता, वो चाहे सरहद पर हो या सरहद आर हो, सरहद के दरमियाँ इक इंसान ज़रूर बसता है। शीर्षक कहानी 'जाएँ तो जाएँ कहाँ' विस्थापन के दर्द की कहानी है जिसमें रियाज़ को तमाम तरक्क़ी के बाद भी अपनी ज़मीन छोड़ने का दर्द बेहद सालता है।

शिल्प की दृष्टि से कहा जा सकता है सागर जी ने अपने जीवन के फ़्लैशबैक में जाकर अपने बचपन और कैशोर्यकाल की स्मृतियों की समेटा है। यह उनके अनुभवों में पकी कहानियाँ हैं। अंत में यही कहूँगी कि सागर सियालकोटी की कहानियाँ ओल्ड स्कूल की कहानियाँ नहीं, जिसमें स्त्री-पुरुष के सामंती संबंधों कि पैरवी की गई हो। सागर जी की कहानियों में क़िस्सागोई का पुराना ठाठ आपको नहीं मिलेगा, पर विस्थापन और विभाजन की त्रासदी पर मानवीय मूल्यों की विजय ज़रूर मिलेगी।

000

स्त्री पाठ : दुनिया की सबसे पुरानी सभ्यता (पंकज सुबीर की कहानी 'दो एकांत')

दिनेश कुमार पाल
(शोध - छात्र)
हिन्दी एवं आधुनिक भारतीय भाषा विभाग
इलाहाबाद विश्वविद्यालय
प्रयागराज

दिनेश कुमार पाल
बैरमपुर, कौशाम्बी, 212214
उप्र
ईमेल- dineshkumarpal6126@gmail.com
मोबाइल- 9559547136

मानव सभ्यता का विकास प्रकृति की कोख से हुआ है। चाहे वह नर हो या फिर मादा दोनों का रख-रखाव प्रकृति एक समान रूप से करती है और उनका पालन -पोषण भी एक समान ही करती है। नर और मादा में अंतर तो बुद्धिजीवी मानव के विकसित होने पर होने लगा। जब से यह अंतर मानव प्रवृत्ति में घुसा तभी से मादा पर अत्याचार होने लगा। दुनिया की कोई भी सभ्यता एवं संस्कृति स्त्री के बिना विकसित नहीं हो सकती। सभ्यताओं एवं संस्कृतियों के विकसित होने में स्त्री का बहुत ही योगदान रहा है। इसके योगदान को किसी परिसीमन में बाँधा या सराहा नहीं जा सकता। इतिहास इस बात का गवाह है कि जब सभ्यताएँ एवं संस्कृति विकसित नहीं हुई थी तब भी एक मादा शिशु को जन्म देती है, और प्रसवपीड़ा का दर्द सहती रही। स्त्री-पाठ का संबंध मानवीय सभ्यताओं से जुड़ा हुआ है। स्त्री-पाठ का इतिहास दुनिया की किसी भी सभ्यता के इतिहास से भी पुराना है। हाँ यह अलग बात है कि समय-समय पर दुनिया में अलग-अलग हिस्सों में सभ्यताओं और संस्कृतियों का विकास हुआ और उनका अलग-अलग स्त्री-पाठ विकसित हुआ। स्त्रियों के बिना इंसानी सृष्टि नहीं चल सकती। इलाहाबाद विश्वविद्यालय के प्रोफ़ेसर भूरेलाल का मानना है कि, "स्त्री के बिना मानवीय जीवन की कल्पना नहीं की जा सकती।" स्त्री मानवीय भंगिमाओं को भी धारण करती है।

बीज- शब्द : इन्सानी, सभ्यताएँ, जातिवाद, भ्रूणहत्या, अनचाहे गर्भ, सम्वेदनशीलता, भयवाह, हक़ीक़त, आदि।

परिकल्पना : प्रकृति के मुहाने से इंसानी सभ्यता के बहाने स्त्री के बचाने के साथ-साथ पूरी कायनात को बचाने की बात।

आमुख-

मनुष्य का जीवन प्रकृति की गोद में विकसित हुआ, अत: प्रकृति को चलाने के लिए स्त्री का होना बेहद ज़रूरी है। बिना स्त्री के प्रकृति का नीयति-चक्र नहीं चल सकता। स्त्री के ख़त्म होते ही संपूर्ण मानवता ख़त्म हो जाएगी। प्रकृति अपनी धुरी पर रुक जाएगी। इस दुनिया में चारों तरफ़ पानी, पहाड़, जंगल, उबड़-खाबड़ ज़मीन शेष रह जाएगी। इस चिंता को व्यक्त करते हुए छायावादी महान कवि 'जयशंकर प्रसाद' 'कामायनी' में करते हैं कि-

हिमगिरि के उत्तुंग शिखर पर, बैठ शिला की शीतल छाँव।
एक पुरुष भीगे नैनों से देख रहा था प्रलय-प्रवाह।।
अपने में सब कुछ भर कैसे- व्यक्ति विकास करेगा।
यह एकांत स्वार्थ भीषण है अपना नाश करेगा।।

कामायनी के मनु की तरह 'पंकज सुबीर', अपनी कहानी 'दो एकांत' में इस भीषण विध्वंसकारी, प्रलयकारी स्थिति की चिंता व्यक्त करते हुए कहते हैं कि, "पता नहीं कि ऐसा होगा अथवा नहीं होगा, तो कब होगा, लेकिन कई बार ऐसा स्वप्न आता है कि सचमुच ऐसा हो गया है। चूँकि उन सब में स्वयं को पाता हूँ, इसलिए कह नहीं सकता कि यह काफी समय बाद होगा। इसलिए जब इसे लिखने का मन में आया तो ऐसा लगा कि आज ही हो रहा है। सो लिखते समय वर्तमान को ही कालखंड मान लिया है। सारे पात्र आज के ही हैं। आज मतलब, आज। कहीं यह कहने की कोशिश की है कि २०५० में होगा, या उसके बाद के किसी समय में होगा।

बस ऐसा लगा कि यह हो गया है और जब लगा कि ऐसा हो गया है तो बस कहानी का होना तय हो गया है। ये अंत से पहले का अंत है। वो अन्त जो आख़िरी अंत से भी ज़्यादा भयावह होगा।"

हिन्दी साहित्य में आदिकाल से लेकर आधुनिक काल तक स्त्री को, सिद्धों ने स्त्री का संसर्ग अनिवार्य माना, महामुद्रा के रूप, माया, अबला तुम्हारी हाय यही कहानी, नारी केवल तुम श्रद्धा हो, ही के रूप में देखा गया है। उसे सृष्टि की इंसानी सभ्यता के रूप में कभी भी नहीं देखा गया। मानव समाज में स्त्री के अस्तित्व को मिटाने का प्रयास बड़ी सहजता से किया जाता रहा है। स्त्री को देवी, कालरात्रि, डायन, आदि से संबोधित करके एक स्त्री को मिटाने की कोशिश की जाती रही है।

"प्राचीन काल में अरब में, और भारत में भी, बहुदा लोग, लड़कियों को अपने सिर नीचा कराने वाली समझकर मार डालते थे, उन्हें माताओं की ज़रूरत ही ना हो, या यह समझते कि केवल पुरुषों से सृष्टि कायम रह सकती है।" "जहाँ तक प्रकृति बाधक ना हो स्त्री और पुरुषों के अधिकार समान होना ही न्याय और मनुष्यता है।" "मनुष्य पशुता से उन्नत होकर मनुष्यता तक पहुँचता है। पशुओं में लिंग भेद के कारण नर-मादा को छोटा नहीं समझता, न मादा नर से निर्बल ही होती है।" "सच तो यह है की नारियाँ आज ग़ुलामों की ग़ुलाम दासानुदास हैं। प्रकृति के इतिहास में खोजने वाले दूरदर्शी विद्वान कहते हैं कि मनुष्य की आदिम अवस्था में स्त्रियाँ दासी नहीं थीं।"

स्त्री के स्पर्श करने की अनुभूति अर्थात फिलिंग को भी कुदेरा आ गया है, कि एक स्त्री क्या सोचती है अथवा क्या नहीं सोचती है। 'दो एकांत' कहानी पंकज सुबीर के 'महुआ घटवारिन और अन्य कहानियाँ' में संकलित है। पंकज सुबीर की कहानी 'दो एकांत' के कलेवर को 'ए नेशन विदाउट वूमेन' फिल्म से जोड़ कर देखा जा सकता है। इस फिल्म में और इस कहानी में अंतर केवल यह है कि यहाँ एक औरत को हर वर्ष एक बच्चा पैदा करने के लिए उसके बाप के द्वारा बेच दिया जाता है लेकिन इस फिल्म में भी एक पिता के द्वारा एक लड़की को पैसे के लालच में चार लड़कों के लिए या ऐसा भी कहा जा सकता है कि पूरे गाँव के लिए बेच दिया जाता है। जिसमें उस स्त्री की फीलिंग को दरकिनार कर दिया गया है कि स्त्री किस से प्रेम करती है और क्या चाहती है, इस पर ध्यान नहीं दिया गया है। फिल्म और कहानी में अन्तर यह है कि फिल्म सुखांत है और कहानी दुखांत। स्त्री की थोड़ी सी ग़लती के लिए उसके जीवन को नरक कर दिया गया है, जिसमें मनुष्यता को भी खो दिया गया है और उस स्त्री को गौशाला में गायों के बीच जंजीर से बाँध दिया गया है। उस स्त्री का प्रयोग पूरे गाँव का पुरुष वर्ग करता है। उसके शरीर को भोगने के लिए रोज़ाना एक नया आदमी आता है। आज के समाज में पुरुष उस स्त्री पर पशुवत् व्यवहार करता है। आज के हमारे पितृसत्तात्मक समाज में यह विडंबना है कि भारतीय समाज में स्त्रियों का इतिहास पुरुषों के द्वारा लिखा गया है जो कभी एक स्त्री के दर्द को नहीं जान सके। भारतीय परिप्रेक्ष्य में यह कहा जा सकता है कि स्त्रियों का जितना ज़्यादा महिमामंडन किया गया है उतना ही बेरहमी से कुचला भी गया है।

'थमेगा नहीं विद्रोह' की चावली का कथन है कि "गुर्जर, जाट, चमार,..... बाभन, नाई, चूहे सब साले एक जैसे ही हैं। पाप स्वयं करते हैं, बेटियों को ज़िम्मेदार ठहराते हैं। मर्दों द्वारा तय शर्तों और किलेबंदी से औरत तनिक भी इधर-उधर हुई कि इनकी मूँछों पर ख़तरा टूट पड़ता है फिर चाहे वह औरत इनकी माँ ही क्यों ना हो उसकी गर्दन उड़ाने में भी यह मर्द एक क्षण के लिए हिचकता नहीं है, स्वयं चाहे जहाँ मुँह मारता फिरे, जिस चाहे घाट का पानी पीता फिरे, इनकी इज़्ज़त पर कोई आँच नहीं आती है।"

स्त्रियों को अपनी संपत्ति मात्र समझना, वर्तमान समय में जातिवाद के साथ-साथ लिंगानुपात भी तेज़ी से बढ़ रही है। ग़रीबी के चलते ग़रीब मजदूर व्यक्ति को अपनी घर के औरतों का भी सौदा करना पड़ता है, या बेचना पड़ता है। तथाकथित हिन्दुओं के द्वारा यह कार्य कराए जाते हैं। अजंता, एलोरा, खजुराहो, कोणार्क मंदिरों में स्थापत्य और मूर्तिकला में पशुओं के समान मैथुन रत मांसल मानव तनों को बेशर्मी से दर्शाया गया है। कोणार्क एवं खजुराहो में वस्त्र विहीन नारी तन का चित्रण किया गया है। यह चित्रण किस सभ्यता एवं संस्कृति की पहचान पर प्रश्नचिह्न किया गया है।

"इस हरामी पाठक जी आर्य ने मुझे आरिया समाज के मंदिर में ही अपनी इज़्ज़त गवां कर .....भंगी होकर भी बेटी, बहन की लाज उतनी ही अमूल्य होती है जितनी बाभन, बनियों, राजपूतों की होती है।" "मेरी सौत लाकर भी जो अब तक यह मेरा खसम पिता नहीं बन पाया है सो इसलिए कि कमी उस में है, न कमी मेरे में थी, और न ही कमी मेरे सौत में है। मर्द लेकिन इसे स्वीकारते डरते हैं तथा और एक प्रयोग के चक्कर में, और एक स्त्री का जीवन बर्बाद करते हैं, लेकिन अपनी कमी स्वीकार तब भी नहीं करते हैं। लगभग अस्सी प्रतिशत मामलों में होता है तो मर्द बाँझ, लेकिन पूरा समाज बाँझ की गाली देता है औरत को।"

पृथ्वी से लड़कियाँ अचानक नहीं मिट गईं उन्हें मिटाने में पुरुष सत्ता की एक पूरी कायनात लगी हुई थी। जिससे एक स्त्री ही अपने जन्म देने वाली बच्ची को बचाने विफल रही है। "इमोशन से जुड़ी हुई मुख्य शै तो समाप्त हो चुकी है, या शायद समाप्त होने वाली है। और ये जो समाप्त होना है, ये रातों-रात नहीं हुआ है, बल्कि कई बरसों से धीरे-धीरे करके किया गया है। जब यह किया जा रहा था, तब किसी ने भी नहीं सोचा था कि सारा ही समाप्त हो जाएगा। हर कोई तो यह सोच रहा था कि मैं तो केवल अपने हिस्से का ही समाप्त कर रहा हूँ, लेकिन ज़रूरत पड़ने पर दूसरों के पास तो यह उपलब्ध होगा ही। यही सब ने सोचा और पता तब चला, जब यह शै पूरी तरह से ही ख़त्म होने पर आ गई है।"

कथाकार पंकज सुबीर ने अपनी इस कहानी के माध्यम से मनुष्य को आगाह करते हुए कहते हैं, "यह तो बरसों से किए जा रहे

कर्मों का नतीजा था, इसमें हमने क्या किया और हमारे बापों ने क्या किया? इसकी बहस करने से कोई मतलब नहीं है। जो होना था, हो चुका। अब तो यह सोचना है कि आगे क्या होगा। बार-बार एक ही बात का रोना रोने से कुछ नहीं होने वाला। हमारी पीढ़ी ने बंदूकें और तोपें लेकर ख़त्म नहीं किया है, जाने कितने बरसों से धीरे-धीरे होता रहा आख़िर में ये हो गया।" यहाँ कथाकार की दूर दृष्टि का भी परिचय होता है। यह सब एक- दो वर्ष में नहीं हुआ, इसे ख़त्म करने के लिए कई युग लगे थे।

इस पूरी कहानी में बुज़ुर्ग की बातों से यह अनुमान लगाया जा सकता कि वह कितना संत्रास में है। बुज़ुर्ग के एक- एक शब्द में गहरी वेदना घर कर गई है जो अपने पोते को बताने के लिए हिम्मत जुटा रहा है। "कह दिया न कि आज बता दूँगा, जो भी पूछोगे, मगर अभी नहीं बताऊँगा, रात को बताऊँगा। अभी तुम जाओ कामकाज देखो, आराम से रात को बातें करेंगे। बात इतनी छोटी नहीं है कि इतनी जल्दी हो जाए। अभी तुम जानते ही क्या हो।"

"नहीं रही, यही कहा था मैंने? वह झूठ था। सच यही है कि ऐसा कुछ भी नहीं हुआ था, बल्कि मुझे तो यह भी नहीं पता कि वह है कहाँ, और मुझे ही क्या किसी को भी नहीं पता कि यह जो तस्वीर में तुम्हारे पिता के साथ बैठी है और जो तुम्हारी माँ है, यह कहाँ है।" बुज़ुर्ग के इस कथन से मालूम होता है कि एक स्त्री के बिना पृथ्वी खाली नज़र आती है। एक स्त्री ही पृथ्वी को हरा भरा कर सकती है। वर्तमान समय में सरकार के द्वारा विकास के नाम पर जिस तेज़ी से पेड़-पौधों को काटा जा रहा है एक दिन आएगा कि मनुष्य जीवन जीने के लिए मोहताज हो जाएगा। इसी तरह स्त्रियों को भी धीरे- धीरे करके पुरुषों के द्वारा ख़त्म कर दिया गया और जब सेक्सुअल फ्रस्टेशन निकालने के लिए कोई नहीं बचा तब अपने किए गए कर्मों दोषी बनाने में तनिक भी गुरेज नहीं करते।

"यह रातों-रात नहीं हुआ था। बहुत समय से धीरे-धीरे हो रहा था। बहुत सालों से। धीरे-धीरे, आहिस्ता-आहिस्ता। कोई नहीं जानता था कि यह जो धीरे-धीरे हो रहा है, ये कभी एकदम यहाँ तक भी पहुँचा देगा। सैकड़ों बरस लग गए इसको होने में, लेकिन यह हो कर रहा।"

स्त्री को अर्धांगिनी कहा जाता है लेकिन उसी अर्धांगिनी को किसी की पत्नी, बेटी, बहू, माता बनने से पहले ख़त्म कर दिया जाता है। स्त्री को आधे देश की आबादी माना जाता है लेकिन उसी आधी आबादी को इतने बड़े भू-भाग में रहने ही नहीं दिया जाता बल्कि उसके अस्तित्व को मिटाने की जद्दोजहद लगी हुई थी। इस बात को बूढ़े और युवक बीच बात-चीत में महसूस किया जा सकता है- "मेरे पिताजी की जब शादी हुई तो उसके लिए क्या-क्या करना पड़ा था मेरे दादाजी को। उस समय ये सब दिखने लगा था कि अब कुछ समय बाद ये सब होने वाला है। हमारे गाँव और आस-पास के पचासों गाँव में कोई लड़की थी ही नहीं किसी के घर में। सबके घरों में केवल लड़के थे। बस लड़के। मुरझाए हुए, सवालों की तरह घर में घूमते-फिरते नज़र आते लड़के। लड़के, जो कब आदमियों में बदल जाते थे, पता ही नहीं चलता था। यूँ ही बदल जाते थे, बस। कहीं कुछ भी नहीं था उनके लिए, धीरे-धीरे आहिस्ता-आहिस्ता सब लड़कियाँ ख़त्म हो गई थीं। ख़त्म हो गई थीं या कर दी गई थीं। वो आबादी, जो आधी आबादी कहलाती थी, उसे ख़त्म कर दिया गया था। चली गई थी सारी लड़कियाँ जाने कहाँ, जाने कौन देश..... "

एक स्त्री अपना जीवन जीने के लिए अभिशप्त है। लड़कियाँ जन्म लेते या जन्मते ही मौत के भेंट चढ़ा दी जाती हैं। प्रचीन समय और आधुनिक समय में कोई विशेष बदलाव देखने को नहीं मिलता। या ऐसा भी कहा जा सकता है कि प्रचीन और आधुनिक समय में सिर्फ समय का चक्र आगे बढ़ा है बाकी सब वैसा ही है जैसा प्रचीन समय में होता रहा है। हाँ कार्य करने की प्रवृत्ति थोड़ी बदली है। दादा, परदादाओं के समय में अगर यह मालूम हो गया है कि महिला के गर्भ में बच्ची है तो उसको गर्भ में ही मार दिया जाता है और अगर ऐसा नहीं हो सका तो उसके पैदा होते ही दूध में डूबो कर मार दिया जाता है अथवा गाँव के बाहर झोले में भर कर किसी पेड़ में लटका दिया जाता है, या फिर मटकी में भर कर किसी तालाब में डुबो दिया जाता है। लेकिन आधुनिक समय में इससे भी भयावह कर्म किया जाता है। एक स्त्री का पहले जबरन बलात्कार किया जाता है और फिर उसको मार दिया जाता है। शिशु अवस्था में तो बच्ची अपने ऊपर हुए अत्याचार के आभास से संवेदनशील नहीं होती लेकिन वर्तमान समय में तो लड़की अपने ऊपर हुए अत्याचार से संवेदित होती हैं। पुरुषों की संवेदनशीलता मर गई है। भारतीय समाज की बड़ी हक़ीक़तों में ऐसी दिल दहला वाली घटनाएँ हमारे पितृसत्तात्मक समाज में होती रही हैं। एक स्त्री के मनचाहे गर्भ के अधिकार को उससे छीन लिया गया है, उसके गर्भ पर उसका कोई अधिकार नहीं रह गया। स्त्री को सिर्फ और सिर्फ बच्चा पैदा करने की मशीन के रूप में देखा जाता है। वर्तमान में संवैधानिक तौर स्त्रियों की स्वतंत्रता और पढ़ने- लिखने, खेलने आदि अधिकार की बात की जा रही है लेकिन समस्या इस बात की है कि पहले हमें स्त्रियों को बचाना होगा, और स्त्री और पुरुष के लिंगानुपात में समानता लाना होगा, फिर उसके बाद हम उनके अधिकारों की बात कर पाएँगे। "कहीं नहीं गई, हमने ख़त्म कर दीं, हमने। हमने, हम, जो दूसरे हर रूप में स्त्री को पसंद करते थे, लेकिन बेटी के रूप में से देखते ही हमें जाने क्या हो जाता था। पहले कई सालों तक तो यह होता रहा कि पैदा होने के बाद उसे ख़त्म किया जाता था। उस समय पैदा होने से पहले ही ख़त्म करना पड़ता था, क्योंकि तब पैदा होने के पहले पता नहीं चलता था कि पैदा होने वाली संतान नर है या मादा, मगर ख़त्म तब भी कर दिया जाता था। कभी पैदा होते ही खाट के पाए से दबाकर, तो कभी किसी औरत के स्तनों पर नीला तूतिया लगा कर उसका दूध पिला कर। बाहर ख़बर आती थी कि मरी हुई लड़की हुई है। समझने वाले समझ जाते थे कि लड़की पैदा होकर मरी है। कोई कुछ नहीं बोलता था, सबको यही करना होता था। एक मादा, एक और मादा को पैदा करती

थी और फिर कई सारी मादाएँ मिलकर उस को ख़त्म कर देती थीं। बाहर खाट पर बैठे पुरुष इंतज़ार करते थे, दोनों में से किसी एक ख़बर के आने का। या तो ये खबर की बेटा हुआ है बधाई हो, या ये की लड़की हुई है मरी हुई।"

सदियों से समाज ने आर्थिक स्वार्थ में नवजात बालिका के पैदा होते ही ख़त्म करना अच्छा सोचा। लेकिन यह नहीं सोचा कि यह समस्या अपने आप ही समस्या बन जाएगी। "सदियों से इस असीम सृष्टि के बीच प्रश्नचिह्न- सा खड़ा मानव का लघु आकार अपने अस्तित्व की पहचान को टटोलता रहा है। मैं कौन हूँ? क्यों हूँ? इस चराचर सृष्टि में मेरी क्या जगह है? मेरा उद्‌गम और अंत क्या है?"

"ख़बर सुनते ही वह पुरुष उठकर खड़े हो जाते थे, नर पैदा होने पर बोतल खोलने की तैयारियाँ करने के लिए और मादा पैदा होने पर उसे दफनाने की तैयारियाँ करने के लिए। कमरे में पड़ी वह मादा तब तक माँ नहीं बनती थी जब तक कि वह नर नहीं जनती थी"

वर्तमान समय में सरकार ने लड़कियों को बचाने के लिए चिकित्सालयों में डी एन ए टेस्ट पर रोक लगा रखी है और टेस्ट करने और करवाने वाले के ऊपर कार्यवाई भी की जाती है। लेकिन फिर कोई फ़र्क नहीं पड़ने वाला, अब तो बच्चियों को गर्भ में गर्भ के बाहर उसके वजूद से खेल कर ख़त्म करने का नया तरीका अपनाया जाता है। "ये सब बहुत पहले की बातें हैं। बाद में काफी बदलाव आ गया था, अब लड़की को मारने के लिए उसके पैदा होने का इंतज़ार नहीं करना पड़ता था। वो तो तुमको पता ही है पेट में ही पता लगने लगा था कि जो बन रहा है, वह नर है कि मादा।" (वही- १५२)

"नहीं हुई, तब तक हालत और बदतर हो गई थी। अब लड़कियाँ कहीं नहीं थी। सारे रंग बुझ गए थे। अब हर तरफ एक ही रंग था, स्याह रंग। मेरी शादी किसी लड़की से नहीं हुई, बल्कि एक औरत से हुई थी, औरत, जो मुझसे काफी बड़ी थी। शादी भी क्या हुई थी, बस वो आकर रहने लगी थी घर में। बदले में उसके पति को उस बची हुई ज़मीन में से काफी कुछ देना पड़ा था। उसका पति भी उसको ऐसे ही लाया था। तो वह औरत मेरे पास आ गई और उससे ही पैदा हुआ था इसका बाप।" "इसका बाप जब बड़ा हुआ जवान हुआ, तब तक सब ख़त्म हो चुका था। कुछ नहीं था। शादी जैसा तो कुछ सोचा भी नहीं जा सकता था। सोचते भी कैसे, और किससे।" (वहीं-१५४) "इसको पैदा करने के लिए इसकी माँ को किराए पर लिया था मैंने।"

"और फिर यह पैदा हो गया। औरत के आने से दस महीने बाद। औरत साल भर के लिए आई थी। अगर ये नहीं आता तो भी साल भर ही रुकती। बीच में छह महीने बाद उसका बाप आकर फिर से पैसा ले गया था। बाकी आधे का आधा। बीज इसके बाप का था, इसलिए यह उसका बेटा है और कोख उस औरत की थी, इसलिए वह इसकी माँ थी, बस। बस, मगर उसको तो जाना था। अब कहीं और, किसी और को पैदा करने। यही तो उसका काम था। उसका या शायद उसके बाप का। बिना रुके चलते जाना।"

वर्तमान समय में सरकार बेटी बचाओ बेटी पढ़ाओ का अभियान चला रही है। लेकिन सरकार को शायद यह नहीं मालूम की जब तक व्यक्ति अपनी गंदी मानसिकता को नहीं छोड़ेगा तब तक कितनी भी योजनाएँ चलाई जाएँ कोई फ़र्क नहीं पड़ने वाला। इससे तो पुरुषों को और फ़ायदा होगा। उन्हें एक बच्चा पैदा करने वाली मशीन मिल जाएगी। कारखानों की मशीनों को भी ख़राब होने के डर से समय- समय पर रेस्ट दिया है लेकिन यहाँ एक स्त्री को मशीन से भी ज़्यादा गई-गुज़री समझा जा रहा है। मनुष्य के जीवन का सफ़र बहुत ही लम्बा है। जीवन को काटने के लिए किसी आश्रय की ज़रूरत पड़ती है।

"वैसे ही जैसे इसके बाप ने किया था। वैसे ही जैसे ये हुआ था। तरीका तो वही है, अब उसके अलावा और है ही क्या। अब ये ज़रूर है कि दाम और बढ़ गए, लेकिन ज़रूरत भी कभी दाम देखती हैं। ज़रूरत है तो दाम है।"

अब इससे ज़्यादा त्रासदी और क्या होगी। सौ-पचास गाँवों में भी ढूँढ़ने पर औरत नहीं मिल रही। मेरा मानना है कि ये त्रासदी वास्तव में कामायनी से ज़्यादा ही भयावह है। जब हमारे बाप दादाओं को यह मालूम था कि एक स्त्री का पुरुष के जीवन में क्या महत्त्व है, तो थोड़े से लालच के चलते उसको खत्म करना क्यों शुरू कर दिया। "है कोई। गाँव का बटियादार बता रहा था कि दूर कहीं कोई औरत है उसकी रिश्तेदारी में। अभी पिछले महीने उसका फ़ोन आया था तो बता रहा था,..... कहता था कि पैसा ज़्यादा लगेगा।" इस अवसाद को बूढ़े के अन्तिम वाक्य में महसूस किया जा सकता है कि एक स्त्री के बिना पुरुष का जीवन कैसा होता है, "बूढ़े ने दूसरे युवक के हाथ पर कुछ दबाव बढ़ा दिया और उसी टूटे स्वर में बोला, "वो....आख़िरी औरत भी पिछले हफ्ते मर गई।"

मकान के दो सिरे होते हैं और दोनों के ही 'दो एकांत', इसी तरह व्यक्ति के जीवन में भी एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी तक दो सिरे होते हैं और वो दोनों सिरे 'दो एकांत' को जोड़ते हैं। कथाकार पंकज सुबीर इस कहानी में यह दिखाने की कोशिश करते हैं अगर हम अभी भी नहीं सँभले तो जिस तरह इस कहानी में युवा और बुज़ुर्ग के बीच 'दो एकांत' का जीवन रहा उसी तरह बहुत ही जल्द वह समय हमारे सामने भी होगा।

निष्कर्ष :

पंकज सुबीर की कहानी 'दो एकांत' रचना का शिल्प विधान फ्लैशबैक शैली पर किया गया है। पितृसत्तात्मक समाज का पुरुष यह भूल जाता है कि एक स्त्री के अपने सपने होते हैं। उसका भी अपना जीवन है। पितृसत्ता की सोच सिर्फ संतानेच्छा ही रही है। जिसके ऐतिहासिक और सामाजिक अनेक प्रमाण हैं। स्त्री-पाठ दुनिया की सबसे पुरानी सभ्यता है। स्त्री-पाठ का इतिहास बहुत ही पुराना है। 'दो एकांत' कहानी की कथा अपनी संरचनात्मक विशिष्टता में अतीत के परिवेश में वर्तमान को भी समाहित कर लेती है। इस कहानी की थीम को जयशंकर प्रसाद की रचना कामायनी से मिलाकर देखा जा सकता है। इस कहानी में मातृसत्तात्मक तथा पितृसत्तात्मक समाज की झलक देखी जा सकती है और आदिम

सभ्यता से लेकर आधुनिक ज्ञान-विज्ञान एवं मशीनीकरण के विकास की सूक्ष्म सांस्कृतिक स्थितियाँ भी परिलक्षित हो रही हैं। स्त्री सृष्टि की अधिष्ठात्री रही है। मनुष्य के जीवन में सुख- सहवास का कारण स्त्री ही रही है। मानव जीवन की अंतिम स्त्री या पहली स्त्री कौन है? मानव जीवन में स्त्री के लिए क्या जगह है। स्त्री सृष्टि की नियति चक्र है। स्त्री की सृष्टि को चलाने में महत्त्वपूर्ण भूमिका है। समकालीन सुप्रसिद्ध कथाकार पंकज सुबीर की कहानी बखूबी सभी बिन्दुओं को रेखांकित करतीं है और यह भी आगाह करती है कि पुरुष के जीवन में एक स्त्री की भूमिका बहुत महत्त्वपूर्ण होती है।

पंकज सुबीर दो एकांत' कहानी के माध्यम से यह कहना चाहते हैं कि, स्त्री के लिए शिक्षा, स्वतंत्रता,अधिकार ये सब बाद की प्रक्रिया है, पहले उसे मनुष्य की तरह जीवित रखना बहुत ज़रूरी है। पहले तो उसे मानव समाज में जीवित रखना बहुत ज़रूरी है, इस सृष्टि के संचालन में और एक नई सभ्यता के निर्माण में उसका योगदान बहुत ही महत्त्वपूर्ण रहा है और रहेगा।

सन्दर्भ-ग्रन्थ सूची

आधार- ग्रन्थ

१- महुआ घटवारिन और अन्य कहानियाँ, पंकज सुबीर,(दो एकांत) सामयिक प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण- २०१२

सहायक- ग्रन्थ

१- कामायनी, जयशंकर प्रसाद, श्यामा प्रकाशन संस्थान इलाहाबाद

२- स्त्रियों की स्वाधीनता, राधा मोहन गोकुल, राहुल फाउंडेशन लखनऊ- २०१३, पृष्ठ- संख्या- ११, १२,५३

३- थमेगा नहीं विद्रोह, उमराव सिंह जाटव, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण-२००८, पृष्ठ संख्या- १७१,२२९

४- ए नेशन विदाउट वुमेन- फिल्म

५- देह की राजनीति से देश की राजनीति तक, मृणालपाण्डे, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, चौथा संस्करण, २०१९पृष्ठ-१३

000

नई पुस्तक

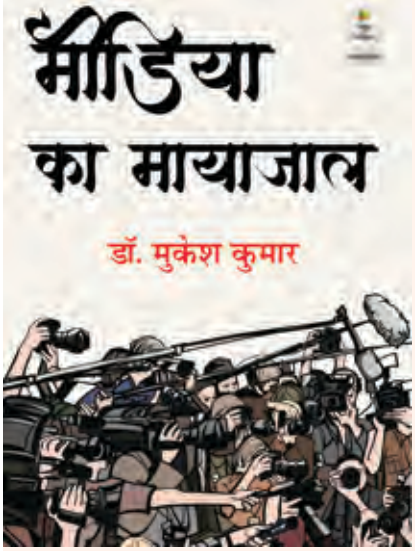

मीडिया का मायाजाल

(पत्रकारिता)

लेखक : डॉ. मुकेश कुमार

प्रकाशक : शिवना प्रकाशन, सीहोर, मप्र

चालीस से भी अधिक लेखों द्वारा वर्तमान पत्रकारिता की कलई वरिष्ठ पत्रकार डॉ. मुकेश कुमार ने खोली है इस किताब में। वरिष्ठ पत्रकार डॉ. सुधीर सक्सेना किताब को लेकर कहते हैं- "मुकेश कुमार अपने लेखों में समकाल के मीडिया के इतिहासकार के तौर पर उभरते नजर आते हैं। मीडिया के संदर्भ में उनका लेखन आरसी की तरह है, ऐसा आरसी, जिसमें मीडिया का चेहरा दाग-धब्बों के साथ उभरता है। अब यह बात दीगर है कि बहुतेरे घरानेदार 'दाग अच्छे हैं' का ऐतबार पाले बैठे हैं। 'मीडिया का मायाजाल' से गुजरते हुए मुकेश कुमार की कई मान्यताएँ व निष्पत्तियाँ उभरकर आती हैं। मुकेश का कहना है कि संपादक की हत्या की जा चुकी है। वह स्वामी, सत्ता और सौदे (बाजार) के सामने नतमस्तक है। मीडिया में दलाल तंत्र हावी है। हर कार्पोरेट-घराने को क्रिश्चियन मिशेल चाहिये। चैनलों ने माइक आईडी देकर खाने-कमाने की निर्लज्ज छूट दे रखी है। मुकेश की कामयाबी यह है कि उन्हें पढ़कर हमारे ज्ञान-कोशों का विस्तार होता है। उनका लिखा पढ़कर हम जाने हुए मीडिया को -उसकी प्रवृत्ति और चरित्र को- और अधिक जान पाते हैं। उनका लेखन हमें 'एनरिच' करता है। औरों से एक कदम आगे बढ़कर 'लिटमस-सलूक' से वह बैनरों और चैनलों की तासीर भी बताते हैं। मुकेश कुमार के कवि होने का सीधा अर्थ है कि वह सरल और संवेदनशील हैं, लेकिन यह गौरतलब है कि उनका 'बख्श दो गर खता करे कोई' में कोई यकीन नहीं है। वे न तो हिन्दुस्तान के सबसे अमीर आदमी के चैनलों के सच को बताने से हिचकते हैं और न ही 'अंधी राजनीति का अंधा कुआँ' में दैनिक भास्कर को आड़े हाथों लेने से चूकते हैं। वे अतार्किकता पर चोट करते हैं। नोबेल-विजेता अमर्त्य सेन पर डाक्यूमेंट्री 'द आर्गूमेंटेटिव इंडियन' को प्रमाणन से वंचित रखना न सिर्फ दुर्भाग्यपूर्ण है, वरन फासीवाद की आहटें भी समेटे है। मुकेश के एक लेख का शीर्षक ही है। 'आने वाले ख़तरे का ट्रेलर'। उनके दो लेख अत्यंत महत्वपूर्ण हैं। पहला मैकार्थीवाद की राह पर सरकार, दूसरा मीडियावी गठजोड़ के ओरछोर। ये लेख क्रमश: वैश्विक और राष्ट्रीय संदर्भ को समेटते हैं। बीजेपी मीडिया की जिस स्वतंत्रता का उपयोग कर बड़ी पार्टी बनी है, उसी का निर्लज्जतापूर्वक हनन कर रही है। मुकेश 'न्यू यार्क टाइम्स' के हवाले से कहते हैं कि भारतीय मीडिया खौफ में जी रहा है। 'हिन्दुस्तान टाइम्स' के संपादक की विदाई, एनडीटीवी की बिक्री की अफवाहों को शह और फसल बीमा के संदर्भ में 'टाइम्स ऑफ इंडिया' जयपुर की भूमिका के परिप्रेक्ष्य में वे प्रश्न और प्रतिप्रश्न करते हैं। श्रीनिवासन की बर्खास्तगी के बहाने वे समर्पण की अदा पर फिदा होने से इंकार करते हैं।"

000

नैसर्गिक करुणा, आक्रोश, इंकार और मनुष्यतापूर्ण ज़िद की कलम: राकेश कबीर

भरत प्रसाद
अध्यक्ष, हिन्दी विभाग
पूर्वोत्तर पर्वतीय
विश्वविद्यालय

मौजूद वक्त एक अर्थ में उल्लेखनीय और अविस्मरणीय है कि सृजन की मैदान में साहित्येतर अनुशासनों का हस्तक्षेप तेज़ी से कायम हुआ है। न्यायिक सेवा, प्रशासनिक सेवा, वित्त क्षेत्र और यातायात सेवा में संलग्न अधिकारी लगातार अपनी कलम की उपस्थिति दर्ज करा रहे हैं। आजादी के बाद यह परम्परा इतनी मज़बूत हुई कि श्री लाल शुक्ल और अशोक वाजपेयी जैसे सशक्त हस्ताक्षर सामने आए। आज भी प्रशासनिक क्षेत्र की अनेक प्रतिभाएँ कहानी, उपन्यास, कविता जैसी प्रमुख विधाओं में अपनी सक्रियता का आकर्षण पैदा कर रही हैं। पूर्वांचल के युवा उपन्यासकार बालेन्दु द्विवेदी का उपन्यास "मदारीपुर जंक्शन" महीनों तक खासी चर्चा में रहा, जो कि काशीनाथ सिंह के उपन्यास - काशी का अस्सी की तर्ज का उपन्यास है। प्रशासनिक जगत् से कविता की विधा में उल्लेखनीय पहचान बनाने वाले बहुत कम शब्द स्वर हैं, जो हैं भी उनकी अपनी पहचान असंख्य राजनीति परस्त कवियों की भीड़ में कहीं खो गयी है। इनमें एक नाम हैं-प्रतिभा चौहान, जो हैं तो न्यायिक सेवा में, परन्तु पिछले ०५ वर्षों में उभरती हुई कवयित्री के तौर पर अपनी संभावनापूर्ण पहचान बनाने में सफल हुई हैं।

प्रशासनिक दायित्व को सँभाले रखते हुए सृजन करना व्यावहारिक और मानसिक दोनों रूपों में बेहद कठिन और चुनौती पूर्ण होता है, परन्तु राकेश कबीर इस मोर्चे पर आश्चर्य जनक रूप से खरे उतर रहे हैं। अपनी पहली काव्यकृति-नदियाँ बहती रहेंगी की भूमिका में राकेश कबीर लिखते हैं- "मेरी जन्मभूमि गाँव में है और गाँव मेरे हृदय में बहुत गहरे बसा है। हरे भरे खेत, खलिहान, नदी, तालाब, कुएँ, गाय, भैंस, बकरियाँ और उनके चरवाहे, रखवाले सभी की चिंता, सभी से प्रेम, उनकी स्मृतियाँ इस संग्रह की कविताओं में प्रकट हुई हैं। गाँव गिराँव की हर चीज़ दिल के बहुत करीब है। और जब गाँव और गाँव के लोगों के साथ कुछ भी ग़लत होता है तो बहुत बुरा लगता है।"

(पृष्ठ संख्या-०२)

इस लघु काव्यसंग्रह की एक कविता - बिरह को देखिए। इसमें प्रकृति के एक दृश्य को निरखकर कवि के हृदय ने भावमय कल्पना की उड़ान भरी है। वैसे तो सारी प्रकृति ही प्राणमय है। कवि की कलम उसे मनुष्यों की दुनिया में असाधारण कद देते हुए महाप्राण मय बनाती है, उसके अलक्षित मर्म को अर्थ देती है, सदियों, शताब्दियों से मनुष्य के लिए उसके मौन को स्वर देती है और प्रकृति है तो हम हैं, यह ऋण का भाव सर्जक की कलम जगाती है।

बिरहन की तड़प से सुलगते बदन पर
जैसे आज पड़ी हों प्रेम की बूँदें
और तृप्ति के एहसास से
बुझती बिरह की आग से
उड़ता धुआँ छा गया हो
हर तरफ हर कहीं!

(पृष्ठ संख्या-१४)

नदियाँ बहती रहेंगी, शीर्षक कविता में कवि विचार रखता है कि नदियों के साथ नदी, हरियाली के साथ हरियाली, हवाओं के साथ वायु हो जाने की योग्यता केवल मनुष्य को नसीब है, जिसे नष्ट नहीं करना चाहिए। कवि निरंतर प्रकृति के नयनाभिराम दृश्यों, रूपों, घटनाओं से एकाकार होने की प्यास जगा लेता है। एक अन्य कविता- विकास तुम आना, में राकेश लिखते हैं-

तुम आओगे तो जहरीली हो जाएँगी
मंद-मंद बहती ये चंचल हवाएँ

भरत प्रसाद
अध्यक्ष, हिन्दी विभाग
पूर्वोत्तर पर्वतीय विश्वविद्यालय
शिलांग-793022
मेघालय
मोबाइल- 09774125265

तुम आओगी तो सुनसान हो जाएगा
आसमान
बादलों की रिमझिम भी हमसे रूठ जाएगी
तुम आओगे तो बेघर हो जाएँगे
तमाम निर्दोष आज़ाद ख़याल
चिर ई चुरूंग।
(पृष्ठ संख्या-१६)

जहरीला यथार्थ है अंधे विकास की आँधी निगल रही है प्रकृति का नैसर्गिक अस्तित्व। साथ ही हमारी क्षमता, प्रतिभा और संभावना को भी। विकास के पहिए के नीचे सृजन का बीज भी कुचलकर मिट जाता है। काश! प्रकृति का साम्राज्य चिर अखंड, अक्षुण्ण रह पाता। मनुष्य ने अपने बेलगाम विकास का बोझ लादकर पतन की अमिट पटकथा लिख दी है। "बारिशें" शीर्षक कविता संग्रह की सार्थक कविता बन पड़ी है। देखिए-

मूसलाधार बारिश में नहाते पेड़
पत्तियों के ऊपर बूँदों की पट-पट
सब कुछ धुलता हुआ सा
कितना अच्छा लगता है।
(पृष्ठ संख्या-१८)

दरअसल कवि के भीतर एक और समानांतर हृदय स्थायी बनने की ओर है, वह है-प्रकृति-हृदय। प्रकृति को कवि ने एक भाव विह्वल बच्चे की भाँति अबूझ आश्चर्य से निरखने की योग्यता पायी है। संभवत: प्रकृति के हर रूप, रंग, अंदाज़, तेवर, अदा, छटा पर कविता रच देने का नृत्यकार हृदय कवि ने पाया है।

इस संग्रह को यदि देशज नदियों को समर्पित पुस्तक कहा जाय, तो कुछ भी अतार्किक न होगा। कारण कि अनेक कविताएँ केवल अस्तित्व हीन होती नदियों की चिंता में रची गयी हैं। जैसे एक कविता है-सूखती नदियाँ। लगता है कवि के लिए नदी माँ जैसी नहीं, साक्षात माँ है। क्योंकि नदी के पानी के साथ अपने आँसुओं का तालमेल बिठाने में कवि को तनिक भी देरी नहीं लगती। गंगा, यमुना जैसी नदियाँ अपने अस्तित्व की कठिनतम लड़ाई के दौर से गुज़र रही हैं। कौन जाने १०० साल बाद ये दोनों कालयात्री नदियाँ सरस्वती की तरह इतिहास की घटना बन जाएँ। सरस्वती तो राजस्थान के विकट रेगिस्तान और अंतहीन तपिश में मिट गयी। गंगा यमुना मानव के विकास की ज्वाला में सूखकर समाप्त हो जाएँगी। कवि अपने गाँव के अंचल की सई नदी को किसी गंगा से कम नहीं मानता। वैसा ही अगाध स्नेह, वैसा ही आकंठ समर्पण, वैसी ही अनम्य ज़िद्द उसके साथ खड़े होने की।

पहली बार सूख गई है सई नदी
दूर तक उड़ता है रेत का बवंडर
फागुन की गर्म तेज़ बयार से
सरपट दौड़ता है बच्चों का झुंड
नदी के आरपार बेरोकटोक
(पृष्ठ संख्या-२०)

अपनी खंडहर शीर्षक कविता में कवि पुन: प्रकृति बद्ध हुआ है, मानों प्रकृति के किसी भी रूप पर आघात वह अपने कलेजे पर सह रहा हो। यही कारण है कि समूचा संग्रह प्रकृति के विविध रूपों को बचाने की नैतिक लड़ाई है। इस कविता में एक सघन आक्रोश, एक तीखा इंकार, एक भावाकुल ज़िद्द निरंतर चमकती रहती है। जो भीतर संत कबीर के खर व्यक्तित्व की एक लघु तरंग जीवित रहने का पुख्ता संकेत है। यदि इस युवाकवि का वश चले तो एक भी हवशी मनुष्य को प्रकृति की ओर हिंसक निगाहों से देखने न दे,बर्बाद कर देना तो बहुत दूर। "तन्हाई" शीर्षक कविता मूल स्वर है कि मन खुशियों का विकल्प तलाशता है और खुशियाँ हैं कि मृगमरीचिका ही रहती हैं। दिखती हैं, पास आती हैं, हासिल होने का भ्रम पैदा करती हैं और देखते-देखते ग़ायब। तन्हाई एक-एक साँस के भीतर का दरसत्य है। इस यथार्थ से धरती के प्रत्येक मनुष्य को गुज़रना पड़ता है।

आइए जरा तौलें कविता में छिपे अर्थ का वज़न। कविता है-तेरी यादें। जब प्रेम दीवानगी का शिखर छू ले,फिर प्रेम कहाँ रह जाता है? प्रेम वैसे भी अलौकिकता के रसात्मक भाव में ही जीवित रह पाता है। उसकी शुररूआत ज़रूर भौतिक रूप, रंग, आकर्षण से होती है, परन्तु प्रेम की भौतिक सत्ता अपने भीतर अलौकिकता का परम चुम्बकीय जादू छिपाए हुए है। यही कारण है, कि दुनिया के एक से बढ़कर एक कवियों ने प्रेम के अद्वितीय एहसास पर दिल थामकर आँसू बहाए हैं, और आगे शताब्दियों तक प्रेम जैसे मंत्रनुमा शब्द पर कलम का उद्दाम आवेग कम न होगा, चाहे भौतिकता, उपलब्धि, माया का तंत्र जीवन में कितना भी हावी क्यों न हो जाय।

अब तो एकदम तन्हा हूँ
सुनसान है मेरी शामो सहर
शोर है,भीड़ है हर तरफ
यादों में आकर और तड़पा जाती
कोशिशें सारी नाकाम हुई हैं
तुम्हें भूल जाने की।
(पृष्ठ सं. २६)

राकेश कबीर भारतीयता के खट्मिठ एहसासों से बुने हुए भदेस हृदय की मूर्ति हैं। इसलिए उनकी कविताओं में अलग से कोई कलाबाजी, कोई शिल्प लाघव,कोई ऊँचे ख़यालों भरी चतुराई या चौंकाऊ मायाजाल नहीं नज़र आएगा। उनके पास कहने को जो है, सीधा, साफ, खुला और अकृत्रिम है। देखिए उन्हीं की एक कविता-इंतज़ार। एक तरफ प्रकृति से शिशुवत् लगाव, दूसरी तरफ स्त्री से शब्दातीत अनुराग, आसक्ति, खिंचाव वो भी अकुंठ और नि:संकोच। ये दोनों विशेषताएँ कवि के नैसर्गिक मन के प्रमाण हैं। इससे भी उल्लेखनीय यह कि भावनाओं का नयापन, अनुभूति की जीवंतता और अपने सीमारुद्ध दायरे को तोड़ने की ज़िद और योग्यता कवि में स्थायी है।

जाति शब्द का नामोनिशान भारतवर्ष के नक्शे से अभी, इसी क्षण मिट जाना चाहिए, जिसे पृथ्वी के किसी भी कोने में मौजूद रहना अवैध हथियार पालने जैसा है। कवि इस महाघृणित व्यवस्था से इतना आहत है कि उस पर कलम चलाए बगैर नहीं रह पाता। कविता का शीर्षक है-जाति तो रहेगी। वस्तुत: जातिवाद एक आदिम मानसिकता है, जो अहंकारमय आत्ममुग्धता का ही एक रूप है। जातिवाद एक मायावी मुखौटा लगाए रहता है। यह मनुष्यता के बीच मौजूद बैठा हुआ एक घातक शत्रु है, जो प्रतिभा को प्रतिभा से, हृदय को हृदय से, प्रेम को प्रेम से और विश्वास को विश्वास से मिटा देता है। "धूप

की लकीर" कविता में राकेश कबीर कहते हैं-

बालमन की हठीली सहमति है कि
स्कूल का घंटा आख़िरी बार
ठीक उस समय बजता है
जब ढलते सूरज की
कमज़ोर पीली धूप
ठीक उसी लकीर पर आकर
ठहर जाती है।
(पृष्ठ सं. ४४)

दूसरे संग्रह-कुंवरवर्ती कैसे बहे, कविताओं तक की यात्रा एक सहजता की नैसर्गिक अनुभूति से सहजता परिपक्व अभिव्यक्ति तक की यात्रा है। ऐसे में जबकि हिंदी कविता में भाषाई मकड़जाल, शैलीगत उलझाव और अर्थ गत रहस्यबाज़ी बहुत बेलगाम चुकी है, राकेश कबीर की कविताएँ आम पाठक को बहुत उम्मीद देती हैं। दूसरे संग्रह की भूमिका में सुपरिचित कवि दिनेश कुशवाहा का निष्कर्ष है, महत्वपूर्ण है, जो लिखते हैं-"राकेश कबीर का अनुभव संसार बहुआयामी और बहुस्तरीय है। भारतीय समाज के विभिन्न यथार्थ को उनकी पैनी दृष्टि इस तरह भेदती है, कि उसका एक्सरे हो जाता है। यहाँ सत्ता, तंत्र, मठाधीश, सरमाएदार और बिचौलिए सब बेनकाब हैं। मात्र यही नहीं गाँव, शहर, पानी, पर्यावरण, प्राईमरी पाठशाला, विश्वविद्यालय, धर्म, धंधा, वसंत और पतझड़, सबका डी.एन.ए. टेस्ट कराता है कवि। यह कवि का साहस है कि वह ऐसी बातें बहुत ही सहजता से कह देता है, जिसे कहने में अन्य कवियों को हज़ार बार सोचना पड़ता है।" (कुंवरवर्ती कैसे बहे : पृष्ठ संख्या – ०७)

अंतत: "आँधियाँ" शीर्षक कविता की कुछ लकीरी पंक्तियाँ पेश करते हुए ...

दरख्त काँपते हैं थर-थर
बेचारे मारे डर के डर-डर
फड़फड़ाते रहते हैं खाकर
बवंडरों के थप्पड़
कुछ की टूटती हैं डालियाँ
कुछ गिर पड़ते हैं लड़खड़ाकर।
(पृष्ठ संख्या-३७, कुंवरवर्ती कैसे बहे)

000

नई पुस्तक

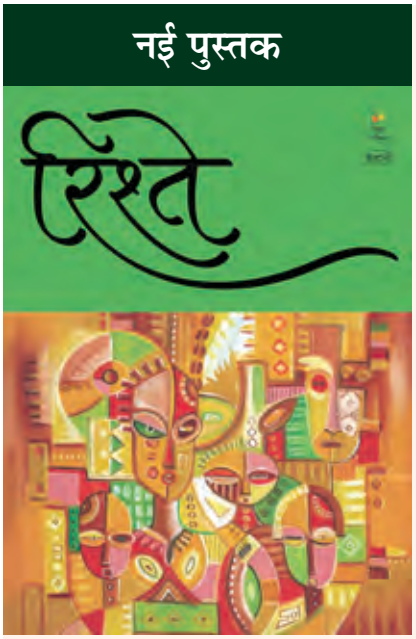

रिश्ते

(कहानी संग्रह)

लेखक : पंकज सुबीर

प्रकाशक : शिवना प्रकाशन, सीहोर, मप्र

पंकज सुबीर की प्रारंभिक कहानियों पर यह तीसरा संग्रह है जो शिवना प्रकाशन द्वारा प्रकाशित किया गया है। इससे पहले होली तथा प्रेम के नाम से भी दो कहानी संग्रह इसी प्रकार के आ चुके हैं। इस संग्रह रिश्ते में पंकज सुबीर की वह प्रारंभिक कहानियाँ संकलित हैं, जो किसी न किसी रिश्ते को लेकर लिखी गई हैं। कोई था..., गाड़ी बुला रही है..., ख़ास दोस्त, प्रेम चतुर्दशी, नेह पत्र, पीताम्बरा, राम जाने, एक रुकी हुई कहानी, उस मोड़ से लौटकर, और परी आ गई, ऋतु बदली, रूप गर्विता, तुम भी तो वही हो न...?, बुआ, बैसाख का एक दिन, गीता की मम्मी, अम्मा का घर, वहाँ, जहाँ शायद ज़मीन है..., बिलौटी, गोल-गोल आँखों वाला जोगी, फ़रिश्ता, लौ से लौ जलती है..., मेरे रश्के क़मर, तुझको मुझको जीवन अमृत, नाम की इन कहानियों में रिश्तों की सुगंध बसी हुई है। इन कहानियों को लेकर लिखी गई भूमिका तीनों किताबों में एक सी है। भूमिका में पंकज सुबीर कहते हैं- असल में यह सारी कहानियाँ बिल्कुल प्रारंभिक दौर की कहानियाँ हैं। उस समय की कहानियाँ जब मैं शायद कॉलेज में पढ़ता था और कुछ तब की हैं, जब कॉलेज बस अभी छूटा ही था। इसीलिए यह बहुत कच्ची कहानियाँ हैं। यह शुरूआत की कहानियाँ हैं। इनको किताब के रूप में पाठकों के सामने लाने के अपने ख़तरे हैं, लेकिन मुझे लगा कि ख़तरे उठा कर इन कहानियों को सार्वजनिक इसलिए भी किया जाना चाहिए कि इनमें से कई कहानियाँ तो समय-समय समाचार पत्रों में प्रकाशित भी हो चुकी हैं। प्रकाशित हो चुकी हैं, उसका मतलब यह कि पाठक इन्हें पढ़ तो चुके ही हैं। फिर ये भी कि ये कहानियाँ मैंने ही लिखी थीं, तो इन्हें छिपाया क्यों जाए? इसलिए ही ख़तरे को उठाते हुए इन कहानियों को सामने ला रहा हूँ। जैसा मैंने कहा कि ये कहानियाँ कॉलेज और उसके ठीक बाद की कहानियाँ हैं। वह समय जब गुलशन नंदा और रानू के उपन्यास पढ़-पढ़ कर दिमाग़ में वही सब चलता था। प्रेम, परिवार, मिलना, बिछड़ना और अलविदा कहना। अधिकतर कहानियाँ बीस-बाईस साल पहले लिखी गई कहानियाँ हैं। वह समय जब न तो कम्प्यूटर था, न मोबाइल, न इंटरनेट, उस समय ले-देकर बस फ़ोन होता था, जो भी सारे घरों में न होकर कुछ विशिष्ट घरों में ही होता था। और हाँ पत्र होते थे। वह सूचना क्रांति का समय नहीं था। इसलिए इन कहानियों में आज के पाठक को यह असहजता भी लगेगी। कभी बैठकर सोचता हूँ कि मोबाइल, इंटरनेट, सीसीटीवी कैमरे, वीडियो कॉलिंग ने हमारी कहानियों को कितना कठिन कर दिया है। ख़ैर तो यह जो कहानियाँ हैं यह अत्यंत भावुक कहानियाँ हैं, जिनको आजकल लिजलिजी कहानियाँ कहा जाता है। इस प्रकार के भाव और भावनाएँ आजकल नहीं होती हैं।

000

शिवना प्रकाशन द्वारा प्रकाशित नई पुस्तकें

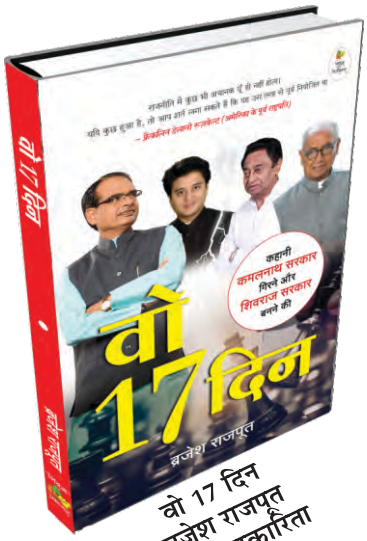

वो 17 दिन
ब्रजेश राजपूत
चुनाव पत्रकारिता

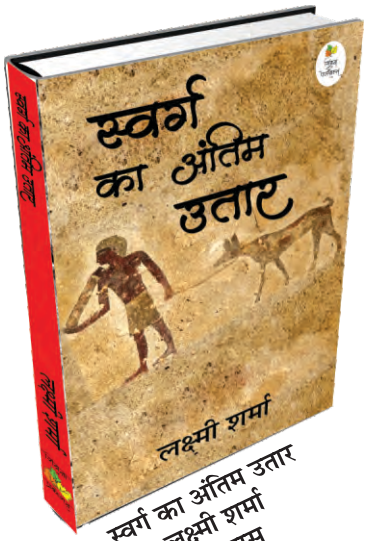

स्वर्ग का अंतिम उतार
लक्ष्मी शर्मा
उपन्यास

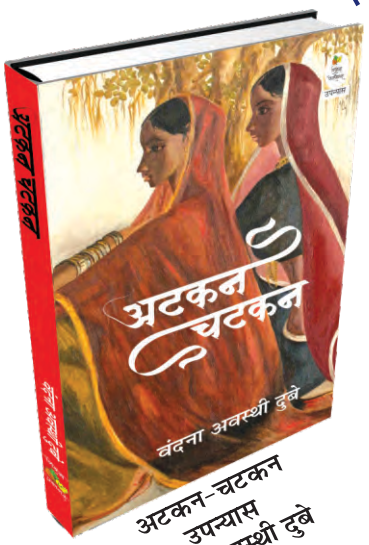

अटकन-चटकन
उपन्यास
वंदना अवस्थी दुबे

अम्लघात
सुधा ओम ढींगरा
कहानी संकलन

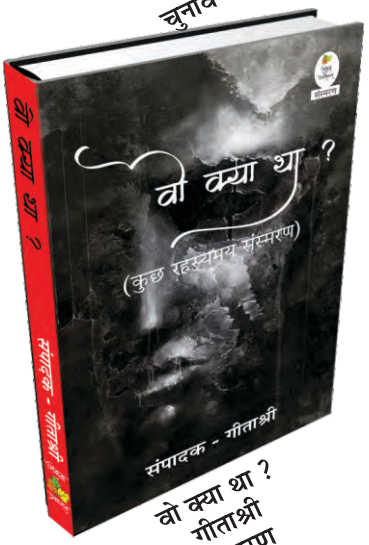

वो क्या था ?
गीताश्री
संस्मरण

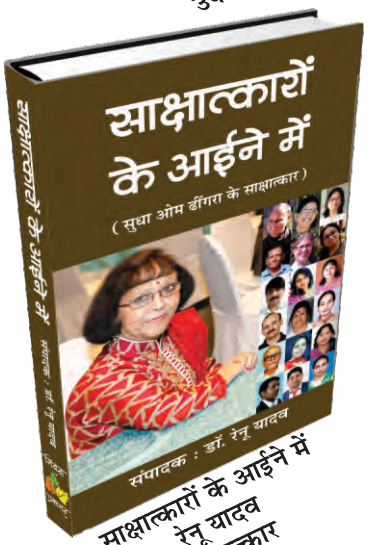

साक्षात्कारों के आईने में
रेनू यादव
साक्षात्कार

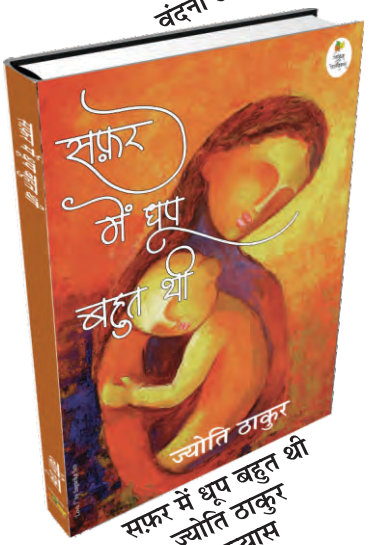

सफ़र में धूप बहुत थी
ज्योति ठाकुर
उपन्यास

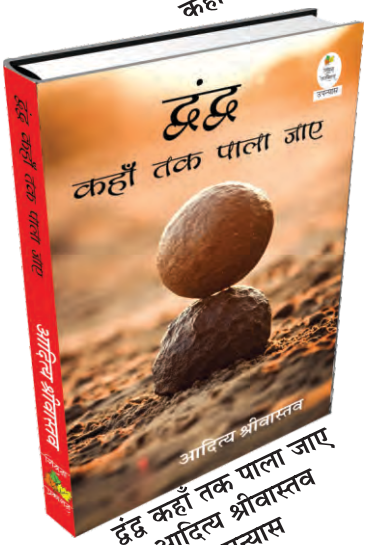

द्वंद्व कहाँ तक पाला जाए
आदित्य श्रीवास्तव
उपन्यास

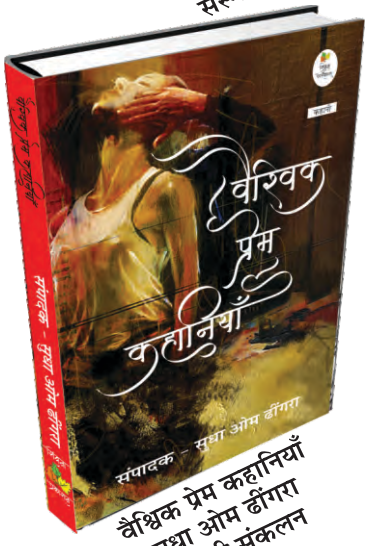

वैश्विक प्रेम कहानियाँ
सुधा ओम ढींगरा
कहानी संकलन

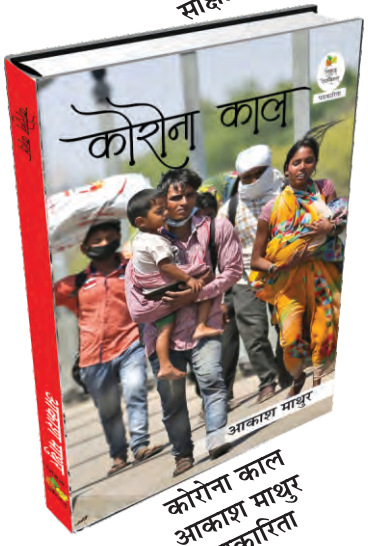

कोरोना काल
आकाश माथुर
पत्रकारिता

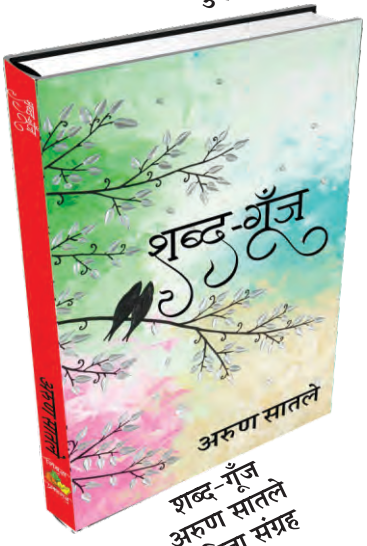

शब्द-गूँज
अरुण सातले
कविता संग्रह

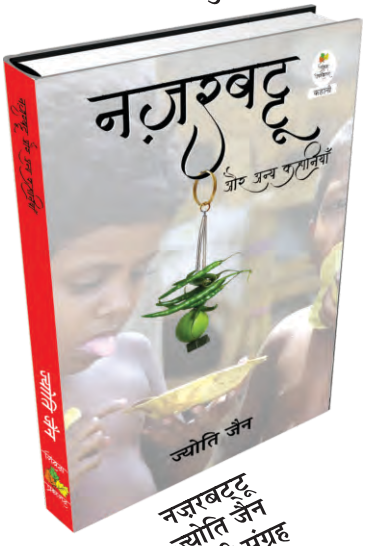

नज़रबट्टू
ज्योति जैन
कहानी संग्रह

शिवना प्रकाशन

शिवना प्रकाशन, शॉप नं. 3-4-5-6, सम्राट कॉम्प्लैक्स बेसमेंट, बस स्टैंड के सामने
सीहोर, मध्य प्रदेश 466001
फोन : 07562-405545, 07562-695918
मोबाइल : +91-9806162184 (शहरयार)
ईमेल : shivna.prakashan@gmail.com
http://shivnaprakashan.blogspot.in
https://www.facebook.com/shivna.prakashan

शिवना प्रकाशन की पुस्तकें सभी प्रमुख ऑनलाइन शॉपिंग स्टोर्स पर

amazon http://www.amazon.in
flipkart http://www.flipkart.com
Paytm https://www.paytm.com
ebay http://www.ebay.in

दिल्ली में पुस्तकें प्राप्त करें : हिन्दी बुक सेंटर, 4/5 आसफ अली रोड
फोन : 011-23286757 http://www.hindibook.com

Shivna Sahityiki ● Quarterly ● January-March 2021 ● RNI : MPHIN/2016/67929 ● ISSN : 2455-9717

ढींगरा फ़ैमिली फ़ाउण्डेशन अमेरिका द्वारा मध्यप्रदेश के सीहोर ज़िले में सीहोर तथा आष्टा में चलाए जा रहे आर्थिक रूप से कमज़ोर परिवार की बालिकाओं के लिए निशुल्क कम्प्यूटर प्रशिक्षण योजना के तहत स्थापित प्रशिक्षण केन्द्रों पर आयोजित कुछ कार्यक्रम

सीहोर में चलाए जा रहे बालिकाओं के लिए निशुल्क कम्प्यूटर प्रशिक्षण केंद्र पर सत्र 2020-21 का शुभारंभ वरिष्ठ समाजसेवी श्री अखिलेश राय, महामण्डलेश्वर पंडित अजय पुरोहित द्वारा किया गया, इस अवसर पर अतिथियों ने बालिकाओं को संबोधित भी किया।

सीहोर में चलाए जा रहे बालिकाओं के लिए निशुल्क कम्प्यूटर प्रशिक्षण केंद्र पर सत्र 2020-21 का शुभारंभ वरिष्ठ समाजसेवी श्री अखिलेश राय, महामण्डलेश्वर पंडित अजय पुरोहित द्वारा किया गया, इस अवसर पर अतिथियों ने बालिकाओं को संबोधित भी किया।

कम्प्यूटर सीखने से बढ़ जाते हैं नौकरी के अ
छात्राएं अपना 100 प्रतिशत दें: अखिलेश रा

निशुल्क कम्प्यूटर प्रशिक्षण केंद्र

कोरोना महामारी के कारण दो माह देर से प्रारंभ हुआ सत्र

को निशुल्क दिया जाएगा कंप्यूटर का प्रशिक्ष

सीहोर में चलाए जा रहे बालिकाओं के लिए निशुल्क कम्प्यूटर प्रशिक्षण केंद्र पर सत्र 2020-21 का शुभारंभ वरिष्ठ समाजसेवी श्री अखिलेश राय, महामण्डलेश्वर पंडित अजय पुरोहित द्वारा किया गया, इस अवसर पर अतिथियों ने बालिकाओं को संबोधित भी किया।

भोपाल डिविज़न की अजाक पुलिस अधीक्षक मध्य प्रदेश शासन की वरिष्ठ पुलिस अधिकारी सुश्री ज्योति ठाकुर ने सीहोर में चलाए जा रहे निशुल्क कम्प्यूटर प्रशिक्षण केन्द्र में प्रशिक्षण प्राप्त कर रही बालिकाओं को कॅरियर गाइडेंस प्रदान किया।

If Undelivered Please Return to :
P. C. Lab, Shop No. 3-4-5-6, Samrat Complex Basement, Opp. Bus Stand, Sehore, M.P. 466001
Phone 07562-405545, 07562-695918, Mobile 09584425995, 07828313926, 09806162184

स्वत्वधिकारी एवं प्रकाशक पंकज कुमार पुरोहित के लिए पी. सी. लैब, शॉप नं. 3-4-5-6, सम्राट कॉम्प्लैक्स बेसमेंट, बस स्टैंड के सामने, सीहोर, मध्य प्रदेश 466001 से प्रकाशित तथा मुद्रक ज़ुबैर शेख़ द्वारा शाइन प्रिंटर्स, प्लॉट नं. 7, बी-2, क्वालिटी परिक्रमा, इंदिरा प्रेस कॉम्प्लैक्स, ज़ोन 1, एम पी नगर, भोपाल, मध्य प्रदेश 462011 से मुद्रित।